प्रकाशक
आरोग्य-मंदिर
गोरखपुर

पहली बार : जनवरी १९५१
मूल्य
सजिल्द—साढ़े तीन रुपये
अजिल्द—तीन रुपये

मुद्रक
जे० के० शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

इस अनुवादके बारेमें

'प्राकृतिक जीवनकी ओर' एडोल्फ जस्टकी प्राकृतिक चिकित्सा-सबधी साहित्यमे बेजोड पुस्तक 'रिटर्न टू नेचर' (Return to Nature) का अनुवाद है ।

इस अनुवादके साथ एक छोटी-सी कहानी जुडी हुई है ।

गाधीजीकी आत्मकथाका हिंदी अनुवाद पहले पहल सन् १९२६मे निकला था । पुस्तक इतनी मनोहारी है कि मै पढना आरभ करते ही उसमे तल्लीन हो गया । उसी वक्त मैने जाना कि लोग पढनेके पीछे सोना कैसे भूल जाते है । उसमे गाधीजीने अपने प्राकृतिक चिकित्सा-प्रेमका भी उल्लेख किया है और बताया है कि 'रिटर्न टू नेचर'ने ही उनको प्राकृतिक चिकित्साकी ओर आकृष्ट किया और लगाया तथा इसके प्रयोगोसे, विशेषकर मिट्टीके प्रयोगसे उन्होने स्वय तो लाभ उठाया ही औरोको भी लाभान्वित किया । उसी समय यह इच्छा हुई कि अगर इस पुस्तकका अनुवाद मिलता तो मै भी पढता, पर अनुवाद प्राप्य नही था । बात आई और चली गई ।

सन् १९३६मे जब मै अपने रोगोकी चिकित्साके सिलसिलेमे प्राकृतिक चिकित्सासे परिचित हुआ तो 'रिटर्न टू नेचर'का भी परिचय मिला और ज्ञात हुआ कि प्राकृतिक चिकित्साके मूल सिद्धातोको समझनेके लिए यह पुस्तक अत्यावश्यक है—यह तो नीवका वह पत्थर है जिसपर प्राकृतिक चिकित्साकी सारी इमारत खडी की गई है । अब मूलकी खोज हुई पर मूल भी मेरे खोजे हिंदुस्तानमे नही मिला । सयोगसे मिला जाकर सन् १९४१मे एक मित्रके पास । पढा, लगता था, कविता पढ रहा हू, लेखक सादगीसे सत्यका अन्वेषण करता जा रहा है और उसके प्रकाशमे हमारा

मोह, हमारी मूढता, हमारी गलत धारणाए विलीन होती जा रही है। आत्मकथाके बाद यह दूसरी पुस्तक थी जिसने मुझे इस कदर सोचनेका सामान दिया।

इच्छा हुई कि इसका मै अनुवाद करू। उस समय इच्छाने और जोर पकडा—जब यह ज्ञात हुआ कि हिंदीको छोड़कर हिंदुस्तानकी प्राय: सभी मुख्य भाषाओमे इसके अनुवाद मौजूद है और गुजरातीमे तो इसके एक नही पाच-पाच अनुवाद हुए है। किसी तरह इसका पहला अध्याय पूरा किया। लगा कि अनुवाद कर सकता हू, पर कुछ तो अनुवादमे लगनेवाली मिहनतके ख्यालसे और विशेषकर अन्य कार्योमे लगे रहनेके कारण अनुवादका काम आगे नही बढ सका।

इसे तीन वर्ष बीत चुके थे कि मै जुलाई सन् १९४३मे तत्कालीन सरकारद्वारा गिरफ्तार किया गया और गोरखपुर-जेलमे नजरबद कर दिया गया। पकडे जानेके समय ही मैने अनुवाद पूरा करनेके विचारसे प्राकृतिक-चिकित्सा-सबधी पुस्तकोके अपने ट्रकमे यह पुस्तक और कागज-कलम भी रख लिया था। जेलमे समय काफी था, काफी ही नही था बल्कि वक्त काटनेका सवाल था अत. मुझे अनुवादका मुहावरा न होनेकी वजहसे अधिक समय लगनेका कोई डर नही था। एक विचार यह भी आया कि क्यो न समग्र प्राकृतिक चिकित्सापर ही एक पुस्तक लिखू, पर 'रिटर्न टू नेचर'के मोहने जोर पकड़ा और मैने इसका अनुवाद आरंभ कर दिया। जून १९४४मे, जब मै नजरबदीसे रिहा किया गया, तब वह अनुवाद पूरा हो चुका था। तबसे अबतक यह अनुवाद पड़ा रहा। बहुत चाहा, पर कोई विश्वसनीय प्रकाशक न मिलने, प्रकाशनका अधिकार न मिलने, अच्छा प्रेस न मिलने और कागजकी दिक्कतकी वजहसे इसका प्रकाशन रुका रहा।

आज यह अनुवाद प्रकाशित हो रहा है, इसकी पाडुलिपिको सुरक्षित रखनेकी मेरी जिम्मेदारी खतम हो गई है। प्राकृतिक चिकित्साने मुझे

स्वास्थ्य-दान दिया है, इस लिहाजसे इसके प्रति मेरा जो फर्ज है उसे मैंने इस रूपमे किसी अशमे चुकानेका प्रयत्न किया है।

आशा है मेरे इस अनुवादसे औरोंको प्रेरणा मिलेगी और वे इससे अच्छा अनुवाद हिंदी जगत्को भेंट करनेका प्रयत्न करेंगे।

पाठकोको एक बात और बता दू वह यह कि गाधीजी सन् १९४६मे प्राकृतिक चिकित्साकी ओर विशेपरूपसे रुजू हुए थे और अपना शेष जीवन इसीमे लगाना चाहते थे। वे प्राकृतिक चिकित्सा और प्राकृतिक चिकित्सकोके भी सबधमे लिखते रहे थे। २ जून १९४६के 'हरिजन'मे उन्होने लिखा था "कूने, जस्ट और फादर कनाइपने जो लिखा है वह सबके लिए है और सब जगहोके लिए है वह सीधा है, उसे जानना हमारा धर्म है। कुदरती इलाज जाननेवालोके पास उसकी थोड़ी बहुत जानकारी होती है और होनी चाहिए।"

यहा जस्टसे मतलब उनकी उक्त पुस्तक "रिटर्न टू नेचर" (प्राकृतिक जीवनकी ओर)से ही है।

आरोग्य-मदिर
गोरखपुर
३० जनवरी '५१

विषय-सूची

प्राकृतिक जीवनकी ओर

प्रकृतिके बोल

सृष्टिकर्ताने मनुष्यको सर्वथा नीरोग और सदाचारी बनाया; न शरीरमे कोई मलिनता थी न आत्मामे। भला, सर्वशक्तिमान, सर्वमंगलमय, सर्वज्ञ ईश्वरकी रचना अपूर्ण, सदोष, रोगी, पापी, कंगाल और दुःखी कैसे हो सकती थी? मनुष्य पाप-तापसे विमुक्त आनंदपूर्ण स्वर्गमे रहता था। इसी स्वर्गीय आनंदकी बात सुननेपर लोग स्वर्गको पृथ्वीकी नही आकाशकी वस्तु मानने लगते है। यह सकारण है।

आज कहीपर एक भी तो मनुष्य स्वस्थ नही दिखाई देता। पृथ्वीपर सर्वत्र रोग और शोकका साम्राज्य है। जन्मसे मृत्युपर्यंत मनुष्यको रोग और दुःख घेरे रहते है। संसारमेसे आत्मीयता, भ्रातृभाव उठ गये है। घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, पाप और अपराधोने चारों ओर अपने पांव फैला रखे है। आज एक भी ऐसा व्यक्ति न मिलेगा जो चिंता, कष्ट, शोक, संताप, उदासी और निराशासे घिरा हुआ न हो।

मनुष्य इस दशाको क्यों पहुंचा? प्रकृतिकी अवहेलना करके और विज्ञानके भ्रम-जालमे पड़नेके कारण।

प्रकृति माता तो आज भी हमें स्वास्थ्यका सीधा और सरल मार्ग बतानेको कुंठित नहीं है।

प्रकृतिकी सीखपर ध्यान न देनेके कारण ही मनुष्य हजारों किस्मके रोगोंका शिकार बना हुआ है। वनके पशुओं और गगनचारी पक्षियोंने कभी अपने सिरपरसे प्रकृति माताका वरद हस्त हटने नहीं दिया। अतः वे रोगोंसे मुक्त तो हैं ही, उनमें पाप और अपराध-सरीखी वस्तु भी नहीं पाई जाती।

आज प्रकृतिके प्रांगणमें कदाचित ही कोई स्थान हो जो मनुष्यके हाथकी सफाईकी करामातसे अछूता हो, जहां अपना कुशल कर लगाकर उसने कुछ-न-कुछ बिगाड़ न दिया हो। इस कारण पशु या पेड़ोंमें रोगोंके कुछ चिह्न मिल जायेंगे; पर मनुष्यके अनंत दुःख और घोर कष्टोंकी तुलनामें उनकी कोई गिनती नहीं है।

प्रकृतिके सपर्कमें रहनेवाले पशु-पक्षी सर्वदा व सर्वथा नीरोग रहते हैं। पर उन्मुक्त प्रकृतिसे उनका संबंध-विच्छेद कर देनेपर, प्रकाश, वायु, पृथ्वी और जलसे उनका ताल्लुक तोड़ देनेपर उन्हें वह आहार नहीं मिलता जो प्रकृतिने उनके लिए उपजाया है। और तब वे सहजमें रोगोंके पंजेमें फँसने लगते हैं।

विज्ञानका चश्मा अपनी आंखोंसे उतारकर खुले दिल और दिमागसे प्रकृतिकी ओर देखनेपर हमें स्पष्ट दिखाई देता है कि हमारे रोगी बने रहनेका एकमात्र कारण है हमारा प्रकृति-

के बोलपर ध्यान न देना। हम उसके प्रत्येक नियमको कुचलते चलते है। हम उसके बताये रास्तेसे भटके हुए है।

प्रकृतिकी न्याय-परायणताके औचित्यके सबधमे दो मत नही हो सकते। जहा वह अपना कोई भी नियम भंग करने-वाले अपराधीको दड देती है, वहां उसके नियमानुसार चलनेपर वह पुरस्कार देना भी नही भूलती।

कैसा भी कोई रोग क्यो न हो मनुष्य उससे मुक्त होनेका अधिकारी है, अपनी नियत प्रसन्नता प्राप्त करनेका हकदार है। एकमात्र मार्ग उसका यही है कि वह ईमानदारीसे प्रकृतिकी शरण जाय। उसे प्रकृतिके बोलोपर चलनेकी हर तरहसे कोशिश करनी चाहिए। भोजन उसे वही ग्रहण करना चाहिए जो प्रकृतिमाताने उसके लिए अपने हाथो पकाया है। उसे जल, वायु, आकाश, पृथ्वी और प्रकाशसे प्राकृतिक सबंध जोड़ना चाहिए। प्रकृतिकी भाषा अत्यंत सुबोध है, वह अपने आदेश सब प्राणियोको—पशु और मनुष्य दोनोंको बहुत स्पष्ट रूपसे देती है।

प्रकृतिकी कभी यह इच्छा नही रही है कि मनुष्य जीवनके सच्चे रास्ते और स्वास्थ्य-प्राप्तिकी सरल पद्धतिके संबंधमे इतना अनभिज्ञ और इतना परेशान रहे कि उसे अपने साथियों-से इन नियमोंपर वाद-विवाद करना पड़े और अपनी अन-भिज्ञताके कारण उसे चिता और शंकाका शिकार बनना पड़े। अब हम मनुष्यसे शिक्षा न लेकर प्रकृतिकी सीख सुनेंगे।

प्रकृतिके सिखावनके ढंग कुछ निराले है। उसकी शिक्षा

न पुस्तकोमे लिखी मिलती है न वह बद कोठरियोंमे बिठाकर शिक्षा देती है। वह अपनी इच्छाको साफ और सही-सही मनुष्यकी नैसर्गिक वृत्ति और ज्ञानेद्रियोद्वारा प्रकट करती है। सयत मनुष्यका विवेक भी जाग्रत रखती है।

संसारके हर हिस्सेके जगली कहानेवाले लोग आज भी स्वास्थ्य-नियमोका पालन करते हैं। यह सर्वविदित है कि प्रकृतिके इन बच्चोकी ज्ञानेद्रियां इतनी सतेज और नैसर्गिक वृत्ति इतनी सतर्क होती है कि स्वास्थ्यके लिए हानिकर या उसे जोखिममे डालनेवाली किसी भी वस्तुको वे तुरंत ताड़ जाते है। उदाहरणार्थ, वे न कभी वनस्पतिशास्त्रका अध्ययन करते है न किसी अन्य शास्त्रका, पर जहरीले पौधोको पहचाननेमें वे कभी धोखा नही खाते।

पहले विकसित मनुष्य-जातिका सुसभ्य प्राणी भी जीवन-समुद्रके तरनेको शुभ नक्षत्रोसे ही प्रकाश लेता था और रोग एव दु खसे बचा रहता था। पर उसकी बुद्धिके विकासमें 'अपनी बुद्धिसे अपना नाश' रूपी खतरा छिपा हुआ था।

पशुसे ऊपर मनुष्यको जो बुद्धि मिली है वह इसलिए कि वह ईश्वरसे अपना संबंध समझ सके। ईश्वरके शिव और सुंदर रूपको जान सके। प्रभुके योग्य पुत्रकी भांति आचरण करके अपना जीवन उन्नत कर सके। मनुष्यकी बुद्धिमे ही मनुष्यकी विशिष्टताकी पराकाष्ठा छिपी हुई है। पर मनुष्यने अपनी बुद्धिका उपयोग किया अपनेको कुदरतके रास्तेसे अलग करनेमे। पहले उसने प्रकृतिके बोलकी ओरसे अपने कान

बद किये और अपनी तर्क-शक्तिकी प्रेरणापर चलने लगा। उसे अपना शिक्षक और अपना नियता स्वयं बननेकी इच्छा उत्पन्न हुई; वह अपना ईश्वर आप ही बन बैठा। अपनी तर्क-शक्ति, बुद्धि-बलको उसने विशेष एवं कठिन अध्ययन, अन्वेषणमे लगाया। उसके आधारपर उसने जीवनके लिये भोजन, वस्त्र, कार्य, शिक्षा इत्यादिके वर्त्तमान नियम बनाये। यहीसे आधुनिक सभ्यताका जन्म हुआ।

मनुष्य-बुद्धिके इस दुरुपयोगद्वारा विज्ञानकी उत्पत्ति हुई। ऐसी गलत नीवपर खड़े किये गये विज्ञानसे अनर्थके सिवा और क्या आशा की जाती ?

यहां हम औषधोपचार, रसायनशास्त्र, देह-रचनाशास्त्र और देह-धर्मशास्त्रके उपदेशों एवं उनके द्वारा प्रस्तुत प्रमाणों-पर विचार करेंगे।

कुदरतकी आवाज हमेशा मनुष्यके प्रति ईमानदार रही है; पर विज्ञान बाइबिलकी कथाके सर्पकी भाति प्रारंभसे ही उसे धोखा देने, पथ-भ्रष्ट करने और गलत शिक्षा देनेमे लगा रहा। यद्यपि प्रारंभसे ही विज्ञानकी प्रशंसाके गीत गाये जाते रहे है कि यह सुख-शांतिका प्रदाता है, पर मनुष्यने विज्ञानकी जितनी ही अधिक सुनी, विशेषत: ओषधि-विज्ञानकी, उतना ही वह रोग और दुर्भाग्यका अधिकाधिक शिकार बना।

निश्चित रूपसे स्वास्थ्य और सुख प्राप्त करनेका एक ही उपाय है कि मनुष्य विज्ञान और विज्ञानसम्मत सभी वस्तुओसे किनाराकशी अख्तियार करे।

विज्ञानके इस धूर्त सर्पसे पूर्णतः अपनी रक्षा कर सकना तो अत्यंत कठिन है, क्योंकि बचपनसे ही मनुष्यके कानोंमे विज्ञानकी गुनगुनाहट पडती रही है और पोथियोंद्वारा भी यह विप उसके दिमागमे पहुंचता रहा है। मनुष्यका अधिकांश स्वास्थ्य और सुख इसी विज्ञानकी भेट हो गया है तथापि आज जिधर देखो उधर देवताकी भांति विज्ञानकी पूजा हो रही है।

शका-कुशकाओको त्यागकर अब जब एक बार फिर मनुष्य प्रकृतिका आश्रय लेनेको तैयार हुआ तो विज्ञान आरोग्य-शास्त्र, रोगशास्त्र, कीटाणुवाद, पौष्टिक भोजन, आवश्यक क्षार, सर्दी-गर्मी इत्यादिकी पुकार मचाकर उसे पथ-भ्रष्ट करनेपर तुला हुआ है। ऐसी दशामे मनुष्यका भटक जाना बहुत आसान है। पर उसे चाहिए कि सब ओरसे ध्यान हटाकर प्रकृतिकी आवाज, नैसर्गिक वृत्ति, विवेक, ज्ञानेंद्रियपर चलनेका प्रयत्न करे।

प्रश्न यह उठता है कि क्या आजका मनुष्य प्रकृतिसे वही पथ-प्रदर्शन प्राप्त कर सकता है जो पशु अपनी नैसर्गिक वृत्तिके द्वारा पाता है ?

इसमे सदेह नही कि मनुष्यको प्रकृतिकी आवाजपर चलना वद किये एक युग हो गया। इस कारण उसकी नैसर्गिक वृत्ति और विवेक शिथिल हो गये है और ज्ञानेंद्रियां निस्तेज हो गई है तथापि हमारे पथ-प्रदर्शन करनेभरको वे पर्याप्त है। कविवर गेटेने लिखा है·

"हमारे हृदयमें बैठा हुआ देवता बहुत मंद-मंद बोलता है, आवाज धीमी है उसकी, पर है स्पष्ट। वह देवता हमें बताता रहता है कि हम क्या ग्रहण करें और क्या नहीं।"

प्रकृतिकी वाणीपर ध्यान देना आरंभ करनेपर एक बार फिर प्रत्येक वस्तु मेरे सामने स्पष्ट हो गई। विशेष-विशेष विषयोंके संबंधका ज्ञान, जिसकी प्राप्तिकी मुझे आवश्यकता थी, प्राप्त हो गया। इसके लिए मुझे किसी प्रकारके अन्वेषण या शोधमें अपना समय गंवाना नही पड़ा।

जो कुछ मैंने सीखा है, कुदरतसे ही सीखा है। उसीने मुझे रास्ता दिखाया है।

मनुष्य जितना ही अधिक प्रकृतिकी ओर ध्यान देगा उतना ही उसका विवेक और नैसर्गिक वृत्ति जाग्रत होगी और ज्ञानेंद्रियां सतेज होंगी। आज भी वह बच्चो और पशुओंसे प्रकृतिके निर्देशोंके संबंधमे बहुत कुछ सीख सकता है। इन सौभाग्यशाली जीवोने अपने पथ-प्रदर्शकके भावोंकी रक्षा की है। हर गाढे समयपर हमें इनसे सहायता लेनी चाहिए।

विज्ञानके मोहक रूपसे बचनेकी शक्ति प्राप्त कर लेनेपर प्रकृति मनुष्यका आसानीसे पथ-प्रदर्शन कर सकेगी। फिर स्वास्थ्य और सुखके मिलनेमें क्या देर लग सकती है? तब मनुष्यकी दशा समुद्रमें पड़ी उस बेपतवारकी नावकी भांति

नही रह जायगी कि जिसके भाग्यमे चट्टानोसे टकराकर टूट जाना ही बदा है।

प्राकृतिक स्नान

पिछली शताब्दीमे अनेक प्रतिभाशाली एव महान व्यक्ति प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणालीके उन्नयनमे लगे रहे। उनकी प्रतिभाने उन्हे प्रकृतिके नियमोसे परिचित कराया। प्रिसनीज, स्काथ, ग्रेहम, रूसो, रिकली, कनाइप, कूने, डेसमूर, ट्राल आदिने इस दिशामे महान कार्य किये और अक्षय कीर्ति कमाई। उन्होने अधेरेमेसे प्रकाशकी किरणे खोज निकाली।

पर इन सभी सज्जनोने नैसर्गिक वृत्तिको पथ-प्रदर्शनका मौका नही दिया और न कभी प्रकृतिकी अन्य सब आवाजोका, जिनका मैंने अक्सर जिक्र किया है, पूरी ईमानदारीसे अनुसरण किया। उन्होने बच्चो और पशुओके जीवनका भी पूरा अध्ययन नही किया। ये छोटे प्राणी आज भी इस सभ्यताके युगमे पले प्रौढ मनुष्योकी अपेक्षा प्रकृतिकी राहका अधिक अनुसरण करते है। इन सज्जनोने प्रकृतिके उपादानों एवं इच्छाओपर भी ध्यानपूर्वक और समझदारीसे विचार नहीं किया इसलिए उनकी शिक्षा और उनका बताया मार्ग पूर्ण नही हैं। उसमे अनेक भूले और गलतियां मिलती है। उनकी उपचार-पद्धतियोको लोग अधिकतर भूल गये हैं

और वह दिन दूर नही है जब वे विस्मृतिके गर्तमे सर्वथा विलीन हो जायगे।

मनुष्यको प्रकृतिसे अपना संबंध-विच्छेद किए हजारों वर्ष हो गए। अब धीरे-ही-धीरे वह प्रकृति और उसके नियमों-के सबधमे अपना कर्तव्य समझ सकता है।

प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणालीके निर्माणमे हाथ बटानेवाले सभी सज्जन हमारी अधिक-से-अधिक प्रशंसाके पात्र है। वे सर्वांगीण सत्य प्राकृतिक नियमोके निकट पूरी तरहसे नही पहुच सके एव उनकी पद्धति सदोष है। इसके लिए न तो हमे उनकी निदा करनी चाहिए, न उन्हे दोषी ठहराना चाहिए।

दुनियाके सभ्य समाजमे हुए अबतकके सभी आदोलनोमें प्राकृतिक चिकित्सासबधी आदोलन सबसे अधिक गभीर और शक्तिशाली है। उसका सबध मनुष्यकी सबसे बडी निधि—स्वास्थ्यसे है। स्वास्थ्यपर ही उसके जीवनके सारे आनद एव खुशिया निर्भर है, और स्वास्थ्य ही उसे प्रत्येक प्रकारके दुख, कष्ट और त्राससे बचा सकता है। अत. इस विषयपर अपने विचार प्रकट करते समय हमें न किसीके सबंध-मे चुप रहने और न किसीके दोषोपर परदा डालनेकी जरूरत है। हमे चाहिए कि इस महान कार्यमें लगे हुए लोगोपर अपनी सतर्क दृष्टि रखे और प्रत्येक वस्तु, हितो और व्यक्तियो-को उसके सामने गौण समझे।

इस दृष्टिसे मै अपने पहलेकी प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति और पुराने चालके शाकाहारकी गलतियां प्रकाशमें लानेसे

नहीं लिखूंगा। पर ऐसा करनेमें किसीको कष्ट पहुंचानेकी मेरी जरा भी इच्छा नहीं है।

अब मैं एक ऐसी जीवन-पद्धति और चिकित्सा-पद्धतिका जिक्र करूंगा जिसका विज्ञानसे कोई संबंध नहीं है। इसमें हमें, जैसा कि मैंने पहले कई बार कहा है, प्रकृति-गुरुसे पथ-प्रदर्शन प्राप्त करना होगा और निश्चय ही एक दिन एक उज्ज्वल सुंदर प्रभातकी वेलामें तमसावृत गगनको भेदकर प्रकाशकी किरणें प्रस्फुटित होंगी, जिनका मानव-जाति प्रसन्नतापूर्वक स्वागत करेगी।

यह चिकित्सा-पद्धति प्रकृति-गुरुकी भांति ही अत्यंत सीधी-सादी एवं सरल है। इस पद्धतिमें प्रत्येक रोग और रोगोंकी एक ही प्रणालीसे चिकित्सा होती है और इसकी मान्यता है कि सभी रोगोंका कारण अप्राकृतिक जीवन है तथा प्रकृतिके नियमों एवं कार्योंमें कहीं वैषम्य नहीं है। मेरी धारणा है कि सभी प्रचलित प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धतियां धीरे-धीरे इस एक सच्ची प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धतिमें विलीन हो जायंगी।

इस पद्धतिमें, जिसे सीखना कहा जाता है उस अर्थमें, सीखनेको कुछ नहीं है। कोई भी, जिसने अपनेको आधुनिक विज्ञानकी चकाचौंधसे मुक्त कर लिया है एवं बुद्धिमत्ताको आधुनिक अर्थोंमें ग्रहण करनेसे अपनेको बचा लिया है, इसका व्यवहार कर सकता है। इस पद्धतिका अनुसरण करनेवाला सारे चिकित्सक समुदाय, भेषज-पंडितों आदिकी गुलामी करनेसे और परवशतासे बच जाता है।

प्रकृति कभी गलती नही करती। अतः प्रकृतिमें वह विरोधाभास और चूक नही है जिसके कारण लोग प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणालीको अपनाते झिझकते है।

जो रोगी हर तरहका पथ-प्रदर्शन प्रकृतिसे ही प्राप्त करता है उसे प्रकृति बिना किसी प्रकारकी कठोरता दिखाए बड़ी कोमलतासे, बिना कष्टकर अभावोमे डाले, बड़े आराम, मौज, शीघ्रता और निश्चयात्मक भावसे स्वास्थ्य, शक्ति और जीवनके तेजवान कुसुमोसे भरे, हरे-भरे प्रकाशपूर्ण उद्यानका अधिकारी बनाती है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि सख्त-से-सख्त प्राणलेवा रोग, जिन्हे देखकर चिकित्सक अपनेको असहाय पाता है, प्रकृतिके हाथों पड़कर अपनी भयंकरता खो देते और नष्ट हो जाते है।

सच्ची प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धतिकी रोग-भंजक शक्ति मस्तिष्क और आत्मातक पहुचती है। दिमागके काले परदे फट जाते है और आत्मा स्वास्थ्यदायक शक्ति-जलमे अवगाहन करती है। मनुष्य पाप, दोष, घृणा, ईर्ष्या एवं अशुभ चितनसे मुक्ति पा जाता है और पीड़ित मनुष्यके हृदयमे फिर शांति, आनंद, मातृभाव एवं प्रसन्नताको स्थान मिलता है।

अंतमे नूतन वसंत अपनी उषा सुंदरी लिए अवतरित होता है और मनुष्यको इस पृथ्वीपर स्वर्गका आनंद मिलने लगता है।

मै अपनी चिकित्सा करते वक्त एक बार प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणालीकी गलतियो, उलझनों एव इसके द्वारा मनुष्य और

प्रकृतिके बीच खड़े किए गए झगडेको देखकर इससे भाग खड़ा हुआ था। जिस प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धतिका मै वर्णन करने जा रहा हू, अतमे जाकर उसीमे मुझे सत्य, शाति और आनद मिला।

जब इस शताब्दीमे लोगोने नैसर्गिक वृत्तिद्वारा प्रेरित होकर एक बार फिर प्रकृतिकी राह पकड़ी तो उन्हे ज्ञात हुआ कि सभी रोग शरीर एव रक्तके दूषित होने--उनमे रोगोंके कीटाणु एव विजातीय द्रव्यके प्रवेश पानेसे होते है। इस सत्यकी जानकारीके बाद औषधोपचारकी सीखके अनुसार रोगियोके शरीरमे विष एव कोई भी असजातीय वस्तु--दवा आदि डालकर रोगका भूत भगानेकी कोशिश बद कर दी गई। फिर लोगोने रोगी शरीरमेसे विजातीय द्रव्य निकालनेकी कोशिश प्राकृतोपचारके केवल एक साधन--जलद्वारा की।

इस दिशामे विसेंट प्रिसनीज नामक एक किसान सज्जन अग्रणी थे। इसलिए उन्हे आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणालीको सही नीवपर खड़ा करनेवाला पहला आदमी कहना चाहिए।

आरभमे जल-चिकित्सा-प्रणाली ही प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली थी। पहले पहल केवल जल-चिकित्सालय स्थापित हुए।

इसलिए मेरी पहली कोशिश यही हुई कि मै स्वय पहले प्रकृतिसे जलके सही प्रयोग सीखू।

इस कोशिशमे मैने महसूस किया कि मेरी अंतर्ध्वनि,

जिसे नैसर्गिक वृत्ति कहनी चाहिए, जलके किसी खास प्रयोगके लिए प्रेरित नही कर रही है।

पर मुझे कुछ वनवासियोसे ज्ञात हुआ कि प्रकृतिके प्रागण-मे विचरनेवाले पशु, जो अपने सारे कार्य नैसर्गिक वृत्त्यनुसार करते है, स्नानके विषयमे कुछ खास नियम बर्तते है।

मैने उनकी आदतोका अध्ययन करना आरभ किया और इन तथ्योपर पहुचा

नदीमे कूदकर सारे बदनको धो-धोकर नहाना प्रकृतिके अनुकूल नही है। नदी अथवा टबमे नहाते वक्त सारे बदनको भिगोना प्रकृतिके विरुद्ध है।

धरतीपर विचरनेवाले पशु नहाते वक्त सारे बदनको भिगोना नापसद ही नही करते वरन् ऐसा करते घबराते भी है। अगर आप किसी पशु (खास तौरसे बदर) को पानीमे उछाल दे तो देखेगे कि वह बडी आतुरतासे किनारेपर पहुचनेकी कोशिश करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि सभी पशु बडी अनिच्छासे और सो भी दबाव पड़नेपर ही स्नान करते है।

अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करनेके आदी घरेलू पशुओमेसे इक्के-दुक्के पानीसे प्रीति करनेवाले मिल जाए तो उन्हे नियमका अपवाद ही समझना चाहिए।

देखा यह जाता है कि पृथ्वीपर विचरण करनेवाले उच्च प्रकारके पशु (स्तनपायी पशु), खास तौरसे जगली सूअर और हरिन, मुक्त प्रकृतिके साथ (जगलमे) रहते समय आदतन छोटे पकिल दलदलो या गढोमे लोटते है। पहले वे धरतीसे

केवल अपना पेट सटाते है, फिर उसे कीचड़मे इधर-उधरसे रगड़ते है।

इसके बाद पशु उठता है और साधारणतया अपना कूल्हा और गुदाद्वार कीचड़मे गड़ाकर बैठता है। इसके बाद वह कुछ क्षणतक कीचड़मे लोटता है, उसका सारा बदन धरतीके सपर्कमे आ जाता है और फिर उठकर वह अपने सारे शरीरको सूखी जमीन, पेड़ या अन्य किसी चीजपर रगडता है। पशुओकी इस क्रियाको शिकारी लोग 'गदह लोट' कहा करते है।

अब देखिए पक्षी क्या करते है। वे सोते या नालेपर जाकर अपनी गरदन पानीमे डुबोते है और इस प्रकार गरदन और पीठके बीच बनी गहरी जगहके द्वारा और पखोको पानीमे छपककर अपने शरीरपर पानी छिड़कते है। फिर वे अपनी चोच, गरदन और पख-कुहनियो—यह नाम मै दो पखोके जोड़को दे रहा हू, उसकी शकल मनुष्यकी कुहनी-सी होती है—से अपने शरीरको रगडते या घिसते है।

कई बार यह निरर्थक प्रश्न किया गया है कि जब कि पक्षी केवल स्वच्छ जलमे स्नान करते है, हमारे जंगलका राजा सुंदर लाल हरिण, जो हमेशा अपने शरीरको साफ रखता है, अपनी मादको भी गदी होनेसे बचाता है, और भी हर तरहसे साफ रहता है कीचड़ मिले जलमे नहाते वक्त क्यो लेटता है।

इस संबंधमे मेरा मत यह है कि स्तनपायी पशु कीचड़मे इसलिए नहाते है कि वे अपने पेट और जननेंद्रियको कीचड़मे

अच्छी तरह रगड़ और घिस सके। बहते स्वच्छ जलके नीचेकी कठोरभूमिपर ऐसा कर सकना संभव नहीं है।

पक्षियोंकी बनावट पशुओंसे भिन्न होती है। वे अपने शरीरको अपने अनेक अंगोसे रगड़ और घिस सकते है। अत. उन्हे इस कार्यके लिए कीचड़की जरूरत नही होती।

कीचड़की आवश्यकता शरीरको रगड़नेके लिए ही होती है, इस बातको जंगलमे रहनेवाले सभी लोग युक्तिपूर्ण मानते है।

तब यह बात तो साबित हो जाती है कि उच्च प्रकारके पशु स्नान करते है।

अन्य पशु इसलिए स्नान नही करते, क्योकि प्रकृतिने उन्हे ऊंचे पहाड़ और पथरीली जगहमे रहनेको बनाया है, जहां जल सदा नही मिलता। हिंसक जानवर भी स्नान नहीं करते। ये क्यों स्नान नही करते यह भी स्पष्ट[1] है। स्नानसे शांति मिलती है, यदि शिकारपर जीनेवाला जानवर शांत हो जाय तो उसका काम ही बिगड़ जाय। उनके लिए यह स्वभावतः आवश्यक है कि वे खूंख्वार और गरम बने रहे, तभी वे अपना शिकार कर सकते है। उसकी खूनकी यह चाह[2] उनके

---

[1]घरेलू कुत्ता जब तेज गर्मी पड़ती है तो कभी-कभी पानीकी जगहमे चला जाता है, इसे स्नानका नाम नही दिया जा सकता।

[2]मासाहारके कारण शिकारी जानवरके मुहमे खून किस प्रकार लग जाता है, यह आसानीसे समझा जा सकता है।

मासाहारी होनेके कारण है।

फिर कोई कारण नही कि जीवोका सिरमौर मनुष्य क्यो न स्नान करे। यही मानना ठीक होगा कि प्रकृति चाहती है कि मनुष्य स्नान करे ताकि उसकी शारीरिक और आध्यात्मिक शक्ति बनी रहे और उनका पूर्ण विकास हो सके।

मनुष्यकी नैसर्गिक वृत्ति हमेशासे उसे स्नानके लिए प्रेरित करती रही है। यद्यपि उसके अदरकी आवाज उसे साफ-साफ बता नही रही है कि वह किस तरह स्नान करे, फिर भी प्रत्येकको अपना पेड़, मलद्वार, जननेद्रियको जल-द्वारा ठढा रखनेकी आवश्यकता प्रतीत होती ही है।

अत. पशु अपने शरीरकी बनावटके अनुसार अलग-अलग रीतिसे स्नान करते है। स्तनपायी पशु और पक्षी भिन्न-भिन्न रीतिसे स्नान करते है।

जिस किसीने पशुओको ध्यानपूर्वक स्नान करते हुए देखा

शिकारी कुत्ता जबतक उसे निरामिप भोजन दिया जाता है शिकारपर हमला न कर केवल शिकारको हाकनेका काम करता है, पर ज्योही उसे गोश्त खिलाने लगते हैं वह शिकारको पकडने और मारनेका काम करने लगता है।

एक अजायबघरके एक बदरका स्वभाव बडा स्नेही और शात था। पर जब उसे गोश्त खिलाने लगे तो वह बदमिजाज हो गया और अपने रखवालेको भी, जिससे पहिले उसकी दोस्ती थी, काट खानेको दौडने लगा।

यदि शिकारी जानवर क्रूर और खूख्वार न हो तो शिकार कर ही न सके।

होगा उसे इस बातकी प्रतीति हुई होगी कि पशु कीचड़ (या पानी) मे स्नान करते वक्त अपनी जननेंद्रियको ठंढा करने या रगड़नेका बहुत ध्यान रखते है। इससे यह भलीभाति समझा जा सकता है कि मनुष्यको, जब कि वह खास तौरसे खुलेमे बिना किसी बाहरी वस्तु या किसी व्यक्तिकी सहायतासे स्नान करता है, किस प्रकार स्नान करना चाहिए।

अब मैं प्राकृतिक स्नानका वर्णन करूंगा। इन दिनों सब लोग घरमे कमरोंमे ही स्नान करते है और सबको सब समय बाहर खुली जगहमे स्नानकी सुविधा भी नही है। अतः लोगोंको
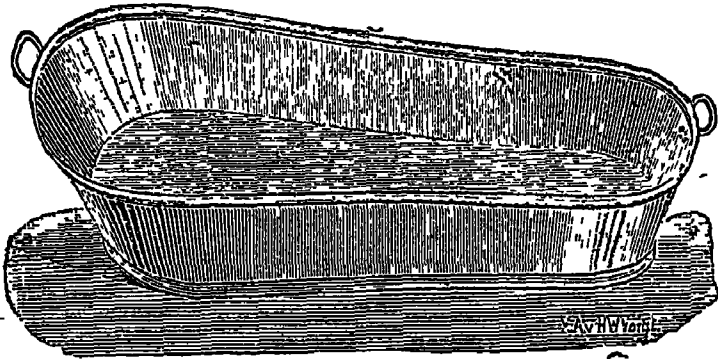
प्राकृतिक स्नानके लिए टीनका बना हुआ टब

पानी रखनेके लिए टबकी या किसी पात्रकी आवश्यकता पड़ती है। इस स्नानके लिए कोई भी पात्र या टब[1] हो सकता है पर वह इतना बड़ा जरूर होना चाहिए कि उसमें पैर सिकोड़कर घुटने ऊंचे किए हुए आसानीसे बैठा जा सके।

---

[1]टब जस्ते और लकड़ी दोनो ही प्रकारके हो सकते है, पर लकड़ीके बने टबको अधिक लाभकर समझना चाहिए।

स्नानार्थीको अपने टबमे साढ़े तीन इंच गहरा पानी, जो स्वाभाविक ठंढा हो, भरकर इस प्रकार बैठना चाहिए कि जल उसके पैर, नितंब और जननेंद्रियके अधिकतर भागपर आ जाय। नितंब और पैरके तलवे टबके पेंदेसे लगे रहें और घुटने हमेशा ऊपर उठे रहे।
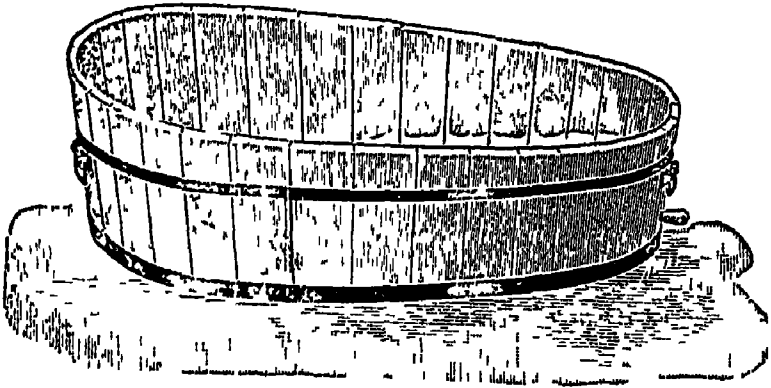
लकड़ीका बना हुआ एक टब

इस प्रकार टबमें बैठनेके बाद सटे हुए घुटने फैला दिए जाते है और पानीको हथेली (चुल्लू) से पेड़ूपर जोरसे मारा जाता है।

इस प्रकार पेड़ूपर पानी मार लेनेके बाद तुरंत पेड़ूके बीच-के भागको, दोनों किनारोंको और सारे पेड़ूको ही एक या दोनों हाथोंसे तेजीसे मला जाता है। पानी मारना और पेड़ू रगड़ना थोड़ी ही देर चलता है और फिर यदि स्त्री यह स्नान ले रही है तो उसे ऊरुसंधि (दोनों जांघोंके बीचका भाग) और जननें-द्रियके ऊपरी भागको खुले हाथसे जलके अंदर (टबके पेंदेमे नितंव लगे रहेगे तो यह भाग जलके अंदर ही रहेगा) रगड़ना

चाहिए। पुरुष भी ऊरुसंधिके चारों ओर, अंडकोषको और मलद्वार और जननेद्रियके बीचके सीवनके चारों ओर पानीके अंदर ही खुले हाथसे रगड़ें। इसके बाद हाथोसे पानी ले-लेकर सारे शरीरको धो डालना चाहिए। शरीर धोनेमें देर न लगे इसके लिए इस काममे किसी दूसरे आदमीसे भी सहायता ली जा सकती है। फिर सारे शरीरको खुले हाथोसे (तौलिए या अंगोछेसे नही) रगड़-रगड़कर अच्छी तरह सुखा लेते है। शरीरको सुखानेके लिए तौलिए या अंगोछेका व्यवहार बिल्कुल न करना चाहिए।

अच्छा हो कि स्नानके बाद रगड़नेकी सारी क्रिया खुद ही करे। इससे कसरतका भी लाभ मिलेगा। जरूरत समझी जाय तो शरीरको दूसरेसे भी रगड़वाकर सुखाया जा सकता है। इससे भी लाभ होगा, हानिकी कोई संभावना नही है। शरीर रगड़नेके संबंधमे अपने विचार मै विस्तारसे फिर कहूगा।[1]

स्नानके बाद कमरेमें और सुविधा हो तो खुली जगहमे थोड़ी देर नंगे बदन टहलना अच्छा है। पर स्नानके बाद शरीरमें गर्मी आ जाय, इसका सदा ध्यान रखना चाहिए। तेजीसे टहलनेसे कसरत या किसी भी श्रमसाध्य कार्यसे गरमी जल्द आ जाती है। यदि टहलने या कसरत आदिद्वारा

---

[1]स्नानके साथ जननेंद्रिय धोने और रगड़नेकी जो क्रिया बताई गई है वह खास तौरसे स्त्रियोंके लिए है पर पुरुषोंके लिए भी बहुत लाभदायक है। इससे जननेंद्रियकी उत्तेजना और जलन खास तौरसे दूर होती है।

गरमी न लाई जा सके तो कंबल वगैरह कुछ गरम चीज ओढ़कर लेट रहना चाहिए।

उगता और शक्तिके स्रोत धूपमें रहकर शरीरमें गरमी लाना अति उत्तम है।

प्राकृतिक स्नान कितनी देरतक किया जाय? इसका उत्तर शरीरकी स्थिति और गरमीपर निर्भर है। इस विषयमें प्रत्येक-को अपनी रुचि समझने और अंदरकी आवाज सुननेकी कोशिश करनी चाहिए। ठंडके दिनोंमें ऐसे पांच मिनटतक यह स्नान करना काफी होता है। गरमीके दिनोंमें और खूब गरमी हो तो यह स्नान दस मिनटतक या इससे अधिक समयतक भी लिया जा सकता है। जितना समय स्नानमें लगाया जाय उस समयका आधा पेड़ू और जननेंद्रियभागके मलनेमें लगाया जाय।

स्नानके लिए जो समय यहां निश्चित किया जा रहा है उसमें स्नानके बाद सारे शरीरको धोने और उसे रगड़कर सुखानेमें लगनेवाला समय सम्मिलित नहीं है। कितनी बार यह स्नान किया जाय? इस प्रश्नका उत्तर भी प्रत्येक व्यक्तिको स्वयं देना चाहिए।

ग्रीष्म ऋतुमें यह स्नान नित्य किया जा सकता है और यदि खुली जगहमें सूर्यके प्रकाशमें या प्रकाशभरे कमरेमें किया

---

[1] टबमें स्नान करनेके लिए पत्थर या सीमेंटके टब बनवाए जा सकते हैं। सभी टब कुशादा होने चाहिए। छोटे टबमें अच्छी तरह स्नान करते नहीं बनता।

जाय तो दिनमें दो बार भी स्नान कर सकते हैं। जाड़ेके दिनोंमें यह स्नान दो-तीन दिनमें एक बार करना काफी होगा। कभी-कभी कुछ समयके लिए इस स्नानको बिल्कुल भी बंद कर दे सकते हैं।

ज्वरसे जलते हुए रोगी और पुष्ट शरीरवाले, ठंढी देह-वाले, कमजोर, रक्ताभावके रोगीकी बनिस्बत अधिक बार स्नान करेंगे।

कई लोग यह स्नान थोड़ी देरतक करते हैं और कई बार करते हैं; कई इसे देरतक करना और देरमें करना पसंद करते है। ये दोनों बाते प्रकृतिके संपर्कमें रहनेवाले वनके पशुमें भी देखी जाती हैं।

प्राकृतिक स्नानके लिए गरम पानी कभी न लिया जाय। यदि यह स्नान कमरेमे किया जाय तो उसकी खिड़कियां खुली रहनी चाहिए ताकि कमरा ठंढा रहे।

स्नानके बाद पैरों और मलद्वारको अच्छी तरह साफ पानी-से धो डालना चाहिए। इससे ये स्थान साफ रहेंगे। स्वास्थ्य-की दृष्टिसे यह बहुत आवश्यक है।

यह स्पष्ट है कि खुली जगहमें स्नान करना अत्युत्तम और अधिक प्राकृतिक है।

खुलेमें प्राकृतिक स्नानकी सुविधा हर कहीं भी मिल सकती है; क्योंकि जहां आदमी रहते है वहां थोड़ा बहुत पानी तो आसानीसे मिल ही जाता है।

सारा शरीर डुबोकर स्नान करनेकी सुविधा प्रकृतिके

प्रांगणमे हर जगह नही है। ऐसा स्नान बहुत थोड़ी-सी जगहोमे किया जा सकता है—केवल उन्ही जगहोमे जहां बड़ा नाला, नदी, झील या तालाव होता है। इसलिए खुलेमें प्राकृतिक स्नानकी सुविधा साधारण स्नानकी सुविधाकी बनिस्बत अधिक जगहोमे और आसानीसे पाई जा सकती है।

प्राकृतिक स्नान जिस प्रकार बैठकर लेते है उसमें बड़ा आराम मिलता है। वह आसन कष्टकर तो किसी प्रकार है ही नही।

प्राकृतिक स्नान जलके अन्य सभी प्रयोगोंसे भिन्न है, खास तौरसे इस मानेमे कि यह स्नान करते समय नहानेवाला चुपचाप बैठा या लेटा नही रहता बल्कि शरीरके कुछ विशेष अगोको हरदम रगड़ता रहता है और अंतमे अपने सारे शरीरको तौलिए या इसी तरहकी किसी अन्य चीजसे नही बल्कि खुले हाथसे रगड़ता है।

आजतकके प्रचारित जलके सभी प्रयोग इस प्राकृतिक स्नानसे भिन्न है, अतः वे प्राकृतिक नही है। उनसे लोगोको कभी समुचित लाभ नही हुआ और अनेक वार वे नुकसान करते देखे गये है। प्रकृति यह चाहती है कि लोग उसकी इच्छानुसार ही चले। अबतकके प्रचलित सभी स्नानोसे प्राकृतिक स्नान प्रत्येक दृष्टिसे अधिक सरल और लाभकर है। इसमे थोड़ेसे पानी (गरम पानीकी तो बिलकुल नही) की जरूरत होती है और यह अपने आप लिया जा सकता है। इसमे किसी सहायककी आवश्यकता नही होती। इसके लिए जिस

टबकी जरूरत होती है वह बहुत साधारण प्रकारका होता है और अन्य टबोंकी बनिस्बत आसानीसे हटाया-उठाया जा सकता है। बड़े मजेमें आप इसे खाटके नीचे सरका दे सकते है और सबेरे उठते ही उसमें स्नान कर सकते है।

इसलिए यह आशा की जाती है कि इस स्नानका अन्य जटिल स्नानोंकी बनिस्बत कुटुंबोंमे और साधारण जनतामें अधिक शीघ्रतासे प्रचार होगा।

यात्रा करते समय या अन्य किसी मौकेपर इस स्नानके लिए आवश्यक टब या कोइं बड़ा पात्र न मिले तो यह स्नान एक अन्य सरल रीतिसे किया जा सकता है। इस रीतिमें केवल हाथ धोनेवाली चिलमची (टीनिया) की जरूरत होती है।

स्नान करनेवाला पानीसे भरी चिलमचीपर बैठ जाता है और मलद्वारको धोता तथा जननेद्रियपर हाथसे कुछ मिनटतक पानी डाल-डालकर ठंढा करता रहता है। इसके बाद क्रमसे पेड़ू और सारे शरीरको धोकर बदनको रगड़-रगड़कर सुखाते है।

इस तरहका स्नान कही भी किसी समय भी किया जा सकता है और इससे सरल और सादा दूसरा स्नान संभवतः है भी नही।

यह स्नान इस प्रकारसे लेनेके बाद भी थोड़ी देरतक नगे बदन टहलना अच्छा है। इससे स्नानके लाभमे वृद्धि होती है।

प्राकृतिक स्नान चाहे किसी रीतिसे भी क्यों न लिया जाय, सभी प्रचलित जलप्रयोगोंसे अधिक लाभकारी है।

मैंने इस स्नानकी रीतिपर जितना ही अधिक विचार किया मुझे अधिकाधिक स्पष्ट होता गया कि स्नानकी यह रीति नहानोंकी अन्य सभी रीतियोंसे निश्चय ही श्रेष्ठ है। यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि पृथ्वीके आदिम निवासीको हफ्तों और संभवतः कभी-कभी महीनोंतक गीली जगहमें चलना पड़ता था और कभी-कभी उसे बरफपर भी चलना पड़ता था। और बहुत संभव है कि उसे घंटों ऐसी जगहमें खड़ा रहना पड़ा होगा और जमीनपर चूतड़ रखकर बैठना भी पड़ा होगा। इसलिए प्रकृतिने मनुष्यके पैरों और नितंबोंकी अवश्य ही ऐसी रचना की है कि वे पानी और ठंढक बर्दाश्त कर सकें; पर प्रकृतिने जो रचना आवश्यकतावश की है उसमें मनुष्यका सबसे बड़ा लाभ भी छिपा है। आजका सुसभ्य मनुष्य अपने पांवोंको और मलद्वारको अप्राकृतिक रीतिसे गरम रखता है जिसकी वजहसे भीतर सूजन आ जानेके कारण कहीं-कहीं खूनकी हरकत रुक जाती है (बवासीरका मस्सा वगैरह हो जाता है) और फलतः एक बड़े लाभसे वह वंचित ही नहीं रहता वरन् नुकसान उठाता है। इसलिए अनेक प्राकृतिक चिकित्सक अपने रोगियोंको गीली जगहमें घंटों टहलनेकी और कुछ देर खड़े रहनेकी राय देते हैं और उन्हें ऐसी चीजपर बैठनेसे मना करते हैं जिससे गुदाद्वारमें गरमी पहुंचनेका डर हो और गुदाद्वारसे थोड़ा पानी चढ़ाकर रोकनेकी भी सलाह देते हैं। यह

सभी जानते है कि गुदाद्वारके अंतिम छोरपर मलके रुके रहने और बवासीर वगैरह हो जानेसे वहां गरमी पैदा होती है जिसका असर मस्तिष्कपर बहुत बुरा पड़ता है। अतः इस स्नानसे सिरकी शिकायतें दूर हो जाती है। पैर और नितंबोंके पानीमे रहनेसे रक्तसंचालन सम होता है। पेडूकी गरमीके कारण रोग होता है और रोगमे पेडूकी गरमी बढ जाती है, ऐसी हालतमे पेडूको ठंडा करना कितने अधिक लाभका होगा।

प्राकृतिक स्नानमे प्राकृतिक चिकित्साशास्त्रके विशिष्ट प्रतिनिधियोद्वारा रोगनिवारणार्थ लाई जानेवाली सभी विधियोका जैसे—नंगे पांव टहलना, पानीमे खड़े रहना, मलद्वार-को गरम होनेसे बचाना, एनिमाका प्रयोग, वायु और प्रकाश-स्नान, पेडूकी ठंडी पट्टी, पेडूनहान, जलस्नान, जननेंद्रियको ठंडक पहुचाना, तरेरा, पेडू और शरीरकी मालिशका समावेश हो गया है। इतनी विधियोंके एक साथ प्रयोगकी विधि प्रकृतिका आविष्कार है, अतः प्राकृतिक नहान सब विधियोसे अधिक प्रभावशाली और मनुष्यजातिके लिए लाभदायक है।

इन प्राकृतिक उपादानोका व्यवहार करनेपर शरीरमे उनकी एक जोरदार प्रतिक्रिया होती है जिसके फलस्वरूप शरीरका विजातीय द्रव्य स्थान-च्युत होकर निकलने लगना है और निश्चयात्मक रूपसे रोगनिवारक उभार होता है जो कष्टकर पीडाके रूपमे प्रगट होता है।

उपचार जितना ही अधिक प्राकृतिक होता है, उभार अक्सर उतना ही जोरदार होता है।

पर इन उभारोंसे डरनेकी जरूरत नहीं है, ये सर्वदा स्वागत करने योग्य हैं। ये उभार अक्सर चिकित्साके आरंभमें ही होते हैं, इनसे डरकर या इनके होनेपर नहान बंद करनेकी जरूरत नहीं है।

मनुष्य प्रकृत-पथसे दूर जा पड़ा है। वह धरती माता-द्वारा खुले हाथों दिये गये फलोंपर जीवन-यापन नहीं करता, वह नंगा नहीं रहता और प्रकृतिके उसके लिए बनाए वायु, पृथ्वी, जल आदि संबंधी नियमोंको कुचलता चलता है। फलतः वह रोगी हो गया। वह अब पुनः प्रकृतिसे सामंजस्य स्थापितकर स्वास्थ्य लौटा सकता है। उसे प्रकृतिसे फिर पथ-प्रदर्शन प्राप्त करना चाहिए। इसके लिए किसी तरहकी चालाकीकी जरूरत नहीं है, न इसके लिए कुछ जानने या सीखनेकी आवश्यकता है वरन् स्वास्थ्यका सही रास्ता पानेके लिए उसे उन सभी झूठी और अनावश्यक बातोंको भुला देना चाहिए जो जबरदस्ती सीखनी पड़ी हैं। उसे अपने सिरपरसे अक्लके सारे बोझको उतार फेंकना चाहिए। इस बोझके नीचे आत्मा और मन दबे रहते हैं और इसने मनुष्य-जातिको मूर्ख और अंधा बना रखा है। जब मनुष्य प्रकृतिके बोल सुनने लगता है तब उसे और किसी चीजके जाननेकी इच्छा नहीं रह जाती। वह यह नहीं जानना चाहता कि प्रकृतिके नियमोंपर चलनेपर रोगोंका

क्यों नाश हो जाता है और क्यो शरीरका स्वास्थ्य एवं शक्ति बढ़ जाती है और न उसे शरीर, मन एवं आत्माके व्यापारके समझनेकी ही जरूरत रह जाती है। मनुष्य-का आजका ज्ञान अविश्वसनीय है, मनुष्य इसके चक्कर-मे पड़कर भटक जाता है।

बच्चेकी तरह प्रकृति माताकी गोदमे अपनेको डाल देनेमे ही मनुष्य-जातिका कल्याण है।

प्रकृतिविरोधी सभी आदतें एक साथ छोड़ सकना सभव नही है। यदि कुछ आदते अच्छी हो तो मै उन्हे भी बुरी आदतोंके साथ धो बहाना नही चाहता और आजके मनुष्यकी हर एक चीजको सकारण समझनेकी आदतको भी तरजीह देना चाहता हूं।

इसलिए मै रोगकी उत्पत्तिके संबंधमें अपने विचार समय-समयपर उपस्थित करता रहूंगा और प्राकृतिक स्नान एवं अन्य प्राकृतिक चिकित्साके उपादानोके उग्र प्रभावशाली होनेका कारण बताऊंगा।

रोग अप्राकृतिक भोजन करने अर्थात् ऐसा भोजन करने-से, जिसे प्रकृतिने मनुष्यके लिए नही बनाया है और न उसकी पाचन-प्रणाली ही उसके पचाने योग्य बनी है, पैदा होते हैं। ऐसी दशामे अप्राकृतिक खाद्योंके पेटमे जानेपर या तो उनका पाचन बिल्कुल होता ही नही और यदि होता भी है तो आधा-पर्धा। जिस अंशका पाचन नही होता वह अंश विजातीय द्रव्य बनकर शरीरमे पड़ा रहता है, अंग-प्रत्यंगमे घुस जाता है,

हो जायगा, कल सैसीसाइलिक एसिडका नाम लिया जाता है, परसों किसी नये दर्दनाशकके गुण गाये जाते हैं, फिर किसी और ओषधिपर संसारके भाग्य टिके बताये जाते हैं, और अंतमें ये सभी ओषधियां हानिप्रद एवं अनर्थकारी सिद्ध होती हैं। आज तो लोग चुपचाप अपनेको उन भयानक ओषधियोंकी भेंट कर देते हैं जिनका भयानक फल भविष्यके गर्भमें छिपा रहता है।

डाक्टर फास्टने अपने स्वर्गवासी पिताके साथ अनेक वार लोगोंको ओषधियां और जादूभरे नुस्खे बांटे थे। ईस्टरके दिन लोग इसके लिए उनके प्रति भक्ति प्रदर्शित करने आए तो वे दवाके रूपमें विष बांटनेके अपने पश्चात्तापको छिपा न सके। कविवर गेटेने उनके हृदयगत पश्चात्तापको उनके मुंहसे इस प्रकार प्रकट कराया है :

> "यदि आप लोग मेरे अंतर्तमके भावोंको जान सकते तो जानते कि मैं अपने पिता और अपनेको आपके समाजके कितना अयोग्य समझता हूं। हम लोगोंकी दवा करती क्या थी? रोगको नहीं रोगीको ही समाप्त कर देती थी। किसीने इसके लिए हमसे कभी जवाब तलब नहीं किया। आज मैं ही पूछता हूं यदि किसीने हमारी ओषधियोंसे लाभ प्राप्त किया है तो वह सामने आए।

आपकी इन सुंदर एवं पवित्र घाटियों और पहाड़ियोंमें हमारी नारकीय गोलियां महामारी-की तरह आईं। मेरे दिये उस जहरने हजारों-को मौतके घाट उतारा और आज हमारे-ऐसे बेशर्म खूनियोंकी दुनिया प्रशंसा कर रही है और उसे सुननेके लिए मैं जीवित हूं।"[1]

प्रकृतिकी शरणमे जानेके बादसे जब कभी मैंने अपने स्वास्थ्य और उसकी कुशलताके लिए सच्चा उपाय जाननेकी कोशिश की है तब हर बार मैंने देखा है कि ये उपाय सर्वथा प्राकृतिक होते है, अर्थात् जो कुछ जब कभी मैंने प्रकृतिसे जाना है उसकी परीक्षा करनेपर वह पूर्णतया सत्य साबित हुआ है। जब प्रकृतिके नियमानुकूल सभी कार्य किए जाते है तब उन कार्योंकी सत्यताकी जांच व्यर्थ है। जो कार्य प्रकृतिकी इच्छा-नुसार होते है उन्हें हमेशा सत्य समझना चाहिए। पशु और

---

[1] गत शताब्दीके अंतमे मनुष्यजातिके रोगी-वृक्षमे एक सजीव शाखा प्राकृतिक चिकित्सा प्रस्फुटित हुई। महाकवि गेटेने इसका प्रकाश पहलेसे पा लिया था। इस महान शक्तिके सामने सभी चीजे पूर्ण स्पष्ट नही हुई थी—यह उनके अंतिम वाक्य है—"ईश्वर! हमारा हृदय प्रकाशसे भर दो।" इसीसे प्रकट होता है कि प्रकृतिमे जो सत्य है उसके निकट वे पहुंच गये थे। प्राकृतिक चिकित्साके जन्मकी सूचना उन्हे मिल गई थी। गेटेने अपनी महान कृति "फास्ट" मे जगह-जगह अपनी ओजपूर्ण कवितामे आजकी सभ्यताकी बेहूदगियोंकी कटु आलोचना की है।

पृथ्वीके आदिम निवासी जव वे प्रकृतिके सपर्कमे रहते थे तो क्या वे स्नान और भोजनपर प्रयोग करके जानते थे कि उन्हे कैसे नहाना चाहिए और क्या खाना चाहिए ? अतः प्राकृतिक स्नानको भी किसी ऐसे प्रयोगमे पड़नेकी जरूरत नही हुई ।

इस प्रकार जव मैने पहली वार स्नान किया तो मुझे वह लाभ और वह ताजगी मालूम हुई जो मुझे अपने जीवनमे जलके अन्य किसी स्नानसे नही प्रतीत हुई थी ।[1]

मेरे सिवा और दूसरे जिन लोगोंने इसकी परीक्षा की उन सवको भी इसकी अनुकूलता और इससे प्राप्त हुए लाभ-पर आश्चर्य हुआ । सवको स्नानके समय एक वड़ी ही सुखद ठंढककी प्रतीति होती थी और स्नानके वाद उनका वदन पहलेसे ज्यादा अच्छी तरह और समान रूपसे गरम हो जाता था । प्रायः सभी लोग कहते थे कि नहान आरंभ करनेके वादसे

---

[1]थोड़े ही ऐसे थे जो इस स्नानके कारण हुए रोगके उभारसे डर गये थे । उदाहरणार्थ एक सज्जनको जिन्हे पुरानी फेफडेकी वीमारी थी, जव उन्होने स्नान शुरू किया तो उनका जीर्ण रोग नवीन रोगमे परिणत हो गया—रोग जानेका यह शुभ लक्षण है । इन्ही महाशयने यह भी कहा कि धूपस्नान उनके अनुकूल नही पडता । जव धूपस्नान लेते है तो वदनके अग-अगमे दर्द हो जाता है । जव कि इस दर्दका यह मतलव है कि उनके शरीरके विजातीय द्रव्य (रोगके कीटाणुओको) सूर्यकी किरणे अपनी जगहसे निकाल फेंकनेके लिए हटा रही है । जिन रोगियोको प्रकृति और उसकी चिकित्सा-शक्तिका इतना-सा ज्ञान नही है वे शायद ही कभी स्वास्थ्यलाभ कर सके ।

भूख बढ गई है, पैर ठीक तौरसे गरम रहते हैं, त्वचा ठीक तौरसे काम करती है, पसीना थोड़ा-थोड़ा निकलने लगा है, चित्त प्रसन्न और प्रफुल्लित रहता है, काम करनेमे जी लगता है, और भी सब तरहसे लाभ प्रतीत होता है।

इस स्नानकी तारीफमे मुझे मिले सैकड़ों पत्र और खुशी-खुशी आकर लोगोंकी गाई गई प्रशसा मै यहा उद्धृत कर सकता हूं। पर मै किसी तरहके ढोल व नगाड़े बजाकर इसकी तरफ लोगोका ध्यान आकर्षित करना नही चाहता, मै चाहता हूं कि लोग स्वय इसे कर देखे और इसके लाभको समझें।

प्रत्येक व्यक्ति जो प्रकृतिको समझता है वह जानता है कि प्राकृतिक भावोके अनुकूल और उसकी इच्छाके अनुसार किए गए कार्य मनुष्यमात्रके लिए कल्याणके साधन है। ऐसा व्यक्ति इस स्नानका स्वागत अवश्य करेगा और उसे यह स्नान अकूत सुख और स्वास्थ्य प्रदान करेगा। यदि ऐसे आदमी जिनका प्रकृतिकी अवहेलना करना ही धर्म है और जिन्होने विज्ञान और डाक्टरमे अपनी सारी श्रद्धा डुबो दी है, यदि इस स्नानका उपहास करे और इसकी ओर घृणाकी दृष्टिसे देखें तो हमे उसकी परवाह नही करनी है।

इस स्नानका प्रयोग आरंभ करनेवालोंको मै इसके संबंध-मे कुछ और बाते बता देना चाहता हूं। इस स्नानके गरम पानीसे किए जानेका मै विरोधी हूं। ऐसा करना प्रकृति-विरुद्ध है। ठंढे-से-ठंढे पानीमें भी पैर और नितंब रखकर बैठना बहुत कठिन नही है। जहां एक बार पेड़ू और जननेंद्रिय धोई

और रगड़ी गई, पेड़के अंदर ठंडक पहुंची कि खून वहां (जो ठंढे पानीसे बहुत डरते हो वे आरभमें यह स्नान बहुत हलके गरम पानीमे या गरम कमरेके अंदर कर सकते है) दौड़ आता है और सारे बदनमें गरमी आ जाती है। पर इसपर भी जाड़के दिनोमे यदि कोई यह स्नान न कर सके, गोकि ऐसा होता बहुत कम है, तो या तो वह स्नान बहुत थोड़ी देरके लिए करे या फिर बिल्कुल ही बंद कर दे। ऐसी अवस्थामे नंगे रहना, पेड़पर मिट्टीकी पट्टी रखना जिसके बारेमे आगे चलकर मैं विस्तारसे बताऊंगा, आदि उपचारोसे लाभ उठाया जा सकता है।

स्नानके लिए टबमे जो पानी भरा जाय वह बहुत गहरा न हो, रोगीके हाथके पजे जितना गहरा काफी होगा। साधारणत. एक व्यक्तिके लिए तीन इञ्च गहरे पानीसे अधिककी जरूरत नही होती। स्नानके बाद शरीरको रगड़ने और कसरत करनेकी जो राय दी गई है वह कसरतके किन्ही खास नियमों अथवा मालिशकी किसी खास पद्धतिके अनुसार नही होनी चाहिए वरन् इनके करते वक्त अपनी इच्छा और रुझानका ख्याल रखना चाहिए।

जिसे सुविधा हो (जो खोजता है उसे सुविधा मिल ही जाती है) वह यह स्नान खुली जगहमे ले। आरभमे मनुष्य खुली जगहमे ही स्नान करता था। यदि वह इस स्नानसे पूरा लाभ लेना चाहता है तो फिर खुलेमे वह इसे करना आरंभ कर दे। गंदी हवा और कमरेमे बैठकर भोजन करनेके

बजाय खुली जगहमे बैठकर भोजन करनेपर भोजन भी अधिक स्वादिष्ट लगता है और उससे शरीरको लाभ भी अधिक पहुंचता है।

स्त्रियोंको मासिक धर्मके समय यह स्नान बंद कर देना चाहिए पर नंगे पांव टहलना, वायु और प्रकाशस्नान करना, मिट्टीकी पट्टी लेना आदि बंद करनेकी जरूरत नही है। इस समय इन्हे करते रहना विशेष लाभकारी है।

यह स्नान नदीमे, (यदि गहरी हो तो तटके निकट) झरनों एवं छोटे तालाबमे किया जा सकता है। यदि कमरेमे किया जाय तो खिड़कियां थोड़ी-बहुत जरूर खुली रहे। सबेरे कुछ भी खानेके पहले अथवा तीसरे पहर दोपहरका भोजन पच जानेके बादका समय यह स्नान करनेके लिए सर्वश्रेष्ठ है।

सभी मछलिया (जलके जीव) हवासे दूर रहना चाहती है और हवामे रहनेवाले सभी प्राणी अपने शरीरको पानीसे बचाते है और जब स्नान भी करते है तो अपने शरीरकी बनावटके अनुसार शरीरके कम-से-कम भागमे पानी लगने देते है। मनुष्य प्रकाश और वायुमे रहनेवाले सब जीवोमे श्रेष्ठ है। यदि उसे हवा मिलना एकाएक बद हो जाय तो वह बहुत थोड़ी देरमें मर जायगा। यदि उसके लिए आवश्यक वायुका बहुत थोड़ा भाग भी रुक जाय तो जिस प्रकार पानीसे निकलते ही पानी बिना मछली मरने लगती है उसी प्रकार आदमीकी भी जीवनशक्ति कम होने लगती है और वह कमजोर हो जाता है। जब आदमी प्रचलित स्नान करता है तो वह अपने

शरीरको पानीमें डुबो देता है, उस वक्त वह अपने रोमकूपों जिनसे वह काफी वायु शरीरमे ले जाता है न शुद्ध वायु ही खीच सकता है और न उपयोगमे लाई हुई गंदी वायु ही निकाल सकता है। अत इस प्रकारके स्नानसे शरीरको हानि पहुचती है और वह कमजोर हो जाता है। यदि ऐसा स्नान बहुत थोडी देर, कुछ क्षणोके लिए ही किया जाय तो शरीरमे ठढक पहुंचनेसे उसे जो लाभ मिलता है और यह ठढक कुछ क्षणोमे ही शरीरमे पहुंच जाती है—वह शरीरके उतनी देर वायुसे वंचित रहनेकी हानिसे कुछ अधिक हो सकता है। पर यदि वह स्नान प्रचलित प्रथाके अनुसार पाच, दस या पद्रह मिनट या इससे भी अधिक देरतक किया जाता है तो इससे बहुत अधिक हानि होती है। पर यदि हमारे किसी विशेष अगको या भागको वायु न लगे जैसा कि चमड़ेके दस्ताने पहन लेनेपर हाथोका हाल होता है, तो उस अंगको क्षति पहुंचती है। उससे वह एक तरहसे पगु हो जाता है। बैठक नहान[1] लेते वक्त कमर और पेट चारों ओरसे पानीसे ढक जाता है इसलिए शरीरका यह अंग वायुसे वचित हो जानेके कारण अकर्मण्य-सा हो जाता है और स्नान लेते वक्त समुचित रूपसे क्रियाशील नही रहता। अत इस स्नानसे बहुत कम लाभ मिलता है। बैठक नहानमे न पेडूपर पानी मारते है और

---

[1]बैठक नहान कूनेके कटिनहानकी तरह लिया जाता है। अतर इतना ही है कि आदमी चुपचाप टबमे बैठा रहता है, पेडूको नही मलता।

—अनुवादक

न उसे रगड़ते है। प्राकृतिक स्नानमे पिछले जल-प्रयोगोकी सभी गलतिया जिनके कारण स्नानका पूरा लाभ नही मिलता था दूर कर दी गई है। जलके इस प्राकृतिक प्रयोगसे जो लोगोको बड़े-बड़े लाभ मिल रहे है उसका यही रहस्य है।

अब यह आशा की जानी चाहिए कि प्राकृतिक स्नानका अमीर और गरीब, छोटे और बड़े समान रूपसे आदर करेगे और जनतामे इसका प्रचार हो जायगा। इसके द्वारा बूढ़े और जवान, बच्चे और बड़े सबको वह आनंद प्राप्त होगा जिसे सहृदया प्रकृतिमाता खुले हाथो लुटानेको उत्सुक रहती है। यदि कोई कहे कि मै स्वस्थ हू अत. मुझे इस स्नानकी जरूरत नही है तो यह उसकी गलती है, क्योकि प्रकृतिकी प्रधान इच्छा यह नही है कि रोगी ही स्नानकर खोया स्वास्थ्य प्राप्त करे बल्कि वह तो यह चाहती है कि सभी स्नान करे, स्वस्थ एवं प्रसन्न रहे और सबका चेहरा प्रकाशसे दीप्त रहे। प्रकृतिके जिन अलघ्य नियमोके अनुसार गरमीके बाद जाड़ा और रातके बाद दिनका होना अवश्यभावी है, उन्ही नियमोके अनुसार अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करनेवाले, गंदी हवामे रहनेवाले, शराब, चाय, काफी, तबाकूका व्यवहार करनेवालेका रोगका शिकार होना अवश्यभावी है। इसका यह मतलब नही है कि इस विनाशमे पडे हुएको वही रोग हो जिनसे लोग आमतौरसे परिचित है या जो दिखाई देते है वरन् कोई-न-कोई रोग शरीरमे अवश्य घर कर लेता है और आगे-पीछे वह स्पष्ट रूपसे प्रगट भी होता है।

कई बच्चे जब स्कूलमे जाते है तो उनका पढ़नेमें ध्यान नहीं लगता, वे सुस्त रहते है और उन्हे सबक बड़ी मुश्किलसे याद होता है। बहुधा वह लाड़-प्यारमे खराब हुए होते है और पाप एवं दुराचारमें फँस जाते है। उन्हे इसके लिए दंड दिया जाता है और अक्सर वे बुरी तरहसे पीटे जाते है। सही बात यह है कि वह बच्चा भयंकर रूपसे रोगसे पीड़ित है, उस निर्दोषको व्यर्थ दड दिया जाता है। पिताको अपने प्रिय पुत्र, और पतिको अपनी प्रिय पत्नीके साथ कठोरताका और कभी-कभी राक्षसका-सा व्यवहार करते और फिर उसके लिए पश्चात्ताप भी करते आपने देखा होगा। बेचारे नही जानते कि शराब तथा अन्य विषका उपयोग करनेके कारण उनके स्नायु आवश्यकतासे अधिक गरम हो गए है और वे बीमार है।

कई अन्य प्रकारके लोग भी अनेक तरहके दुराचार और अपराधमे फँस जाते है। ऐसे लोगोको रोगमुक्त करने एवं स्वस्थ बनानेके बजाय जेलो और पागलखानोमे भेज दिया जाता है।

नववधू घरमे पैर रखती है और शीघ्र ही उसके स्वभावमें परिवर्तन होने लगता है। वह वहमी, चिड़चिडी और मूर्छा रोगसे आक्रात हो जाती है। "विवाहके कपड़े मैले होनेके पहले ही हृदयकी चिर सचित कामनाए छिन्न-भिन्न हो जाती है।" वैवाहिक जीवनमे चिर अभिलषित सुख नही मिलता, स्वर्ग नरकमे परिणत हुआ प्रतीत होता है। विवाहके समय जिस

युवतीको लोग सर्वगुणसपन्न एवं सहृदया कहते थे उसे लोग धीरे-धीरे डायन कहने लगते है। पर उस बेचारीकी भर्त्सना करना व्यर्थ है। जिस प्रकारका अप्राकृतिक जीवन विवाहित दंपति साधारणतया व्यतीत करते है उसका कुछ फल तो मिलना ही है और पहला फल अक्सर पत्नीको ही चखना पड़ता है।

प्रकृतिके सपर्कमे रहनेवाले वनके पशु और पौधों (खेतके पौधे नही) का स्वास्थ्य, सौदर्य और यौवन प्रत्येक जातिके लिए एक निश्चित समयतक कायम रहता है—केवल उनको छोड़-कर जिनके प्राकृतिक जीवनमे मनुष्यने बाधा डाल दी है—और फिर उन सबकी मृत्यु हो जाती है।

आजके जमानेमें मनुष्योकी हालत यह है कि बचपनमें ही किसीकी आंखे खराब हो जाती है, किसीको सुनाई ही कम देने लगता है, किसीके दांत गिर जाते है, किसीके बाल झड़ जाते है, कितनोहीको स्नायुदौर्बल्यका रोग हो जाता है और कितनोहीका दिमागतक कमजोर हो जाता है। आजकी अनिदितागी सुंदरीपर कल ही कुरूपताकी छाया पड़ जाती है, वह पीली और दुबली हो जाती है अथवा मोटी और भद्दी और अभी-अभी जो युवक उसके सौदर्यसे अभिभूत था उसे वह घृणास्पद प्रतीत होने लगती है।

कितने ही आदमी, जिनकी आर्थिक स्थिति ठीक रहती है, चिंतित और घबराए रहते है, कितने ही लखपतियोपर तो भोजनतककी चिंता सवार रहती है।

"चिंता हृदयके अंतस्तलमें निवास करने लगती है। एकांत पाते ही यह चिंता उसका कलेजा काटने लगती है, वह लुटी-सी दशामें छटपटाती रहती है।"

× × ×

"हम उस आघातसे डरते रहते हैं जो हमें कभी नहीं लगा, हम उस वस्तुके लिए रोते रहते हैं जो हमने कभी नहीं खोई।"

(गेटेके 'फाउस्ट'से)

इन सभी काली घटाओंको, जिनसे राजाके महल और रंककी झोपड़ीकी शांति और सुख समानरूपसे विनष्ट होता रहता है, प्राकृतिक स्नान उड़ा और भगा देगा।

यह नवीन प्राकृतिक स्नान जिसे प्राचीन विशेषणसे विभूषित करना ही ज्यादा उपयुक्त होगा, मनुष्यको अपनेको जीवित रखनेकी आजकी लडाईके लिए जवानोको शक्ति और स्फूर्ति प्रदान करेगा और उसके दौड-धूप हड़बड़ीभरे जीवनमें शांति और मधुरता भरेगा। कुत्तोद्वारा पीछा किए जानेपर थकान और बदहवासीकी हालतमें मैंने पशुओको अपने स्नायुओं-को शात करने और पुन. शक्ति प्राप्त करनेको स्नानके लिए जलकी तलाश करते देखा है। आजके हतभागे मनुष्योको जो आपसमें ही एक दूसरेका इस तरह पीछा करते है कि वे हमेशा थकानसे हांफते रहते है और उनके स्नायु हमेशा उत्तेजितसे

रहते है । क्या ही अच्छा होता यदि उन्हें यह ज्ञात हो जाता कि प्राकृतिक स्नान उन्हे शाति और शक्ति दोनों प्रदान करेगा ।

इस स्नानसे तत्काल लाभ यह मिलता है कि पेडूकी गरमी शांत हो जाती है, ठंडक आ जाती है और जीवन-शक्ति (पाचन-शक्ति) इस हदतक बढती है कि वह विजातीय द्रव्यको और अप्राकृतिक भोजनके कम पचे या अनपचे भागको निकालने लगती है जिससे वे लोग भी, जिन्होने अपने जीवनमें कभी किसी प्रकारके सुधारको स्थान नही दिया, रोगोंके आक्रमणसे बच जाते है ।

जो इस रीतिसे बराबर स्नान करेंगे वे कभी पक्षाघात, विषाद रोग, मीयादी बुखार, हैजा, नासूर, क्षय आदि रोगोके चंगुलमे नही फँसेंगे ।

प्राकृतिक स्नानके जो लाभ यहां बताए जा रहे है, इस स्नान-के बाद होनेवाली अनुभूतिके आधारपर उनकी कोई भी आशा कर सकता है ।

इस स्नानसे शरीरकी प्रतिक्रिया शक्ति भी बहुत अधिक बढ जाती है । उसकी दशा पहलेकी-सी हो जाती है जब कोई भी अनावश्यक वस्तु शरीरमे प्रवेश करते ही यह शक्ति उसे निकाल बाहर करनेकी कोशिश करती थी । (उदाहरणके लिए जब कोई पहले-पहल सिगरेट पीनेकी कोशिश करता है तो उसे कै और मिचली आती है ।)

प्राकृतिक स्नान करने लगनेके बाद सिगरेट पीनेवालोको

सिगरेट पीना अच्छा नही लगता। शराब और मांसके आदियोंको कोई भी शराब अच्छी नही लगती और न मांस खानेकी इच्छा होती है। अधिकतर लोगोका प्रकृतिके प्रति आकर्षण बढ़ जाता है और इस आकर्षणका लाभ उठाकर वे प्राकृतिक जीवनको अधिक-से-अधिक अपनानेकी कोशिश करते है। इस प्रकार आज जो अपनेको स्वस्थ कहते है वे भी इस स्नानसे आरोग्य लाभ करते है।

मै चाहता हूं कि यह स्नान रोगियोके निवासस्थानमे भी प्रवेश करे और अशक्त और ज्वराक्रांत, गठियासे पीड़ित और लुंज, अंधे, बहरे, स्नायुदौर्बल्य एवं क्षयसे पीड़ितोंको भी, जो कष्टसे कराहते रहते है एवं की गई गलतियोके लिए पश्चात्ताप करते रहते है, खुशीका संदेश सुनावे।

रोगी निराशाके अंधकारमे आशाकी किरणें ढूंढते रहते है। सान्त्वनाका प्रत्येक शब्द उनपर असर करता है। प्राकृतिक स्नानकी बात बताई जानेपर उनमेसे अनेक ठढे दिलसे कहते है, आपकी बाते तो समझमे आ रही है पर विश्वास नहीं होता। ठीक है, अनेक बार अनेक प्रकारकी ओषधियोपर उन्होने विश्वास किया और फल ऐसा निराशाजनक निकला कि उनकी सारी आशा ही मर गई।

पर पूछना यह है कि अबतक किसकी सहायताकी याचना और प्रार्थना की गई? जिन देवताओकी अबतक पूजा की गई उनकी परीक्षा होनी चाहिए थी; यदि उनकी बडी-बड़ी उपाधियों और बाहरी तड़क-भडकको हटाकर उन्हे देखा जाता

तो मालूम होता कि वे बहुत साधारण किस्मकी मिट्टी और पत्थरके बने हैं।

उनका विश्वास दवा देनेवाले चिकित्सकपर था और यदि कोई रोगी चिकित्सक महाशयके सामने प्राकृतिक चिकित्साकी तारीफ करता तो चिकित्सक महाशय कह देते कि उनकी दवा भी प्रकृतिसे ही ली गई है अतः हानिरहित है। इसमें क्या संदेह है कि सभी चीजें प्रकृतिसे मिलती हैं। तंबाकू और शराब भी तो प्रकृतिसे ही मिलती हैं जिनके कारण लोगोंको अपार कष्ट होता है! ऐसे जहर भी तो प्रकृतिसे ही मिलते हैं जिन्हें थोड़ी मात्रामें भी आदमी खा ले तो तुरंत मर जाय। ये चिकित्सक अपनी दवा अधिकतर जहरीले पौधों और खनिजोंसे बनाते हैं। जंगली लोग और पशु, जिन्हें वृक्ष-विज्ञानका कोई ज्ञान नही होता, जहरीले पौधोंको बिना चखे ही पहचान जाते है और उन्हें शत्रु समझकर उनसे बचते हैं। ये जहरीले पौधे और 'शोधक' रसायन हमारी विकृत रसनाको भी अपनी प्राकृतिक अवस्थामे बहुत बुरे लगते हैं! इससे यह साबित होता है कि जब इन्हे अप्राकृतिक तरीकोंसे और भी खराब कर दिया जाता है, तब वह हमारे लिए और भी हानिकर होते हैं। स्वास्थ्यावस्थाकी बनिस्वत रोगावस्थामें इनका उपयोग अधिक हानिकर होगा।

ईश्वर अपनी आज्ञाएं स्पष्ट शब्दोंमें और विविध रीतियोंसे बराबर देता है जैसे, "तू वृक्षोंको न खा" हम उस सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान ईश्वरकी आज्ञाओंका उल्लंघन बराबर

करते है और दंडस्वरूप स्वर्गसे बार-बार निकाले जाते है।

कुछ लोग प्राकृतिक चिकित्साकी बडाई सुनकर इतने अधे हो जाते है कि वे अपनेको "प्राकृतिक चिकित्सक" के हाथों सौप देते है और समझते है कि उनकी अच्छी-से-अच्छी चिकित्सा हो रही है। ऐसी दशामे भी अनेकोकी आशा निराशामें ही परिणत होती है।

यदि हम प्रकृतिकी शरण जाय तो आज भी हमे निश्चयपूर्वक और आसानीसे ज्ञात हो सकता है कि स्वास्थ्य-रक्षा और रोग-निवारणके लिए हमे किन साधनोंका अवलंबन करना चाहिए। चिकित्सक कहता है कि ताजे फल न खाओ। खाना है तो उन्हे उबालकर खाओ। पर प्रकृति हमारे लिए हमेशा उबाले हुए नही, ताजे फल ही उपजाती है इसलिए ताजे फल ही प्रत्येकके लिए और प्रत्येक दशामे अच्छे रहेगे; क्योकि प्रकृतिकी पाकशाला सर्वोत्कृष्ट पाकशाला है। दूसरे प्राकृतिक चिकित्सक महाशय गेहूके आटेकी रोटी भर-भर पेट खानेकी राय देते है। हमने देखा है कि स्पैरो (एक पक्षी) और घोड़ा राई और गेहूकी बालियां खाना पसद करता है पर मालूम होता है मनुष्य इन बालियोंको प्राकृतिक दशामे नही पचा पाता। पशु इन्हे कच्ची या अधपकी दशामे और इनके डठल समेत खाना ज्यादा पसद करता है पर साधारण रोटी या खमीर उठाई हुई रोटी भूसी और डठल निकालकर केवल पके अन्नके गूदे (बिना चोकरका आटा) की बनती है। और भी देखा जाता है कि जब घोड़ो और अन्य पशुओसे खास तौरसे

कठिन श्रमका काम नही लिया जाता उस वक्त यदि उन्हें गेहूं या जई ज्यादा खानेको दी जाती है तो उनके पैरोमे सख्ती आ जाती है और वे बदमिजाज हो जाते है। घोडेकी संवेदनशीलता तो देखिए कि जहां उसे खास तौरसे सवारीके काममे आनेवाले घोड़ेको ज्यादा आटा खिलाया गया कि वह बीमार पड़ा। जंगली घोड़े और जेबरा जो केवल घास खाकर रहते है, पालतू घोड़ोसे कितने अधिक सुंदर, तेज, मजबूत और कठिनाई बर्दाश्त करनेवाले होते है। डबल रोटीका अन्न पिस-पककर अपनी प्राकृतिक अवस्थासे बहुत भिन्न हो जाता है इसलिए अच्छा यही है कि डबल रोटी खानेकी राय देनेवालोकी बात अनसुनी कर दी जाय और जब कोई उपाय न चले तभी खमीर उठाई रोटी खाई जाय और उसे थोड़ी-से-थोड़ी खाकर काम चलाया जाय। जिस आटेमे बाहरी चीजे डालकर खमीर उठाते है उसकी रोटी तो कभी न खाई जाय।

अक्सर लोग वाष्पस्नानकी राय देते है पर प्रकृतिने किसीके साथ वाष्पस्नानका कटघरा पैदा नही किया, न प्रकृतिमे कही कोई ऐसी चीज मिलती है जिसकी तुलना वाष्पस्नानके कटघरेसे की जा सके। इसलिए चाहे सभी प्राकृतिक चिकित्सक एक स्वरसे क्यों न वाष्पस्नानकी तारीफ करे पर है यह नुकसानदेह ही। मेरे कथनकी सत्यता तो भविष्य प्रमाणित करेगा गोकि इक्के-दुक्के लोग तो आज भी वाष्पस्नानका खुल्लमखुल्ला विरोध करते सुनाई देते है।

तो यह साफ है कि प्रकृति बड़ी सरल और सुबोध भाषामें

बोलती है। प्रकृतिकी यह भाषा किसी स्कूलमे नही पढाई जाती पर यदि हम इसके समझनेकी कोशिश करे तो यह भाषा हमे अधिकाधिक समझमें आने लग जायगी।

कुछ लोगोको समयके प्रभावसे प्रकृतिकी आवाज सुनाई नही देती और जिन्होने विश्वविद्यालयोमे और ऐसे स्थानोंमें, जहां स्वास्थ्य-सबंधी ज्ञान प्रकृतिका विरोध करना समझा जाता है, शिक्षा पाई है उन्हे विशेषत: यह आवाज नही सुनाई पड़ती। इन विश्वविद्यालयोमे खाद्योपर प्रयोग किए जाते है, उनके विभाज्य अंगोका पता लगाया जाता है और एकपर दूसरेकी प्रतिक्रिया जानी जाती है और वहा यह उम्मीद की जाती है कि मुर्दे बतायेगे कि जिंदोमे भोजन किस प्रकार सजीव पदार्थमे परिणत हो जाता है।

समुचित भोजन क्या है? स्वास्थ्य-रक्षाके लिए भोजनके सबधमें क्या जानना चाहिए? इन प्रश्नोके उत्तरके लिए आदि निवासियोंने न कभी रसायनसंबंधी तालिकाको देखा, और न जगलमे रहनेवाले घोड़े और हिरन अपने भाई-बहनोके शवकी जांच करते है और न पेटकी बनावट जानते हैं और न आतोकी लंबाई ही नापते है। इसलिए प्रकृतिकी यह इच्छा नही है कि उपरोक्त रीतिसे हमलोग स्वास्थ्यसंबधी ज्ञान प्राप्त करें; इस प्रकारका ज्ञान प्रकृतिके विरुद्ध है। अत: यह हमेशा गलतीके रास्तेपर ले जानेवाला है। प्रयोगशालामे निर्जीव वस्तुएं उत्पन्न की जाती है पर मनुष्यकी पाचनशालामें उसके सजीव शरीरके अंग और विभाग तैयार होते है। रासा-

यनिक द्रव्योकी बाहर होनेवाली क्रिया-प्रतिक्रियाकी तुलना मनुष्य-शरीरके स्नायुजालपर होनेवाले असरसे नही की जा सकती। शरीरके परिचालन, पाचन एवं जीवनके पीछे कुछ गुप्त शक्तियां काम कर रही है जिन्हे हम न कभी समझ सके, न कभी उन्हे समझ सकनेकी उम्मीद है। निःसंदेह आजका मनुष्य निरंतर और विना दम लिए अन्वेषणके कार्यमे लगा हुआ है पर यह भी वह एक देवीके इस श्राप—"पृथ्वीपर तू आवारगी और भगोड़ेका जीवन व्यतीत करेगा"—का भरना भर रहा है, लेकिन—

> "दिनके प्रकाशमें भी वह हमें दिखाई नहीं देता, हमारे शोर करनेपर वह हट नहीं सकता, प्रकृति जो हमें बताना नहीं चाहती, वह हम संड़सी, हथौड़े और चाकूके जोरसे नहीं जान सकते।"
>
> (गेटेके 'फाउस्ट'से)

जिन तत्त्वों, द्रव्यो और क्रियाओका महत्त्व प्रयोगशालामे होता है उनका मनुष्यके आमाशय और स्नायुजालके लिए लाभकर होना आवश्यक नही है। यही नही, ये उनके लिए अनर्थकारी भी सिद्ध हो सकते है। फलतः इस प्रकारका विज्ञान हमेशासे मूर्खतापूर्ण विचारोसे भरा रहा है।' ऐसे युवकोंपर जो

'लोग कहते है कि औषध-विज्ञानको इस प्रकार सीधे-सीधे गलत नही

वाहरी प्रभावके प्रति संवेदनशील रहते है और जो आजकी गलत शिक्षाके कारण आख मूदकर सर्वज्ञ और प्रमाणके पंडित कहे जानेवाले लोगोकी वात सोलहो आने सही मान लेते है, गलतीका असर खास तौरपर होता है। यह असर इनपरसे मिट नही पाता, उनपर इसकी छाप लग जाती है। जो चिकित्सक विद्यालय-द्वारा अपने सिरपर लादे बोझको उतार फेकना चाहता है और वहा सीखी गई गलतियोसे छुटकारा पाना चाहता है उसे इसके लिए विशेष प्रयत्न करनेकी आवश्यकता होगी और अपने अंदरसे उस झूठे घमडको जो हलकी चीजोको मूल्यवान बतानेकी कोशिश करता है, निकाल डालनेकी जरूरत होगी।

सवको ऐसी शिक्षा देनी कि सव अपनी चिकित्सा आप कर सकें, यह पवित्र आदर्श प्रत्येक प्राकृतिक चिकित्सकके सामने होना चाहिए।

दूसरे हमारे लिए सोचे या सोचनेका बहाना करे यह देख सकना वडा आसान और साथ-साथ मजेदार भी है। पर यदि लोग स्वास्थ्यका सत्य मार्ग पाना चाहते है, जीवन-बसतमे विहार

कहा जा सकता। औषध-विज्ञानका जन्म मनुष्यके प्राकृतिक जीवनके पतनके साथ हुआ और ज्यो-ज्यो मनुष्यने अप्राकृतिक जीवनको अपनाया इसकी उन्नति हुई और अप्राकृतिक जीवनके अतके साथ-साथ इस विज्ञानका अत होना भी निश्चित है। इतिहास वताता है कि अनेक प्रकारके दूषण सदियोतक प्रचलित रहे है और फिर मिटे है। जादूगरीको मिटते तो विज्ञानने स्वय देखा है।

करना चाहते है तो प्रत्येकको अपना डाक्टर आप बनना चाहिए।

पर मै किसी रोगीको प्राकृतिक स्नान करनेकी राय दूं तो क्या उसे मेरी बात माननी चाहिए ? जरूर ? और बिला झिझकके ! मेरा स्नानसे कोई सबंध नही है। यदि संबंध है तो इतना ही कि इस स्नानको इस रूपमे प्रकृतिसे प्राप्त करनेका मेरा सौभाग्य रहा है । और भी जो कुछ मै इसके बारेमे कह रहा हूं वह केवल यह दिखानेके लिए कि खेत, चरागाह, जंगल और घाटीमें रहनेवाले प्राणी जो अब भी प्रकृतिके भावको समझ पाते है इस स्नानको जानते है और लाभके साथ इसका उपयोग करते हैं। गो कि हमारी भावना नैसर्गिक वृत्ति और विवेक बहुत कुछ दब गए है फिर भी वे इतने सजग तो है ही कि हम उनके द्वारा यह जान सकें कि हमारे लिए सही रास्ता क्या है । आज भी हमे हमारी रसना बता सकती है कि बिना बिगाड़ी स्वाभाविक दशामें हम जिन खाद्योका उपयोग कर सकते है वे करमकल्ला, आलू या मांस नही है । प्रकृतिने हमारे लिए फल, छोटे रसीले फल, (शहतूत, मकोय, जामुन इत्यादि) और गिरीवाले फल (बादाम, अखरोट, नारियल) ही उपजाये है । इसी तरह जिन्होने और अनेक प्रकारके स्नान किए है प्राकृतिक स्नानसे उन्हे जो आराम और ताजगी मिलती है उससे इस स्नानकी सर्वश्रेष्ठताके विषयमें उनके मनमे कोई संदेह नही रह जाता।

इसलिए स्वास्थ्यमे किसी प्रकारकी गड़बड़ी आनेपर जिसे लोग आज रोगके नामसे पुकारते है या स्वास्थ्य बिलकुल खराब होनेकी दशामें भी जिसे नाना ओषधियां, जो कुछ-न-कुछ प्रकृति-

विरोधी अवश्य रही होगी, न सुधार पाई हों, हमे प्राकृतिक स्नानका पूरे विश्वासके साथ उपयोग करना चाहिए। पर एक रोगी जब खतरनाक और नुकसानदेह दवाओसे अपना पिड छुड़ा लेता है और प्राकृतिक निरापद ओषधियोकी शरण जाता है तो खाई गई दवाओ और गलत चिकित्साके कारण उसका रोग इतना बढ़ गया होता है कि उसे प्रकृतिकी प्रकाश, वायु, भोजन, मिट्टी आदि अधिक आवश्यक ओषधियोकी भी जरूरत होती है। यदि आज आप किसीको यह बताइए कि तुम्हे नगे रहना पडेगा, खास तौरसे ठढकके वक्त, चाहे बहुत थोडे समयके लिए ही नगे रहनेको कहिए और यह भी कह दीजिए कि यह क्रिया कमरेमे अकेले खिड़कियां खोलकर करना होगा तो भी वे घबरा जाते है और यदि उनसे कह दीजिए कि तुम्हे मासका भी त्याग करना होगा तो उनकी व्याकुलता और भी बढ़ जाती है! क्योकि वे समझते है कि उन्हे सारी शक्ति मांससे ही मिलती है। पर यदि इनसे स्नान करनेको कहिए तो ये किसी तरह मान जायगे, खास तौरसे प्राकृतिक स्नान। क्योकि इसमे ठडे पानीमे सारे शरीरको क्या आधे शरीरको भी डुबोनेकी जरूरत नही पड़ती। तो फिर पहले प्राकृतिक स्नान ही करना आरभ किया जाय।

निश्चय ही जल प्रकृतिकी विशेष ओषधि है जिसके द्वारा वह अपने बच्चोको बड़े-बड़े लाभ देना चाहती है। और जो जलका यह प्रयोग प्रकृतिकी इच्छित रीतिसे करेगा उसे बाइबिलका यह वाक्य "पृथ्वीको कोई रूप नही मिला था, वह

बिल्कुल शून्य थी और ईश्वरकी सत्ता समुद्रपर राज्य करती थी" समझमें आ जायगा। वपतिस्मा लेते वक्त पाक फिरिश्ते क्यो ईसाके पास आये ? और क्यों वपतिस्मा लेना ईसाई-संप्रदायमें धार्मिक संस्कार एवं शारीरिक आध्यात्मिक स्वास्थ्यका चिह्न माना जाने लगा—इसका कारण भी वह समझ जायगा।

पर आज देखिए तो कोई बहरा मिलेगा तो किसीको दूरकी चीज दिखाई नही देती, किसीके पैर सूजे हैं, किसीके कूबड़ निकल आया है, किसीका यकृत काम नहीं करता, किसीके मूत्राशयमें गड़बड़ी है, कोई मिरगीके दौरेसे परेशान है, कोई पागलपनका शिकार है तो कोई दिमागकी कमजोरीसे पीड़ित है। कितने ही यक्ष्मासे पीड़ित हो कब्रकी तरफ बढ़ते दिखाई देते है तो कितने ऐसे मिलेंगे जो समाजसे बहिष्कृत हैं क्योंकि वे उपदंशसे ग्रसित हैं। अब आप मुझसे पूछ सकते हैं "क्या यह स्नान इन सभी रोगोंका नाशक है, और जलका यह एक प्रयोग क्या सभी रोगियोंका तारक है ? इस साधारणसे स्नानमें इतने करामात छिपे तो दिखाई नहीं देते"? इस प्रश्नका मेरा उत्तर यह है "हां, प्रत्येक रोगमें प्रत्येक रोगीके लिए और रोगकी प्रत्येक-अवस्थामें यह स्नान यथेष्ट है।" इस रीतिसे रोग-निवारण बड़ा सरल-सा कार्य दिखाई देता है पर जो विधि प्राकृतिक है उसका सर्वथा सरल होना भी आवश्यक है। हमारे शरीर, मन और आत्मामें पैदा होनेवाले सारे विघ्नों और रोगके सारे लक्षणोंका कारण हमारा प्रकृतिके नियमोंका उल्लंघन करना एवं उनका रौंदना है। इसलिए स्वास्थ्य-प्राप्तिका एक ही

मार्ग है और वह है प्रकृतिकी ओर लौटना, प्रकृति-पथपर चलना और प्रकृतिका वताया उपचार करना। जिस प्राकृतिक जल-प्रयोगकी यहां चर्चा की जा रही है उसके अलावा कोई अन्य प्रयोग प्रकृति हमे नही वताती।

प्रकृतिमे वह प्रत्येक चीज, जिसे मनुष्यके हाथोंने अपवित्र और दूपित नही किया है, शिव और सुंदर है अर्थात् विश्वसनीय है। मनुष्य जितना ही प्रकृतिकी ओर वढ़ेगा और उसकी ओपधियोको अपनायेगा वह अपने शरीर, मन और आत्मामे आई खरावीके और वची जीवन-शक्तिके मुताविक जल्दी या देरी-से पुन. स्वास्थ्य प्राप्त करनेमे सफल होगा। अतः यदि हम प्रकृतिके आदेशोंको पुनः समझनेकी कोशिश करे और उनका पालन करना अपनी मानसिक और शारीरिक शक्ति और दशाके अनुरूप सच्चे हृदयसे आरंभ कर दे तो समझ लीजिए कि हमने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया, जिसका परिणाम स्वतः हमारे लिए अधिक-से-अधिक शुभ और मंगलकारी होगा।

सर्वांगसुंदर और सुशील मनुष्य अर्थात् पूर्ण स्वस्थ मनुष्यके सवसे अच्छे उदाहरण है वल्वेडियरका अपोलो और वीनस (कामकी देवी)। ये यूनानी मूर्ति कलाकी उत्कृष्ट कृतियां है। उदाहरणके अभावमे हम इसकी कल्पना ही नही कर सकते कि मनुष्यकी वौद्धिक और आत्मिक शक्तिका मापदंड क्या होना चाहिए, उसे कितना सजीव होना चाहिए, उसकी वुद्धि कितनी ग्रहणशील और तीक्ष्ण, उसका स्वभाव कितना मृदु एवं उसके हृदयमें कितनी दया और प्यार होना चाहिए अर्थात् उसे देवत्वके

कितने निकट पहुंचना चाहिए। इसकी कल्पना तो तब हो सकती जब पूर्ण विकसित काकेशस जाति (कोहेकाफके रहनेवाले) प्रकृतिसे बिछुड़ न गई होती।

मनुष्य जब पूरी तरह प्राकृतिक जीवन अपना लेगा वह अपने शारीरिक,[1] मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्यके आदर्शके निकट पहुंच जायगा। इस आदर्शके कितने निकट वह पहुंचेगा यह उसके वंशानुगत प्रभाव, उम्र, जीवन-शक्ति और प्राकृतिक जीवनकी पूर्णता अथवा अपूर्णतापर निर्भर करता है।

बच्चोंके लिए यह अच्छा सुअवसर है। अतः जिस तरह हो उस तरह उन्हे पुन. स्वर्गीय सुखके रास्तेपर चलाना चाहिए और प्राकृतिक स्नान जरूर कराना चाहिए। तब हमे यह देखकर आश्चर्य होगा कि स्वभावसे वे सुशील हो गए है और स्कूलमें उन्हे पाठ भी बहुत जल्द याद होने लगा है। बोदापन और मूर्खता भी पागलपनकी तरहके ही रोग है। ये भी प्राकृतिक स्नानसे अच्छे हो जाते है।

बांझपन और बच्चा होते वक्तका कष्ट बड़े भयावह हैं। प्राकृतिक स्नानके प्रयोगसे, इस प्रकार प्राकृतिक जीवनकी ओर

---

[1] जलस्नान-जैसे पूर्णत. प्राकृतिक उपादानोंकी सहायतासे ही शरीरको सच्चे अर्थमे सुदर बनाया जा सकता है। केवल यही एक ऐसा साधन है जिससे मुहकी झुर्रिया गायब हो जायगी और त्वचा सुचिक्कण। दूसरे सभी उपाय व्यर्थ है, लाभसे अधिक वे हानि पहुंचाते है। यदि हमारी माता और बहनें इसे समझ सकती!

आंशिक रूपसे लौटनेसें सभ्यताकी दीवानी स्त्रीपरसे यह श्राप बहुत कुछ हट जायगा। प्रकृतिके सपर्कमे रहनेवाली सभी मादाओकी तरह उन्हे भी बच्चा जनते वक्त न कोई कष्ट होगा और न इससे उन्हे कोई खास कमजोरी आयेगी। बच्चा भी अधिक स्वस्थ और सुदर होगा और उसे पिलानेका मधुर कर्तव्य पालन करनेके लिए प्रकृति उसे यथेष्ट दूध देगी। इस दिशामे मुझे अनेक अनुभव हुए है और सभी सफल रहे है। हम यह देख चुके है कि सभी रोग और विशेषतया जीर्ण रोग प्रकृतिके नियमोंके उल्लंघनके फल है। जैसा कि मैने पहले कहा है अप्राकृतिक भोजन पचता ही नही और यदि पचता भी है तो बडी कठिनाईसे। ऐसे भोजनके कारण और हमारे अनेक दूषणोके कारण हमारा स्नायुविक बल अथवा जीवन-शक्ति घट जाती है। यहीसे जीर्ण रोगका आरंभ होता है। विजातीय द्रव्य पेटसे वायव्य, तरल और घन-रूपमे उठकर सारे शरीरमे फैल जाता है।[1] यह शरीरकी आकृतिको बदल देता है। मस्तिष्क और आत्मामे विकृति पैदा कर देता है। प्रत्येक विचारवान् आदमी जानता है कि शरीर, मस्तिष्क और आत्माका बडे निकटका और गहरा सबध है। भोजनका अनपचा भाग और विजातीय

---

[1]एक सैनिकके एक वार कधेमे गोली लगी और वह उस वक्त निकल न सकी। वह धीरे-धीरे सरककर एक साल बाद पैरमे त्वचापर आ गई। उस उदाहरणसे शरीरमे विजातीय वस्तुके चलनेका अनुमान किया जा सकता है।

द्रव्य ज्यो ही शरीरमे इकट्ठा होना शुरू होता है शरीर उसे अपने निष्कासन मार्गोसे मल, मूत्र, प्रश्वास, स्वेद आदिके रूपमे निकालनेकी कोशिश करता है। पर यदि विजातीय द्रव्य बराबर इकट्ठा होता रहता है तो फिर वह इस स्वाभाविक रूपमे नही निकल पाता। तब फिर शरीर ताजी हवा, हवाके झोके, ठढक आदिसे उद्दीपन पाकर इसे जबरदस्ती निकालनेकी कोशिश करता है। शरीरकी इस क्रातिको तीव्र रोग कहते है। इस क्रातिके साधारण रूप जुकाम वगैरहको सर्दी लगना कहते है। इसके उग्र रूप जैसे चेचक, लालबुखार, हाफाडाफा, मीयादी बुखार, हैजा आदिमे शरीरमे उठती सडानके फलस्वरूप हमेशा ज्वर भी साथ होता है।

अत तीव्र रोगोको, जिनसे लोग व्यर्थ डरते है, शरीरका शोधक एवं लाभकर उभार समझना चाहिए और उनके आनेपर सहर्ष उनका स्वागत करना चाहिए। वे खतरनाक तभी साबित होते है जब उनका गलत उपचार होता है, मसलन् दवासे और जब रोगीको ताजी हवासे वंचित कर दिया जाता है। इससे शरीर कमजोर हो जाता है, उसके सारे कार्य बद हो जाते है। और विजातीय द्रव्योको, जो आदोलित हुए रहते है, शरीर निकाल नही पाता, जिसके फलस्वरूप रोगीको बड़ा कष्ट होता है और उसकी मृत्युतक हो जाती है।

उदाहरणत. यदि कफ (विजातीय द्रव्य) काफी मात्रामे निकल जाय तो सर्दी लगना हमेशा लाभकर सिद्ध होता है। चेचकमे बालककी मृत्यु तभी होती है जब दाने पूरे वेगसे नही

निकलते अर्थात् दानोके रूपमे शरीरका विजातीय द्रव्य अच्छी तरह वाहर नही आ जाता।

रोग, विजातीय द्रव्यमे गति आ जानेके कारण और उसके सडनेकी अवस्थामे उसके कणोके आपसमें रगड़नेके कारण जव शरीरमें गरमी उत्पन्न हो जाती है, बढ़ता है। यह गरमी खास तौरसे पेटमे, जो रोगका प्रधान स्थान है, पैदा होती है। तीव्र रोग अर्थात् तीव्र ज्वरमे जब विजातीय द्रव्य आदोलित हो उठता है शरीरकी गरमी इतनी अधिक बढ जाती है कि शरीरके लिए खतरा पैदा हो जाता है। प्राकृतिक स्नानसे यह गरमी काफी कम की जा सकती है। पानी और खास तौरपर यदि वह ज्यादा ठंढा हो तो ज्यो ही वह पेटपर लगता है रोगीको बड़ी शाति मिलती है और वह ताजगीका अनुभव करने लगता है। स्नानसे शरीरकी जीवन-शक्ति भी बढती है जो उसे रोगके कीटाणुओको निकाल फेकने और शरीरको निर्मल वनानेमे सदा सहायक होती है। फलतः मल शरीरसे शीघ्र ही (कभी-कभी इसमे दो-तीन दिनतकका समय भी लग जाता है) पसीने, पाखाने और पेशाबके रूपमें तेजीसे निकलने लगता है।

इसलिए तीव्र रोग होनेपर चाहे वह साधारण जुकाम हो या हाफाडाफा, मीयादी वुखार, हैजा आदि-सा असाधारण रोग, प्राकृतिक स्नान करना चाहिए और फिर धूप लेकर या ऊनी कपड़े ओढकर पसीना लानेकी कोशिश करनी चाहिए। इन रोगोमे वायु और प्रकाशस्नान खास तौरसे लाभकारी है।

इसका खास खयाल रखना चाहिए कि रोगीको रात-दिन शुद्ध एवं स्वच्छ वायु मिले। जाड़के दिन हों और ठंढक काफी पड़ती हो तो भी कमरेकी खिडकियां खुली रखनी चाहिए। भोजनका चुनाव बडी समझदारीसे किया जाय। जहांतक हो सके इसे हमेशा प्राकृतिक रखा जाय। यदि इन नियमोंका पालन किया गया तो परिणाम हमेशा ठीक होगा और रोग जानेके बाद स्वास्थ्य इतना अच्छा हो जायगा कि आप यह कह उठेंगे कि दयालु प्रकृति हमारे शरीरमे रोग हमारे लाभके लिए उत्पन्न करती है। सभवत. यहा यह बतानेकी आवश्यकता नही है कि तीव्र रोग होनेपर जितना शीघ्र इस विधिसे उपचार आरंभ कर दिया जायगा लाभ भी उतना ही निश्चयात्मक रूपसे और स्थायी मिलेगा। यदि इन उपायोका अवलबन रोगीकी अतिम अवस्थामें करेंगे जब कि रोगीको गया हुआ समझ लिया जाता है तब वैसी अवस्थामे रोगीके अच्छे होनेकी उम्मीद बहुत थोड़ी रह जाती है।

ओषधियां शरीरको पगु बना देती है और उसके तात्त्विक कार्योंको रोक देती है। शरीरकी इसी दशाको आजकल तीव्र रोगोका शमन कहा जाता है। इन शमनात्मक उपायोके फलस्वरूप शरीरकी बड़ी क्षति होती है। वह स्नायुदौर्बल्य, दूषित घाव, मृगी, यक्ष्मासे जीर्ण रोगोंका शिकार हो जाता है। आजकल जो नये-नये रोग इतनी जोरसे फैले हुए दिखाई देते हैं उसका कारण टीका और ओषधियां ही हैं।

जीर्ण रोगकी बढी हुई अवस्थामें जीवन-शक्ति (पाचन-

क्रिया) वहुत घट जाती है, मलनिष्कासनके द्वार (गुर्दे, पेट, आते) विल्कुल निष्क्रिय हो जाते है और त्वचा अपना कार्य विल्कुल नही करती। शरीरमे विजातीय द्रव्यको तेजीसे निकालनेकी शक्ति नही रह जाती—तीव्र रोग नही होते तब विजातीय द्रव्य शरीरके अदर ही सडता रहता है फिर वह किसीके फेफडोमे, किसीके पैरोंमे, किसीकी आखोमे तो किसीके मस्तिष्कमे अदरूनी ज्वर पैदा कर देता है। अतमे सारा नाड़ीमडल ही विक्षिप्त हो जाता है; उसमे पूर्ण अवसाद आ जाता है। अब यक्ष्मा, नासूर, उपदश, मधुमेह, मिरगी, गठिया, खुले घाव, पागलपन आदि रोग होते है जिन्हे आमतौरसे जीर्ण रोग कहते है। इन रोगोमे विजातीय द्रव्य शरीरको ध्वंस कर देते है और शरीर अधिकाधिक कमजोर होता जाता है। शरीरमे इतनी शक्ति नही रह जाती कि वह विजातीय द्रव्यको बलपूर्वक तेजीसे या धीरे-धीरे भी निकाल सके। अत स्नायुदौर्बल्य, पागलपन और यक्ष्मा आदिके रोगियोको शायद ही कभी जुकाम होता है और शायद ही कभी उन्हे मीयादी बुखार आदिसे तीव्र रोग होते है। इसे शुभ लक्षण न समझकर रोगीके लिए बुरी सूचना समझनी चाहिए। इनमे भी किसी-किसी रोगीकी जीवनशक्ति प्राकृतिक स्नान और अन्य प्राकृतिक उपचारोसे इतनी तेजीसे और इतनी अधिक वढती है कि कभी-कभी उन्हे जुकाम-खासी, ज्वर आदिसे अन्य तीव्र रोग हो जाते है पर ये होते है वहुत कम और होते भी है तो वहुत हलके रूपमे। फिर भी इनकी निरापदता और शोधन-शक्ति स्पष्ट प्रगट होती है। जीर्ण

रोगके रोगियोको कभी-कभी फोडे और नासूर भी हो जाते है जिसका अर्थ यही है कि प्रकृति उनके द्वारा विजातीय द्रव्यको बाहर निकालनेका प्रयास कर रही है।

इन रोगोको हर दशामे शुभ लक्षण समझना चाहिए।

यही समय है जब प्राकृतिक उपादानो (स्नान, शुद्ध वायु और प्रकाश, प्राकृतिक भोजन) द्वारा विजातीय द्रव्य निकालनेमे शरीरकी सहायता करनी चाहिए ताकि शरीरको अधिक-से-अधिक तीव्र रोगोका लाभ मिल सके। सबसे बड़ी बात है ऐसे मौकोपर हम जरा भी न डरे।

प्राकृतिक जीवन शुरू करनेपर अर्थात् प्राकृतिक स्नान, प्राकृतिक भोजन, नगा रहना शुरू करनेपर लोग कुछ समयके लिए दुबले हो जाते है, कमजोरी और थकानका अनुभव करते है, चेहरा काला दुबला-सा दिखाई देता है और अग-अगमे दर्द होने लगता है। ये लक्षण उभारकी शुभ सूचना है, इनकी वजहसे परेशान न होना चाहिए। हमे यह हमेशा ध्यानमे रखना चाहिए कि जो उपचार वस्तुत प्राकृतिक है उससे कभी भी किसी प्रकारकी हानि होनेकी सभावना नही है। और उपचारकी अवस्थामे जो भी लक्षण उत्पन्न होते है, चाहे वे आधुनिक दृष्टिकोणके कारण[1] कितने ही खतरनाक क्यों न प्रतीत हो, स्वास्थ्यके लाभके ही लिए उत्पन्न होते है।

---

[1]प्राकृतिक चिकित्साके साथ एक बडी कठिनाई यह है कि शुरूसे ही और खास तौरसे रोगके तीव्र रूप धारण करनेपर कुछ नासमझ लोग

बहुत पुराने रोगोंमें यह नवीन स्नान आश्चर्यजनक रीतिसे लाभ करता है। दीर्घकालसे आते रोगोंमें रोगीके सारे शरीरमे और खास तौरसे पेटमें बेहिसाब गरमी पैदा हो जाती है और

अपनी राय और हिदायत आदिसे रोगीको डरा और घबरा देते है।

स्वस्थ और समझदार आदमी कभी ऐसा नही करते, एक तो उनके पास फालतू समय नही रहता, दूसरे वे जानते है कि जिस विषयका उन्हे ज्ञान नही है उस विषयपर उन्हे राय देनेका अधिकार नही है। पर जिन लोगोकी मानसिक और शारीरिक शक्तियोंको रोगने क्षीण कर दिया है, जिन्हे चीजे समझमें नही आती, जो अपनी कमजोरियोके कारण अपने जीवनसे असतुष्ट है और जिन्हे कोई काम नही है प्राकृतिक जीवन शुरू करनेवालोके लिए वास्तविक कष्टके कारण होते है। इन अभागोसे बचनेका उपाय प्रत्येक आदमीको स्वय सोचना चाहिए पर कोई ऐसा कार्य नही करना चाहिए कि इनको कष्ट हो। जो हमारे प्राकृतिक जीवन अपनानेपर हमारा मजाक उडाते है और हमसे घृणा करते है उनके प्रति भी हमे अशिष्ट न होना चाहिए वरन् उनसे प्रेमपूर्ण बर्ताव करना चाहिएं। ऐसे आदमियोमे अधिकतर ऐसे ही होते हैजो अप्राकृतिक जीवनकी खामियों और उनसे उत्पन्न होनेवाली कठिनाइयोको जानते है। पर उनमे या तो साहस नही होता या उन्हे ऐसा सुयोग नही मिला कि वे अपनी गलत जीवन-पद्धतिको त्याग सके। वे हमारी दया और सहानुभूतिके खास तौरसे अधिकारी हैं। यदि वे अपने रोगी स्वभावके वशीभूत होकर हमे कभी कुछ कह दे तो हमे उन्हे क्षमा करना चाहिए। ये लोग जो कुछ कहते है उसे सुनकर चिकित्सारभमे ही कष्ट होता है। शीघ्र ही वह शाति और गभीरता प्राप्त होती है जिसे किसीके कटाक्ष या बोल भग नही कर सकते।

वह उसमे भुन-सा जाता है। आंतोंकी श्लैष्मिक झिल्लियां सूख जाती है और मल सरक नही पाता; फलत. घातक कब्ज रहने लगता है। इस समय यदि पेटको ऊपरसे यथेष्ट शीतल जलद्वारा ठंढा किया जाता है और ऐसा करते वक्त उसे रगड़ा जाता है तो पाचन-शक्ति तुरंत उद्दीप्त होती है। उसे उस सुखका अनुभव होता है जिसे वह भूल-सा गया था। उसमें प्रसन्नता-प्रदायिनी आशाका संचार होता है और उसे विश्वास होने लगता है कि वह अवश्य स्वस्थ हो जायगा।

पैरकी सूजन, आंख और कानके रोग, नाकका नासूर या पैरके खुले घाव-से जीर्ण रोगोमे यदि जलका प्रयोग किया जाय तो किसीको किसी प्रकारका आश्चर्य करनेकी जरूरत नही है।

विजातीय द्रव्यकी उत्पत्ति पेटसे होती है। वहांसे वह रोगी-के अंगमे पहुंचता है। अब उस अंगके नीरोग होनेके लिए यह आवश्यक है कि विजातीय द्रव्य शरीरके बाहर निकल जानेके लिए सारे शरीरसे आकर पेटमें वापस जाय।

स्नायु-दौर्बल्य, पागलपन, नासूर, यक्ष्मा आदि रोग, जिन्हे आजकल सर्वथा दुस्साध्य समझा जाता है, से ग्रसित भयंकर रोगियोंको भी प्राकृतिक स्नानसे कुछ सप्ताह या कुछ महीनोंके अविश्वसनीय रूपसे थोड़े समयमें यथेष्ट लाभ होता है और कभी-कभी इतने ही समयमे उनका रोग सर्वथा निर्मूल हो जाता है।

साधारणतया ऐसे जीर्ण रोगोमें जिन्हे रोगी वर्षोसे पालता रहता है इस चिकित्सा-विधिमें बड़े धैर्य और लगनकी

जरूरत होती है, क्योकि ऐसे रोगीकी जीवन-शक्ति बहुत धीरे-धीरे और क्रम-क्रमसे ही बढती है जिसपर रोगीका स्वस्थ होना निर्भर है। फिर भी लाभ और बहुत अधिक लाभ होता है—जो लाभ आजकी प्रचलित पद्धतियां सभव समझती है उनसे तो यह लाभ हर हालतमे बहुत अधिक होता है। कुछ खास तरहके जीर्ण रोगियोको जिनका रोग अत्यधिक पुराना होता है, कभी-कभी बहुत थोडा लाभ और कभी बिल्कुल लाभ नही होता। कभी तो ऐसे-ऐसे लोग, जो सर्वथा मृत्युके मुखमे गए होते है, चिकित्सा आरभ करते है।

जख्मी हो जानेपर पशु अपने जख्मी अगको ठढा करनेके लिए पानीमे रखते है और बीच-बीचमे थोड़ी-थोडी देरके लिए लगातार चाटते है। आजकी प्रचलित चिकित्सा-पद्धति भी हथियारके भोकनेसे हुए घाव, कटने, जलने, ददोरा पड़नेसे बने जख्मपर पहले पानी डालकर उसे ठंढा करती है और फिर उसपर घावकी छोटाई-बड़ाईके अनुसार मोटी-पतली पट्टी पानीमे भिगोकर रखती है। फिर उसपर ऊनी कपडा रखकर बाध देती है। इन घावोपर कपड़ेकी पट्टीसे मिट्टीकी पुल्टिस बाधना ज्यादा अच्छा रहेगा। मिट्टीकी पुल्टिसके बारेमे विस्तारसे मै फिर बताऊगा।

घावका चाटना, जहातक कि यह सभव है, घावके लिए बडी अच्छी चीज है। एक नवजात शिशुको कुछ चर्म रोग था, उसकी माने उसे चाट-चाटकर अच्छा कर दिया। यह बात अभी-अभी मेरे देखनेमे आई। घावको बीचमे जहा गदगी वगैरह

लगी हो न चाटकर घावके चारो तरफकी त्वचा चाटनी चाहिए। घाव बडा हो तो चाटनेके अलावा प्राकृतिक स्नान और अन्य प्राकृतिक उपादानोका भी, जिनकी चर्चा मै आगे चलकर करूगा, सहारा लेना चाहिए। शरीरकी भीतरी गरमी शांत करनेके लिए और जीवन-शक्ति बढ़ानेके लिए इन उपचारोकी बड़ी आवश्यकता है। प्राकृतिक चिकित्साद्वारा जो बड़े-बडे लाभ होते है उनपर, इन सब उपचारोको साथ करनेपर किसीका भी विश्वास निश्चय ही हो जायगा।

उन पशुओके, जो प्रकृतिके सपर्कमे रहते है, बडे-बडे घाव और चोट उनके प्राकृतिक जीवनके कारण आश्चर्यमे डालने-वाले थोड़े समयमे बिल्कुल अच्छे हो जाते है। जंगलमें रहने-वाले किसी पशुके पैरमे यदि कभी गोली लग जाती है या जालमें फँस जानेके कारण उसका पैर फट जाता है तो वह बहुत थोड़े समयमे अच्छा हो जाता है और अच्छा हो जानेपर पशु इस प्रकार रहता है जैसे उसे कभी कुछ हुआ ही नही था।

एक बार एक हिरनपर बदूक चलाई गई और गोली उसके वक्षस्थलके पाससे पार हो गई, दूसरी तरफ जहां गोली निकली उसके पासकी जमीन खूनसे तर हो गई। दो-चार दिन बाद ही शिकारियोने उसका पीछा फिर किया और उसे एक बाड़ेमे ला घेरा। इतना बड़ा घाव हो जानेपर भी हिरन बंदिशको बड़ी आसानीसे पार कर गया। इस हिरनको जो गोली लगी थी निस्सदेह उससे उसके फेफड़े, हृदय अथवा किसी विशेष अंगको कोई क्षति नहीं हुई थी।

आदमियोको फोड़े होनेपर उनसे जो मवाद वगैरह बहती है वह शरीरका अपनी गंदगी निकालनेका प्रयास है। तीव्र रोगकी भाति उसे भी लाभकर चिह्न समझना चाहिए। उनसे खतरा और बिगाड़ तभी होता है जब उनकी झूठी चिकित्सा की जाती है। फोड़ोंकी चिकित्सा भापद्वारा कभी न करो, न उनपर कभी भाप लगाओ।

सबसे आवश्यक बात यह है कि अब मनुष्यके शरीरपर डाक्टरकी छुरी और छुरे लगने बंद हो जाने चाहिए। चीर-फाड़ मनुष्यकी मूढ़ताका चिह्न है। इससे प्रकृतिके कार्यमें हस्तक्षेप होता है जिसका परिणाम हमेशा भयंकर होता है। यदि परिणाम तुरत दिखाई न दे तो भी देर-सबेर जरूर प्रगट होता है।

जिसकी यह धारणा हो कि छुरी-चाकूके बगैर हर जगह काम नही चल सकता उसे पहले खराब-से-खराब रोगियोपर प्रकृतिके उपादानोका व्यवहार समुचित रूपसे और समुचित रीतिसे कर देखना चाहिए।

प्रकृतिको पट्टी-फट्टी[1] पसंद नही है। वह नही चाहती

---

[1]प्राकृतिक चिकित्सामे चीर-फाड़की जरूरत नही है—यह कहते समय हमें उसकी परिधिको समझ लेना चाहिए। सभी जानते है कि दातोके खराब होनेका कारण हमारा अप्राकृतिक जीवन है। चीर-फाड़को बिल्कुल तर्क करनेका अर्थ होगा कि खराब दांत उखड़वाए न जायं और खोड़रे दात भराए न जायं। इसमें सदेह नही कि प्राकृतिक जीवन व्यतीत

कि हड्डी टूटनेपर (पंसली या पैरकी हड्डी वगैरह) भी पट्टी बाधी जाय। यदि टूटी हड्डी यों ही छोड़ दी जाय तो वह कभी गलत जगह या जगहसे इधर-उधर नही जुटती।

इस तरह हमने देखा कि प्राकृतिक स्नान ठीक तरह लिया जाय तो बड़े कामका और बडा लाभकर सिद्ध होता है।

कर और मिट्टीकी पुल्टिसकी सहायतासे इन व्याधियो एव इनसे होनेवाले दातके दर्दसे भी बचा जा सकता है।

इसी तरह बाल और नाखून काटनेसे भी बचना कठिन है। प्रकृतिके सपर्कमे रहनेवाले पशु इन्हे नही कटाते फिर भी इसकी वजहसे उनका चेहरा कुरूप नही हो जाता। मुक्त प्रकृतिमे रहनेवालोकी प्रत्येक चीजका नियमन प्रकृति स्वय करती है।

और भी कई हालतोमे (जन्मजात विकृतिमे भी) अस्त्रोपचारद्वारा कष्टसे बचा जा सकता है। बेकार अगोका उपयोग सभव हो सकता है और भी कई प्रकारसे लाभ प्राप्त किए जा सकते है। पर जिन अवस्थाओमे अस्त्रोपचारकी बात मै कर रहा हू, वे आज जिन अवस्थाओमे अस्त्रोपचार किया जाता है, उनसे बहुत भिन्न है। आजके अस्त्रोपचारके प्रभावकी जाच की जाय तो ज्ञात होगा कि इसकी वजहसे स्वास्थ्य बहुत खराब हो जाता है और दिन-प्रतिदिन खराब होता ही जाता है। यहातक कि प्रकृतिके कार्यमे अस्त्रोपचारद्वारा व्याघात पड़नेके फलस्वरूप मृत्युतक हो जाती है।

तीव्र एव जीर्ण रोग तथा फोडे होनेकी अवस्थामे भी शरीर और मस्तिष्कको आराम देनेकी बडी आवश्यकता है। इन अवस्थाओमे शरीरको रोगनिवारणके लिए अपनी सारी शक्ति लगानेकी जरूरत होती है।

मेरे चिकित्सालयमे लोग यह स्नान अधिकतर खुली जगहमे करते है और आरंभसे ही उन्हे इसमे आनंद आता है, प्रसन्नता प्राप्त होती है और इच्छित लाभ प्राप्त होता है। इस स्नानके प्रभावसे डरपोक, गमगीन और निराश, प्रसन्न, सतेज, हिम्मतवर और वहादुर हो गए है।

प्रकृति-पथपर फिर चलनेकी कोशिश करनेवालोंको इस स्नानसे वड़ी सहायता मिलती है।

इसकी सहायतासे प्रकृतिके और अधिक उपचारोंकी जानकारी होती है, स्वास्थ्य अधिकाधिक सुंदर होता जाता है और अधिकाधिक आनंदकी प्राप्ति होती है।

शरीरको थपथपाना और रगड़ना

प्राकृतिक स्नानकी विधि निर्धारित करते वक्त मैंने शरीरके रगड़नेकी चर्चा करते हुए इसकी ओर ध्यान आकर्षित किया है।

गिरकर चोट खा जानेपर वच्चा जव रोता हुआ मांके पास आता है तव मां डाक्टरी किताव निकालकर नही देखती कि उसमे क्या करनेको कहा गया है वह तुरंत वच्चेके प्रति प्रेम और सहानुभूतिसे प्रेरित होकर चोट लगे स्थानपर हल्के-हल्के हाथ फेरती है, थपथपाती है।

क्या आपने गावके ऐसे गुणियोकी वात नही सुनी है जो

लोगोंका दर्द और मोच मल और थपथपाकर जल्दी-से-जल्दी निकाल देते थे ?

गांवोंके ये सरल और पवित्र प्राणी यह काम अर्थ और लाभकी दृष्टिसे नही करते थे। उनका यह खयाल था कि सेवाके बदले यदि वे द्रव्य लेगें तो उनकी चिकित्सा कारगर न होगी। उनकी भावना मेथ्यूके इस उपदेशसे मिलती-जुलती है :

"तुझे यह चीज मुफ्त मिली है और मुफ्त ही तू उसे बांट।"

अपने संगी-साथियों और गांवके निवासियोंकी इस प्रकार-की सेवा करते थे वे केवल प्रेमभावसे। पिछले कुछ दशकोमें विज्ञान और सभ्यता, शिक्षा और ज्ञानका वड़ा प्रचार हुआ है और इसका हमे बड़ा घमंड भी है। तथापि हमे दु:खपूर्वक यह कहना पड़ता है कि "पृथ्वी और स्वर्गमे अभी ऐसी अनगिनत चीजे है जो अबतक हमारे स्वप्नमें भी नही आई है।"

जब कभी हम उन सेवाव्रती नर-नारियोंकी बात करते है तो उनके प्रति हम अपनी घृणा और अवहेलना दिखाते देखे जाते है। आज उनकी जगह व्यापारी अंगमर्दक स्त्री-पुरुषोंने ले ली है। जो अपने कामकी खास शिक्षा पाये हुए होते है, उन्हें शरीर-शास्त्रका ज्ञान होता है, वे जानते है कि शरीरमें नस-नाड़ियां और मांसपेशियोंका स्थान क्या और कहां है। पर आजके ये अंगमर्दक वह काम सप्ताहो और महीनोंमें नहीं कर पाते जो गांवके वे अपढ़ अशिक्षित नर-नारी एक बारमें

या दो-चार दिनमे कर देते थे। उनके हाथमे कुछ ऐसा जादू होता था कि उसके प्रभावसे रोग छू-मंतर हो जाते थे।

आजके अगमर्दक अनेक दिनोंतक रोगीकी चिकित्सा चलाते रहते है। चिकित्साके बीचमें वे स्वय पीले पड़ जाते है और रोगी हो जाते है। परतु कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि इनमेसे कोई-कोई अगमर्दक जो पहले बीमार थे स्वस्थ भी हो जाते है।

शरीरकी मालिश करते वक्त और थपथपाते वक्त एकका स्वास्थ्य और जीवन-शक्ति दूसरेमे प्रवेश कर जाती है। इस विधिसे शरीरका रोगी अग सप्राण हो उठता है। मालिश करने और थपथपानेका विशेष प्रभाव और लाभ यही है। इसके लिए अगमर्दनकी शिक्षा प्राप्त करनेकी जरूरत नही है, शिक्षासे हानिकी ही अधिक सभावना है।

वाष्प और तरल वस्तुका जब सपर्क होता है तो दोनो आपसमे मिल जाते है।

मनुष्यकी आत्मा भी एक तत्त्व है, यह तत्त्व आकाश-तत्त्वसे भी अति सूक्ष्म है। पर मनुष्यकी आत्मा जिस तत्त्वकी बनी है वह तत्त्व एक केद्रके चारो ओर इकट्ठा रहता है। यह केद्र है इच्छाशक्ति। अतः मनुष्योकी आत्माओका पारस्परिक परिवर्तन या समिलन दो जगह रखी हुई वाष्पोकी भाति नही होता। उनकी इन क्रियाओमे पारस्परिक पसंदगी, नापसंदगी, प्यार, उदासीनता, घृणाका बड़ा प्रभाव पड़ता है।

दो आत्माओका पारस्परिक परिवर्तन, एकके प्रति दूसरेका

आकर्षण अथवा विराग हम अपनी आखोसे देख सकते है। इन क्रियाओंके फोटो लिए गये है जिनसे ये बातें स्पष्ट प्रतीत होती है।

यही नही, दो प्राणियोंकी आत्माओका यह पारस्परिक परिवर्तन इतनी पूर्णताके साथ हो सकता है कि उनके लिए कविका यह कथन सर्वथा लागू होता है :

"आत्माएं दो हैं; पर वे बहती हैं एक विचारमें; हृदय दो हैं, पर धड़कन एक ही है।"

जिन ग्रामनिवासियोंके बारेमें मैने कहा है उनका शरीर तो स्वास्थ्य और जीवनशक्तिसे भरा-पूरा रहता ही था, सर्व-साधारणके प्रति उनका अगाध प्रेम होता था और ईश्वरके प्रति अटल विश्वास। यही कारण है कि उनके शरीरसे जादूका-सा प्रभाव रखनेवाली आरोग्यकारी शक्ति निस्सरित होती रहती थी।

जब एक मर्दक कुछ दिनोंतक लगातार रोगियोंकी मालिश करता रहता है तो उसकी बहुत-सी जीवनशक्ति और स्वास्थ्य खर्च हो जाता है और वह स्वयं बीमार पड़ जाता है। अब अगर वह ऐसे आदमियोंकी मालिश करता है जो उससे अधिक स्वस्थ है तो वह पुनः स्वस्थ हो जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि मालिश कराके लाभ प्राप्त नही किया जा सकता वरन् इससे जितना स्वास्थ्य है उसे खोनेका भारी खतरा रहता है। आजके मर्दकके लिए मालिश करना व्यापार है और यह बहुत

आनंददायक व्यापार नही है। उसे किसी तरह अपनी रोटी कमानी है और इससे मिलनेवाले पैसेके लिए ही वह यह कार्य करता है। उसे यह नहीं देखना है कि जिसकी मालिश करने वह जा रहा है उसकी मालिश करनेकी उसकी इच्छा होती है या नही।

यहां भी यही कहना पड़ता है :

'प्रकृतिकी ओर लौटो !'

माता यदि कमजोर और रोगी न हो तो वह अपने प्यार-भरे हाथोंसे अपने बच्चेकी मालिश करके और थपथपाकर उसे शीघ्र और पूरा लाभ दे सकती है। यदि वह कमजोर हो तब भी तो वह अपने बच्चेमें अपने प्राणोंकी अंतिम बूंद भी खुशी-खुशी डाल ही देगी।

मैंने यह कहा है कि मालिश करते और थपथपाते वक्त मालिश करनेवालेकी जीवनशक्ति और स्वास्थ्य रोगीके शरीर-मे चला जाता है। इस क्रियामें मर्दकके शरीरकी उष्णता भी रोगीके शरीरमे प्रवेश करती है।

जिसमे जितनी ही उष्णता रहती है उसे उतना ही स्वस्थ समझा जाता है। इस गर्मी, स्वास्थ्य तथा जीवनशक्तिको एक ही समझना चाहिए। इसलिए ऐसे ही आदमी, जिनके हाथ गरम रहते है, मालिश करनेके उपयुक्त है। रोगियोंके हाथ-पांव हमेशा ठंडे रहते है।

माता, पिता, मित्र और ऐसे लोग जो हमें हृदयसे चाहते

है यदि वे स्वयं स्वस्थ है तो उनकी मालिश और थपथपानेसे हमें लाभ मिल सकता है।

यहां स्वास्थ्यसे मेरा मतलब साधारण अर्थमे ही है। सच्चे अर्थोमे तो सभ्य समाजमे पूर्ण स्वस्थ एक आदमी भी मिलना कठिन है।

मजदूरवर्गके स्वस्थ और सुपुष्ट जन, जिन्हे मानसिक कार्य और सुधरे हुए जीवनने रक्तविहीन, कमजोर और दुर्बल नही बना दिया है और जिन्हे खुलेमें श्रमसाध्य काम करना पड़ता है, यदि मालिश करे और थपथपावे तो वे बहुत अधिक लाभ पहुंचा सकते है। पर जीवनशक्तिका प्रेषण सबमे समान रूपसे नही होता। यह मालिश करने और करानेवालेके पारस्परिक प्रेम (सहानुभूति)पर निर्भर है। उनमे किसी एककी भी दूसरेके प्रति घृणा तो होनी ही नही चाहिए अन्यथा मालिशका कोई फल न निकलेगा।

इसलिए मालिश करानेके लिए सशक्त, स्वस्थ और सहानुभूतिपूर्ण आदमी चुनना चाहिए। वह देखनेमे ही सुंदर न हो उसका स्वभाव मृदु और विचार भी अच्छे होने चाहिए। खुदगर्ज, कामचोर और झूठे आदमीसे कोई सहायता नही मिल सकती। ऐसा आदमी अपनी उष्णता और जीवनशक्ति अपने लिए बचा रखता है। वह इसका थोड़ा भाग भी, किसी भी तरह दूसरेको देना नही चाहता।

हमे अपनी शिक्षा, सामाजिक और आर्थिक स्थिति आदिके भुलावेमे पड़कर अपनेको दूसरोसे ऊंचा मानकर मनुष्य-मनुष्यके

पारस्परिक प्रेम और सहयोगमे व्याघात न डालना चाहिए। हमेशा याद रखो जो प्रेम बोता है उसीके खेतमे प्रेम उपजता है।

जितना ही आदमी आजके विज्ञानसे मुक्त होगा, जितना ही वह बालकके समान सरल बनेगा उतना ही वह खुश रहेगा और उतनी ही सेवा वह अपने साथियोकी कर सकेगा।

यह आवश्यक है कि मालिशद्वारा रोगीमें जीवनशक्ति और उष्णता डालनेकी बात ही न सोची जाय। कम-से-कम मालिश करते वक्त तो इसका खयाल बिल्कुल ही न किया जाय। मालिशका एकमात्र उद्देश्य अपने भाइयोकी सहायता करना एवं उन्हे रोगमुक्त करना होना चाहिए और इसके लिए उसमे आवश्यक सदिच्छा, लगन और तत्परता होनी चाहिए।

यदि बात इतनी ही है तो मालिश करने और थपथपानेके लिए किसी विशेष शिक्षाकी क्या जरूरत है?

शरीरका कोई भी रोग-ग्रसित अंग जिसमे दर्द, सूजन या गठिया रोग हो मला और थपथपाया जा सकता है। उदाहरणके लिए सिरमे दर्द होनेपर गर्दनपर थपथपाना और मलना बहुत लाभ करता है। पेट और पिंडलीपर थपथपाना साधारणतया बहुत लाभकर है, इससे स्वास्थ्य उन्नत होता है।

शरीरके जिस अंगकी मालिश करनी हो या थपथपाना हो उसे पहले पानीसे जरूर गीला कर लेना चाहिए। (उसमें किसी तरहका तेल लगानेकी जरूरत नही है।)

मालिश और थपथपानेका काम शांतिपूर्वक स्थिरभावसे

और कड़े हाथसे करना चाहिए। कभी-कभी हाथोको मुला-यम भी कर देना चाहिए। मालिशकी सही तरकीब धीरे-धीरे अपने आप मालूम हो जाती है।

शरीरमे उष्णता और जीवनशक्ति पहुंचाने तथा उसे सतेज एवं सशक्त बनानेके लिए सबसे उपयुक्त समय स्नानके तुरंत बाद है।

जब शरीर गीला रहता है तब जो आदमी उसे खुले हाथसे रगड़कर सुखानेकी क्रिया करता है उसकी जीवनशक्ति और उष्णताको वह बड़ी चाहसे पीता है।

प्राकृतिक स्नानके बाद शरीरको रगड़कर सुखानेके लिए जो समुचित व्यक्तिकी सेवा पा सकता है वह कुछ हालतोमे बहुत लाभान्वित हो सकता है और रोगसे निवारणकी राह सरल बना ले सकता है।

प्रकृतिके प्रत्येक कार्य, अपनी क्रिया और प्रतिक्रियापर निर्भर है। ससारके सारे सबध आकर्षण और अपकर्षण एवं तज्जनित विनियमके आश्रित है।

अन्य पौधोके साथ लगा हुआ पौधा अकेले खड़े पौधेसे ज्यादा तेजीसे बढ़ता और पनपता है। पालतू पशुओंमे भी देखा गया है कि अकेले रहनेवाले पशुको जब अन्य पशुओके साथ रखा और खिलाया जाता है तो वह ज्यादा खुश और स्वस्थ रहता है।

परंतू पौधे और पशु अपने जातिवालोपर जितने निर्भर है मनुष्य अपने भाइयोंपर उनसे अधिक निर्भर है। मनुष्यंकी

सारी खुशी उसके सामाजिक जीवन, पारस्परिक प्रेम और सहायतापर निर्भर है और इनसे उसका स्वास्थ्य वहुत अधिक संवंधित है। रोगी अपने वंधु-बांधवोंके प्यारपर खास तौरसे आश्रित रहते है।

आपने कई लोगोको केवल दूसरेकी प्रभावशक्तिसे यौवन प्राप्त करते एवं आश्चर्यजनक रीतिसे स्वस्थ होते देखा होगा। कई रोगी जिनकी जवानोसे प्रेमपूर्ण मैत्री हो गई है यकायक स्वस्थ हो गये है और उन्हे अपने स्वस्थ होनेका कारणतक ज्ञात नही हुआ है। आपसमे पवित्र और उत्कृष्ट प्रकारका प्रेम होनेके फलस्वरूप हुई आत्मिक एकताके बाद जिन लोगोने शादी या सगाई की है उनका स्वास्थ्य असाधारण रूपसे अच्छा होते देखा गया है। जो दो आदमी एक साथ सोते है वे सोयेमे एक दूसरेको अपनी जीवनशक्तिका एक वहुत बड़ा अंश दे सकते है। इस रीतिसे जवानोंकी सहायतासे[1] कितने ही वूढ़ोने पुनर्यौवन प्राप्त किया है। लेकिन स्वास्थ्य-लाभ और पुनर्यौ-

---

[1] सी० वटेन्स्टेडने अपनी पुस्तक "स्नायुशक्तिका स्थानातरीकरण"मे सभी उम्रके ऐसे अनेक रोगियोका वर्णन किया है जो स्थानातरीकरणकी रीतिसे जीवनशक्ति प्रदान किये जानेपर स्वस्थ हुए है, पुनर्यौवन प्राप्त किया है और उनका कायाकल्पतक हो गया है। इस लेखककी धारणा है कि इस रीतिसे किसीकी भी उम्र इच्छानुसार वढाई जा सकती है, स्वास्थ्य हर समय सुधारा जा सकता है और नवजीवन प्रदान किया जा सकता है। वटेन्स्टेडकी ये वाते यद्यपि कल्पना-सी प्रतीत होती है फिर भी उसकी वातोसे मालिशके विपयपर काफी प्रकाश पडता है।

वनकी घटनाएं आकस्मिक सुयोगका फल है और इनके साथ अनेक प्रकारकी परिस्थितिया जुड़ी हुई है ।

पर जीवनशक्तिके इस प्रकारके प्रयोगकी कोई प्रामाणिक रीति अभीतक ज्ञात नही हो सकी है । इस सबंधमे भी हमे प्रकृतिके इशारेपर चलना चाहिए। स्वास्थ्य और सुखके निर्झर तटपर वह स्वय हमे ले जायगी ।

प्रत्येक आदमीको कोई-न-कोई साथी, संगी, मित्र, सेवक या कोई आदमी ऐसा मिल जायगा जिसमे ऊपर बताये हुए गुण होगे और वह स्नानके बाद आपके शरीरको रगड़कर सुखा देगा या इस क्रियामे आपकी सहायता करेगा। ऐसी सेवाके लिए हमे सदा कृतज्ञ होना चाहिए। इस सेवाका मूल्य पैसोमे नही चुकाया जा सकता, हार्दिक कृतज्ञता-प्रकाश ही इसका समुचित पुरस्कार है। इसके विपरीत यदि आप किसी दूसरे रूपमे इसका बदला देगे तो लाभ सदा कम होता जायगा ।

हुक्मके बलपर किसी नौकरसे शरीरको रगड़वाकर न सुखवाएं। उसीसे यह कार्य लिया जाय जो मन लगाकर खुशी-खुशी यह काम करे। हमे अपनेपर निर्भर व्यक्तियोके साथ इस प्रकारका व्यवहार करना चाहिए कि हमेशा हमारे प्रेमके कारण हमारी सहायता प्रेमपूर्वक करनेको तैयार रहे ।

स्नानके बाद रगड़नेकी क्रियाके संबंधमे विशेष नियम बनानेकी कोई आवश्यकता मै नही समझता। खुले हाथों

और जहांतक बन सके शांतिपूर्वक शरीर रगड़ा जाना चाहिए।

जीवनशक्तिका स्थानातरीकरण स्त्रीसे पुरुषमे और पुरुषसे स्त्रीमे आसानीसे हो सकता है।

पर इस कार्यमे कामुकताको किसी प्रकारका भी कोई स्थान नही मिलना चाहिए। रगड़नेके कार्यमे सलग्न लोगोको सर्वथा पवित्र रहना चाहिए अन्यथा लाभके बदले हानि ही अधिक होगी।

विवाहित स्त्री-पुरुष जो एक दूसरेको रगड़कर सुखानेमें सहायता करना चाहते है उन्हे भी इस नियमका अवश्य पालन करना चाहिए। इस रीतिके अलावा किसी दूसरी रीतिसे भी भिन्न लिगके लोग जीवनशक्तिके स्थानातरीकरणमें एक दूसरेकी सहायता करना चाहे तो भी उन्हे इस नियमको सदा याद रखना चाहिए।

विजली गिरने या किसी ऐसी ही दुर्घटनामे जिनकी आकस्मिक मृत्यु हो गई है वे अकसर स्वस्थ एवं सुपुष्ट व्यक्तियोद्वारा देरतक लगातार रगड़े जानेपर जी उठे है। यदि इस प्रकार शरीर रगडनेसे मरा आदमी जी उठ सकता है तो यह आसानीसे समझा जा सकता है कि हमे सशक्त बनाने और हमारे रोगके निवारणमे रगड़ना और थपथपाना कितने लाभकर हो सकते है। निश्चय ही अनेक रोगोमे इससे आश्चर्यजनक लाभ मिल सकता है। अत. चलिए हम प्रकृतिकी ओर लौटे। इस द्वारसे हम स्वास्थ्यप्रदेशमें प्रवेश करेंगे, आनंद और प्रसन्नताके राज्यके हम अधिकारी होगे। हमारी अव्यक्त धमनियोमे

रक्तका शक्तिपूर्ण सचार होगा, हमारा हृदय आशाकी किरणों-से स्पंदित हो उठेगा।

वायु और प्रकाश-स्नान

प्रकृति तो मनुष्यको नगा ही पैदा करती है और सृष्टिके आरभकालमे वहुत समयतक वह नगा रहता भी था। वाइविल कहती है—"वे दोनो ही नगे रहते थे—पति भी और पत्नी भी।" प्रकृति चाहती है कि अन्य प्राणियोकी भाति मनुष्य भी सदा नगा रहे। प्रकृतिकी इस इच्छाको कौन वदल सकता है?

नगा—निर्वस्त्र रहना प्रकृतिके अनुकूल है, अत. सही है।

यह सभी जानते है कि वायु और प्रकाशके आदी पशु और पौधे, दोनो ही अधेरी जगहमे रख दिये जानेपर मुरझाये-से, जीवन-विहीन-से हो जाते है। पर प्रकाशमे लानेपर उनमें फिर जीवन-ज्योति जगमगा जाती है। वे प्राण पूर्ण प्रतीत होने लगते है। प्रकाशका प्रभाव छोटे-से-छोटे पौधेपर भी स्पष्ट दिखाई देता है। प्रकाश पाते ही उसका रंग खिल उठता है। प्रकाशकी वदौलत पशुओमे प्राण दौडता-सा प्रतीत होता है। प्रकाशके आते ही वे कुलाचे मारने और दौड़ने लगते है।

आजका सभ्य कहलानेवाला मनुष्य हरदम कपड़ोसे ढका रहता है। उसके शरीरका अधिक भाग मानो अंधेरेमे रहता है। उसे चाहिए कि जरा अपने कपडोको दूर करे, जगलमे

जाय, शरीरपर हवाका झोंका और प्रकाशकी किरणे लगने दे और तब देखे कि कैसी सजीवता और तेजस्विताका वह अनुभव करता है । शरीरके, वायु और प्रकाशके संसर्गमें आते ही, अंग-प्रत्यंग तेजीसे काम करने लगते है, जीवन-शक्ति बढती है और निर्जीव, रोगपूर्ण शरीरमे स्वास्थ्यमय, हर्षोन्मादक भावनाका संचार होता है ।

अंधेरी जगहोमे बंद रहनेपर भी पशुओके रोमकूपोंके द्वारा रोगकी गर्मी निकलती रहती है, पर कपड़ोंके कारण मनुष्य-शरीरके इस स्वाभाविक कार्यमें भी बाधा पड़ती है । अच्छा हो कि वनमे, मैदानमे, या कमरेमे ही, जहांतक संभव हो अधिक-से-अधिक खिड़कियां खुली रखकर, थोड़े समयके लिए ही सही, नंगे रहा जाय । यह क्रिया बड़ी प्रभावशाली और अद्भुत रूपसे लाभदायक सिद्ध हुई है और इसके समान शक्ति देनेवाली तो कोई दूसरी तरकीब है ही नही ।

प्रकाश जीवन-शक्तिको सतेज करता है, और वह त्वचा, जिसे अंदरसे निकाली गंदी वायुको कपड़ोसे ढकी रहनेके कारण, अंशतः फिर-फिर सोखना पड़ता था, इस दूषणसे मुक्त हो जाती है और खुलकर शुद्ध वायु ग्रहण कर पाती है ।

इससे वायु और प्रकाशके आश्चर्यजनक एवं जीवनदायक प्रभावका कारण सरलतासे समझा जा सकता है । स्वास्थ्य-रक्षामे, नये-पुराने रोगसे मुक्ति देनेमे, और घावोंके भरनेमें, वायु और प्रकाश कितने सहायक हो सकते है, यह साधारण बुद्धिवालेके भी समझमे आनेवाली चीज है । पर डाक्टरोंकी

कौन कहे, प्राकृतिक चिकित्सक भी इसका समुचित उपयोग नही करते यद्यपि इससे सरल, सस्ती और सदा मिलती रहनेवाली दवा दुनियामें दूसरी नही है।

तीव्र रोगोंमे जानेका अधिक-से-अधिक खतरा बहुत तेज बुखारमे ही रहता है, अत उसका कम करना आवश्यक हो जाता है। इसके लिए जल-चिकित्सक जलका प्रयोग करते हैं। ज्वरको कम करनेवाले अनेक प्रकारके नहान एवं गीली पट्टी आदिके बारेमे सभी जानते है और यह भी सबने देखा होगा कि ज्वर जलके प्रयोगमे उतर-उतरकर फिर-फिर आता रहता है। डिप्थीरिया रोगमें तो यह भय होने लगता है कि रोगीका दम न घुट जाय।

रोगीकी यह हालत देखकर जल-चिकित्सक भी चिंतित होने लगता और कभी-कभी घबरा जाता है। उस समय भी कमरेके बाहर बहती हुई वायु कहती रहती है कि मुझे भी समझो, रोग-मुक्तिमे प्रकृतिकी मैं भी सहायिका हो सकती हूं। पर वायुके बोल, जलचिकित्सककी समझमें नही आते। वह कमरेकी गरमीसे घबराकर खिड़कीके पास जाता है। वायु अपने शीतल करोंसे उसका जलता मस्तक पोंछ देती है। वायुके हाथोंका यह स्पर्श उसे सुखद मालूम होता है पर रोगीकी कष्टकर दशा देखकर वायुके हृदयसे उठते उच्छ्-वासोंका अर्थ उसकी समझमे नही आता।

तेज बुखारसे पीड़ित रोगी अपनेपर लादे गए वस्त्रोंकी अवहेलना करता है और सदा सही मार्गपर ही ले जानेवाली

नैसर्गिक वृत्तिका अनुसरण करता है। डिफ्थीरियासे पीडित बच्चा अपने बिछावनपर लेटा-लेटा हाथ-पैर फेकता है, यदि उसका वश चले तो वह अपने ओढ़नेको जरूर फेक दे।

मीयादी बुखारसे पीडित विभ्रातचित्त रोगी अपनी संपूर्ण शक्तिसे, और यह शक्ति तीव्र ज्वरमे स्वभावतः बढ जाती है, बाहर निकल भागनेकी कोशिश करता है। वह कमरेकी खिडकी-के रास्ते बाहर बहती ठंडी-ठंडी हवामें उड़कर पहुच जाना चाहता है। घरवाले रोगीकी यह दशा देखकर भयभीत हो उठते है। प्रकृति पूरे जोरके साथ अपनी इच्छा जाहिर करती है, तब भी डाक्टर मानो दोनों हाथोसे कान मूंदे रहता है। हां, जब वह विद्यार्थी था, तब उसने अपने उस प्रोफेसरका फेफड़े-की बीमारिया और उनकी चिकित्सापर उसकी बेसुरी आवाज-मे, वैज्ञानिक भाषण अवश्य सुना था, जो उस भाषणके कुछ वर्षो बाद ही यक्ष्मासे मर गया था। पर वह प्रकृतिके आवाज-पर ध्यान नही देता, जैसे यह आवाज उसकी समझमें ही न आती हो।

हृदयमें प्यारका भार लिये आशा और निराशाके बीच झूलती हुई माता डिफ्थीरियासे पीडित अपने बच्चेकी खाटके निकट बैठी रहती है। देखती है कि बच्चा अपने बदनपरकी चादर फेक-फेक देता है। वह बलपूर्वक अपने लालको ढंकती रहती है। यह भोली माता नही समझती कि प्रकृति माता उसे चादर फेंक देनेको प्रेरित कर रही है।

रातको मीयादी बुखारसे पीडित रोगीकी तीन-तीन, चार-चार मजबूत आदमी चौकसी करते है कि कही वह प्रकृतिकी आवाजपर चल न पड़े।

प्रकृतिकी सहायताको मनुष्य जान-बूझकर ठुकराता रहता है, पर दयालु प्रकृति उसपर अपने आशीर्वादकी वर्षा, चाहे जैसे, हर तरहसे करनेको उत्सुक रहती है।

इधर एक कहानी प्रचलित है कि किसी रोगीके दुर्बुद्धिके चाकर चौकीदारोंको प्रकृतिने एक बार सुला दिया था कि रोगी नंग-धडग खिड़कीके रास्ते बाहर बहती जाड़ेकी बर्फ-सी ठंडी हवामे जा सके।

पड़ोसके घरमे ज्वरके कुछ रोगियोकी रक्षा करनेके लिए प्रकृतिको अधिक कठोरतासे काम लेना पड़ा था। जाड़ेकी स्वच्छ रात्रि एकाएक बादलोकी गडगड़ाहटसे काप उठी। बिजली चमकने लगी। प्रकृतिने रौद्र रूप धारण कर लिया। कुछ ही क्षणो बाद कड़कड़ाती बिजली, जिस घरमे रोगी रहते थे, उसीपर गिरी और घर एक किनारेसे धधाकर जलने लगा। लोग जाग पड़े और बेखबरीमें घरसे भागे। रोगी भी अपने बिछावनसे निकलकर, जैसे नगे वे सोये थे, वैसे ही भागे। लोग बदहवास आग बुझाने और घरकी चीजे बचानेमे लगे थे। थोड़ी देर बाद होश-हवास कुछ दुरुस्त होनेपर उन्हे रोगियोकी याद आई। सो वे उन्हे, अथवा अपनी समझके अनुसार, उनकी लाशे खोजने निकले।

रोगी उन्हे मिले। उनकी हालत बहुत ठीक थी। ज्वर

बिल्कुल चला गया था। तबसे उनकी हालत सुधरती ही गई। यह देखकर सबको आश्चर्य होता था।[1]

---

[1] जस्टकी दी हुई यह घटना हमारे अनेक पाठकोको कपोलकल्पित जान पड सकती है। पर हम अपने पाठकोको इसीसे मिलती-जुलती राजपूतानेकी एक घटना सुनाना चाहते है, जिससे पाठकोंको जस्टकी उक्त बातपर अपना विश्वास जमानेमे मदद मिलेगी।

झूझनूमे एक देवडा-परिवारका श्रीपोकरमल नामका एक व्यक्ति था। वह पागल हो गया। उसका अनेक प्रकारका इलाज हुआ पर लाभ कुछ न हुआ। घरके लोगोको वह बहुत परेशान करता था। अतमे विवश होकर और देवीकी कृपा पानेके खयालसे लोगोने उसे झूझनूमे राणी सतीके स्थानपर रखा। पर उसकी हालत ऐसी नही थी कि खुला रखा जा सके, इसलिए एक नीमके पेड़के नीचे पोकरमल-को जजीरसे बाधकर रखा गया था। एक दिन रातको बहुत जोरोका, जैसा कि राजपूतानेमें प्रायः नही होता, पानी बरसा। उस नीमके पेडके नीचे पानी भर गया। रोगी रातभर उस पानीमे पडा रहा और ऊपरसे बौछारोसे भीगता रहा। वहा कोई उसकी रखवालीके लिए न था, अपने पागलपनके लिए उपेक्षित था वह। सबेरे लोग क्या देखते है कि रातकी जोरदार ठडी हवाके झोंको और पानीकी बौछारने रोगीका दिमाग ठडा कर दिया। उसका पागलपन कतई जाता रहा। शायद लोगोने समझा होगा कि राणी सतीकी कृपासे ऐसा हुआ पर वास्तवमें तो 'विश्वकी रानी प्रकृति'ने जो सदा सतपर स्थिर रहती है, कभी व्यभि-चारिणी नही होती, पोकरमलके मलको उस रात अपने हाथो मल-मलकर धोया होगा। हा, यह माना जा सकता है कि झूझनूकी राणी सतीने प्रकृति-से ऐसा करनेकी प्रार्थना की होगी।—अनुवादक

प्राकृतिक विजली गदगी और सडनपर ही गिरती है, केवल रोगपर ही गिरती है। प्रकृति, उसके कानूनके खिलाफ चलनेवालोको सजा देती है। जगलमे रहनेवाले स्वस्थ पशु उस बिजलीके कहा शिकार होते है, उसके गिरनेसे तो घरमें रहनेवाले अस्वस्थ पशु और उनसे बढकर रोगकी खान मनुष्य ही मरते हैं।

कटि-स्नानसे भी सभी तीव्र रोगोंमे बहुत लाभ होता है। इसके प्रयोगसे भयंकर ज्वर भी शीघ्र कम हो जाता है, पर यह स्नान न उतनी देरतक लिया ही जा सकता है, न उतनी बार ही, जितनी बार कि प्रकाश और वायु-स्नान, जिसके लेनेके लिए केवल नगे होकर थोडा टहलना बस होता है।

पालतू पशुओको मनुष्य प्राय. बिल्कुल अप्राकृतिक दशामें रखता है। अक्सर उनको तग, घिरी, अधेरी जगहोमे बद रखता है, जहा स्वय पशुके मल-मूत्रकी दुर्गंध उडती रहती है। उन्हें सडा-गला घास, भूसा इत्यादि खानेको दिया जाता है। फल यह होता है कि पशुको भयकर बीमारियां हो जाती है। तथापि पशुको न कभी तेज खतरनाक ज्वरका ही सामना करना पड़ता है न वह मीयादी बुखारके रोगीकी तरह विक्षिप्त ही होता है। ऐसे पशुको चाहे कैसा ही मौसम क्यों न हो, अगर बीमार पड़ते ही वायु और प्रकाशविहीन तंग गदी कोठरीमे बंद करनेके बजाय खुले मैदानमे छोड़ दिया जाय तो वह शीघ्र स्वस्थ हो जायगा।

आदमीको ज्वर हो जानेपर वह इसलिए तेजीसे बढता एवं खतरनाक हो जाता है कि भीतरकी गरमीको न निकलने दिया

जाता है न पशुके नंगे शरीरकी तरह कपडोंसे ढके मनुष्य-शरीरको वायु शीतल ही कर पाती है।

गरम तरल पदार्थसे भरे बर्तनको ठंडे पानीमे रख देनेसे जिस प्रकार वह ठंडा हो जाता है उसी प्रकार ठंडी वायुके संपर्कमे आनेपर शरीरकी गरमी कम हो जाती है।

अतः प्राकृतिक चिकित्सक जब कभी किसी रोगीको देखने जाय तो उसे पहला काम यह करना चाहिए कि यदि वह रोगीके कपडे न उतरवा सके तो ओढना जरूर हटवा दे, और यदि उसकी हिम्मत रोगीको बाहर खुलेमे ले जानेकी न पडती हो तो, जाडेकी ऋतु होनेपर भी कमरेकी अधिक-से-अधिक खिड़कियां खुलवाकर ठंडे गरम मौसमके अनुसार पद्रहसे बीस मिनटतक रोगीको नगा टहलने या लेटने दे। गरमीके दिनोमे वायु और प्रकाश-स्नान एकसे तीन घटेतक दिया जा सकता है।

गरमीके दिनोमें सबेरेकी ठडी-ठडी हवाका प्रयोग किया जा सकता है। हवा जितनी ठडी होगी, लाभ उतना ही निश्चित होगा।

ठडक, सर्दी, जुकामसे सभी पुराने खयालके बड़े-बूढे डरते रहते हैं और प्राकृतिक चिकित्सक भी इस डरसे अपनेको मुक्त नही कर पाता, यद्यपि वह जानता है कि अन्य तीव्र रोगोकी भाति जुकाम भी शरीरकी शुद्धिका प्रकृतिकी ओरसे एक प्रयत्न है और हर दशामे शुभ लक्षणके समान है। जुकामका उचित उपचार होनेपर वह कभी अनिष्टकर नही सिद्ध होगा बल्कि हर हालतमे स्वास्थ्यके लिए लाभकर ही होगा।

डाक्टरोके दिमागमे तो जो घास युनिवर्सिटीमे लगाई जाती है, वह शीघ्र इतनी अधिक गहरी जड़ जमा लेती है और घनी हो जाती है कि उसका बिल्कुल साफ हो सकना सर्वथा असभव हो जाता है।

कहिए कितना अच्छा होता, यदि ईश्वर किसी महापुरुष-को इस संसारमे भेजता, जो वुद्धिका भडार होता और जिसकी वाणीमे देवोका-सा वल होता, जो मनुष्य-जातिके वडे-से-वडे सहायक ठडक, वायु और प्रकाशका भय लोगोके हृदयोसे निकाल देता, जिससे स्वास्थ्य और प्रसन्नता मिलती तथा कितने ही मनुष्योके अमूल्य प्राण असमय प्रयाण करनेसे वच जाते।

मनुष्य प्रकाश और वायुका सबसे वड़ा पुत्र है। वायु और प्रकाश उसके जीवनके विशेप अग है, जैसी कि प्रकृतिकी इच्छा है, उसे प्रकाश और वायुमे रात हो या दिन, गरमी हो या जाड़ा, निर्वस्त्र ही रहना चाहिए।

मनुष्य अपनेको प्रकाश और वायुसे दूर रखनेका पाप बहुत अधिक दिनोसे करता आ रहा है, अत. उसके प्रकृतिकी ओर लौटनेकी, शीघ्र-से-शीघ्र लौटनेकी विशेष आवश्यकता है। वड़े दु खकी वात है कि प्रकाश और वायुसे पूर्ण लाभ उठानेके लिए मनुष्य अपनेको काफी देरतक निर्वस्त्र नही रख पाता। इस बारेमे ज्यादती तो कभी हो ही नही सकती। रात-दिन सरदी-गरमी और वरसातके दिनोसे अधिक समयतक वह क्या नंगा रह सकता है?

यह सोचना गलत होगा कि मनुष्य आदिमे वालोसे ढका

हुआ था और अब जब कि उसका यह चोगा उतर गया है, उसके लिए बिना कपड़ोंके रहना कठिन है। कुछ थोड़े-से लोगोंके शरीरपर बाल अवश्य होते हैं, पर उन्हें अपवाद ही मानना चाहिए। शेष लोगोंके शरीरपर तो, जिनमें ऐसे लोग भी शामिल हैं, जो सृष्टिके आदिसे ही नंगे रहते हैं, या अपने बदनको कम-से-कम ढकते हैं, बाल कतई नहीं होते। हाथ, मुंह, गरदनपर भी, जो आजतक कपड़ोंसे बचे रहे हैं, बाल नहीं हैं। प्रकृतिने अपनी सर्वश्रेष्ठ कृति मनुष्यको, समझकर ही बाल नहीं दिये हैं, जिनमें वह स्वास्थ्यके सहायक वायु और प्रकाशके सीधे संपर्कमें आ सके। कपड़े पहननेसे इसीलिए उसे रोग भी अधिक होते हैं और यदि वह नंगा रहने लगे तो लाभ भी अधिक होगा।

वायु और प्रकाशसे सर्दी-जुकाम होता है, यह बात ही साबित करती है कि जीवनशक्तिको जगानेकी उनमें बहुत अधिक शक्ति है। और जहां ठंडी हवा और हवाके झोंके लगनेसे बहुत जल्द जुकाम होता है वहां उनका उपयोग, रोगनाशका प्रभावकारक और उत्तम साधन है।

प्रकृतिने जाड़े और ठंडककी इसीलिए व्यवस्था की है कि पशु-पौधे और शरीरपर होनेवाली सड़न रुक जाय, संक्रामक कृमि, सड़नसे पैदा हुए कीड़े-मकोड़े और गंदगी फैलानेवाले छोटे जीव मर जायं। रोगी शरीरके लिए तो इस प्रकारकी सफाईकी आवश्यकता बहुत ही अधिक रहती है।

जिसे खुजली हुई हो यदि वह जाड़ेके दिनोंमें, नंगा ही, खुले बदन निकले तो उसके खुजली पैदा करनेवाले कृमि जरूर

मर जायंगे। वायु और प्रकाशकी शरण जानेपर इसी प्रकार यक्ष्मासे पीड़ित अनेक रोगियोंके फेफड़ोंमें पैदा हुए कृमि भी मर जायंगे, जो वहां पड़े विजातीय द्रव्यकी सड़नके कारण पैदा हो जाते हैं।

जो स्वस्थ हैं और जिनका शरीर सुदृढ़ है, उनको तो कम, पर रोगी और कमजोर व्यक्तियोंको अपने अंदरकी गरमी कम करने एवं जीवनशक्तिको बढ़ानेकी बड़ी आवश्यकता होती है।

एक बार मैंने एक डाक्टरसे पूछा कि प्रकाश और वायु-स्नान-का उपयोग हर रोगमें और खासकर ज्वरमें क्यों इतना कम किया जाता है? तो उन्होंने जवाब दिया कि "अभीतक इस स्नान-पर बहुत कम प्रयोग किए गए हैं।"

लड़कोंको कई वर्षतक स्कूलमें पढ़ना पड़ता है, फिर कालेज-में, और इसके बाद पांच वर्षतक डाक्टरी सिखाई जाती है। कई लड़के तो परीक्षा पास करनेके बाद भी अधिक जानकारीके लिए कई वर्षतक और पढ़ते रहते हैं, पर इतनेपर भी उनमें प्रकाश और वायु, सर्दी और गरमीके प्राकृतिक प्रभावके अनुभव करनेकी शक्ति पैदा नहीं होती, और न वे बिना प्रयोग किये, यही समझ पाते हैं कि वायु और प्रकाश-स्नान नितांत निर्दोष, प्रभावकर, स्वास्थ्यरक्षक जीर्ण एवं तीव्र रोगनिवारक हैं।

मैं ऐसे भीरु प्राणियोंको बता देना चाहता हूं कि मैंने इस स्नानका प्रयोग अनेक प्रकारके रोगों एवं उनकी अनेक दशाओंमें

किया है और मेरी आशाके अनुसार ही बड़े प्रशंसनीय परिणाम प्राप्त हुए है।

बहुधा ऐसा हुआ है कि मेरे समझा देनेपर रोगी आरंभसे ही खुशी-खुशी यह नहान लेनेको राजी हो गए।

जवान और बूढ़े दोनों ही प्रकारके ऐसे रोगी, जिन्होने मोटे-मोटे ऊनी कपड़े पहनकर तथा और भी अनेक प्रकारसे अपनेको वायु और प्रकाशसे दूर रखकर अपने शरीरको अत्यंत सुकुमार बना लिया था, धीरे-धीरे आदत डाले बिना ही, एकाएक नंगे होकर, बहती हवामे, बरसते बरफ और पानीमे, कड़कड़ाते जाड़ेमे, खुली जगहमे वायु और प्रकाश-स्नान लेनेको तैयार हो गए।

कुछ तो ऐसे भी आये जो वायु और प्रकाश-स्नान लेनेके स्थानतक चलकर जानेमे अशक्त थे। ज्यो ही उन्होने अपने कपडे उतारे, वे अपनेमे शक्तिका अनुभव करने लगे, और जिस प्रकार वे घरसे आये थे उससे बहुत कम कठिनाईसे और अधिक तेजीसे घर गये। वायु और प्रकाशके स्नानार्थियोमे बहुत कमजोर और रोगी, जवान ही नही, सत्तर-सत्तर अस्सी-अस्सी वर्षके बूढे-बूढी और नामी-नामी व्यक्ति थे।

तीव्र रोगोमे, खास तौरपर तेज बुखारमे, रोगीको इस स्नानसे ऐसी ताजगी और ताकत मालूम होती है कि अपने भयभीत घरवालोके बार-बार कहनेपर भी वे कमरेके खिडकीके निकटसे टलते नही।

नये रोगमे तो अनेक बार लाभ इतना आनन-फानन

हुआ कि रोगीके आस-पासके लोग आश्चर्यमे डूब गये।

न्यूयार्कके निकट स्थित मेरे यंगवार्न नामक प्राकृतिक चिकित्सालयमे हर मौसममे, और खासकर जाड़के दिनोमें, वायु और प्रकाशस्नान लोग बड़ी मौजसे लेते है।

जिस प्रकार गरम कमरेमे बैठकर आधीकी बात करने-पर वह बडी रहस्यमयी-सी प्रतीत होती है, पर खुलेमे जब उसका अनुभव कर लिया जाता है, तो उसकी सारी भयकरता दिमागसे निकल जाती है, उसी प्रकार ठंडके दिनोमें वायु एव प्रकाश-स्नान लेनेकी बात जितनी विचित्र मालूम होती है, उतना स्नान स्वयं नही।

वायु और प्रकाश-स्नानसे शरीर गरम रहता है, ठंडक नही मालूम होती, ताकत बढती है। इसे जारी रखनेपर इसका लेना आसान हो जाता है और इसके साथ जो रहस्य-सा जुड़ा प्रतीत होता है वह चला जाता है।

गरमीके दिनोमें सवेरे ही वायु और प्रकाश-स्नान लेना बडा आनंद देता है। सवेरेकी ठंडी-ठंडी मजेदार हवाके सुखद स्पर्शसे चित्त प्रसन्न हो जाता है। फिर सूर्यकी कोमल रश्मियां शरीरपर लगती है। उनकी गरमी अधिक होनेपर किसी ठंडी छांहदार जगहमे जा सकते है। यह स्नान, जाड़ा हो या गरमी, बराबर लेते रहना चाहिए। जाड़ेका एक अपना लाभ यह है कि त्वचा शीघ्र शीतल हो जाती है। अत. यह स्नान गरमीके दिनोंकी तरह जाडेमे अधिक देरतक लेनेकी जरूरत नही पड़ती।

इतना कह लेनेके बाद मेरी समझमे अब किसी भी समझ-

दारको विश्वास दिलानेकी जरूरत नही रह जाती कि वायु और प्रकाश-स्नानसे किसी भी हालतमे कोई नुकसान होनेकी संभावना नही है। कितने ही जीर्ण रोगियोके लिए तो मैने कई बार चाहा है कि उन्हे तेज जुकाम या कोई तीव्र रोग हो जाय। यदि ऐसा हो जाता तो मै अवश्य ही रोगीके लाभके लिए उसका उपयोग करता। पर मेरी ऐसी चाहना पूरी होनेका सौभाग्य मुझे कभी प्राप्त नहीं हुआ। यदि जुकाम हो जाय तो भी वायु और प्रकाश-स्नान छोड़नेकी जरूरत नही, बुद्धिमत्तापूर्वक उसे लेते रहना चाहिए। इसे लेते रहनेपर जीवनशक्ति अधिकाधिक बढती है, शरीर गंदगी निकाल फेकनेमें अधिक सफल होता है। जुकाम-से जो अंदरूनी गरमी पैदा हो जाती है वह इस स्नानसे शात हो जाती है जिससे रोगीका कष्ट कम हो जाता है और वह आराम अनुभव करता है।

प्राकृतिक चिकित्सकके लिए यह आवश्यक है कि वह वायु और प्रकाश-स्नानके संबधमे अपने विचार स्पष्ट कर ले और जव उसका उपयोग करे तो उसके लाभके संबंधमे किसी प्रकारकी शंका न करे। यदि इस स्नानके प्रयोगसे रोगीको जुकाम होनेपर, प्राकृतिक चिकित्सक घवराकर उसे वायु और प्रकाशसे दूर गरम कमरेमे बंद कर देगा, और कही किसी दवाका प्रयोग करा वैठेगा तो रोगी कमजोर हो जायगा। निकलता हुआ विजातीय द्रव्य शरीरके अंदर ही रुक जायगा और परिणाम वुरा नो होगा ही, कभी-कभी खतरनाकतक हो सकता है।

पर सुस्थिरता और दृढताकी हमेशा विजय होती है। इस चीजका विश्वास मै हर नये आदमीको आरंभमे ही करा दिया करता हू, अतः पैसा लेकर स्वास्थ्य ठीक रखनेकी राय देनेवाले डाक्टरसे अधिक बुद्धिमती प्रकृति और उसके स्वास्थ्यप्रद साधनोमे विश्वास रखकर पहले हर एकको स्वयं वायु और प्रकाशस्नान करना चाहिए, और फिर अपने कुटुवियोको कराना चाहिए।

वायु और प्रकाश-स्नानसे मिले लाभके अनुभवसे प्रभावित हुए कितने ही पुरुषों और स्त्रियोंको भी गरमीमे ही नही, जाड़ेमे भी अपने कमरेकी खिडकियोंके सामने खड़े होकर यह स्नान उत्साहपूर्वक लेते देखकर मेरी तबियत खुश होती है।

यदि वायु और प्रकाश-स्नानका लोग आम तौरसे उपयोग नही करते तो मै यह उनकी नही, प्राकृतिक चिकित्सकोकी ही गलती कहूंगा; क्योकि सर्वसाधारणको तो अपने स्वास्थ्यके बारेमे सोचनेकी शिक्षा ही नही मिलती, उनमे तो बिना समझे-बूझे, बिना तर्क किये जो कहा जाय, उसे करनेकी आदत डाली जाती है।

रात और दिनको, जाड़ेमे और गरमीमे, नंगे रहकर अबाध रूपसे वायु और प्रकाश-स्नान करते रहना सर्वथा प्राकृतिक एवं एक श्रेष्ठ स्वास्थ्यकर स्वभाव है। पर और किसी तरहकी रुकावट न भी हो तो आजकी कापुरुष और निर्बल पीढ़ीके लोगोंमेसे कौन हमेशा नगा रहेगा? अत. इस विषयमें प्रत्येकको अपनी सुविधा और समयके अनुसार यह स्वयं

निश्चित करना चाहिए कि सर्दी-गर्मीको देखते हुए कितनी देर-तक और कितने समय वाद वह प्रकाश-स्नान करे। सिद्धांत यह है कि जितनी देरतक और जितनी जल्दी-जल्दी यह स्नान किया जाय, अच्छा है।

यदि वायु और प्रकाश-स्नान, खुलेमें तथा वनमे जाकर लिया जा सके तो वह कमरेमे लेनेकी अपेक्षा अधिक लाभकर होगा। प्रत्येक जंगलमे ऐसी खुली जगहे होती है, जहा यह स्नान मजेमे सवेरे ही लिया जा सकता है। गरमीके दिनोमे प्रात-कालका समय यह स्नान करनेके लिए वहुत उपयोगी है। यदि इच्छा होगी तो यह स्नान करनेका मौका भी मिल जायगा और समय भी निकल आवेगा।

नदी, समुद्र, तालाव और झीलके किनारे जहां लोगोके स्नानके लिए घाट वने होते है, वायु और प्रकाश-स्नानके लिए भी, वहुत उपयोगी हो सकते है। वहा जव कोई चाहे, जितनी देरतक चाहे, वहुत हल्के कपड़े पहनकर वायु और प्रकाश-स्नान वड़े मजेमे ले सकता है। धीरे-धीरे वहा विल्कुल नगे रहकर यह स्नान करनेके स्थान वनवाए जा सकते है।

लेकिन ऐसे लोग खासकर औरते, जिन्हे खुलेमे वायु और प्रकाश-स्नान लेनेकी सुविधा प्राप्त नही है, जाडा, गरमी, वरसात, सभी ऋतुओमे, अपने कमरेकी खिड़कीके निकट रहकर नित्य ऐसे स्नान कर सकती है। जो लोग यह स्नान आरभ कर रहे हो, वे इस रीतिसे यह स्नान जाड़ेमे भी शुरू कर सकते है। वच्चोको, यह स्नान खास तौरसे, और जन्मके दिनसे ही

करना चाहिए। कमरेमे कराना हो तो सवेरे सोकर उठते ही प्रातःकालका समय ठीक रहेगा। उन्हे इसमे शीघ्र ही आनद मिलने लगेगा। जब उन्हें वह दिया जायगा तो वे आनदसे कूदने-फादने लगेंगे। यदि इस रीतिका अनुसरण सर्वसाधारण करने लगे तो आगेकी पीढीके खूब स्वस्थ और सुदृढ होनेकी आशा की जा सकती है। वायु और प्रकाश-स्नान लेते समय वदनपर कोई कपड़ा न रहे, न जूता हो, न मोजा।

वायु और प्रकाश-स्नान करते समय, खास तौरसे जाड़ेके दिन हों, तो खूब कसरत करनी चाहिए। यह कसरत टहलने और दौडनेके रूपमे हो सकती है।

वायु और प्रकाश-स्नानके बाद शरीरमे गरमी लाना अत्यत आवश्यक है। तेजीसे टहलनेसे, कोई श्रम-साध्य काम करनेसे, एव घर-गृहस्थीका काम करनेसे या केवल ओढकर लेटनेसे यह काम बहुत अच्छी तरह पूरा होता है।

यह समझना भूल है कि वायु और प्रकाश-स्नान बदनकी गरमीको कम करनेके लिए किया जाता है। जिस प्रकार हर समय अगीठीके पास बैठे रहनेवालेको जाड़ा कभी नही छोड़ता, उसी प्रकार ठढमे वायु और प्रकाश-स्नान लेनेवालेका शरीर यह स्नान लेनेके समयके सिवा हर समय अधिक गरम रहता है।

कमरेमे नंगे रहनेका लाभ भी कम नही है।

यदि प्राकृतिक स्नान लेनेके बाद नहाकर और सारे शरीर-को रगड़कर गरम कर लेनेके बाद, वायु और प्रकाश-स्नान

किया जाय तो रक्त हाथ-पैरोकी अंगुलियोतकमे, तथा त्वचाकी ऊपरी सतहतक तेजीसे दौडने लगता है। उस समय यह स्नान करनेमे आसानी होती है और मामूलीसे अधिक देरतक लिया जा सकता है। एक बार परीक्षा कर देखिए तो आपको मेरे कथनकी सचाईमे विश्वास हो जायगा।

वायु और प्रकाश-स्नान करनेके अलावा बरसते पानीमें नगे सिर चलना भी बहुत लाभदायक है।

जव समय मिले, और मौका मिले, तब वायु और प्रकाश-स्नान करनेवाले भी नंगे पैर जरूर चले।

विशेष स्नान, साधारण स्नान अथवा सिर धोनेके बाद या नगे पैर टहलनेके वाद भी शरीरको तौलियेसे सुखाना अप्राकृतिक है। यह आदत ठीक नही है। खुलेमे खूब कसरत कीजिए,बदन अपने आप सूख जायगा।

जाडा, गरमी, बरसात सभी दिनोमे सोनेके कमरेकी खिडकियां रातमे भी खुली रखनी चाहिए।

धूप-नहान भी एक प्रकारका वायु और प्रकाशस्नान है। इसके लिए किसी वनमे जाकर निर्वस्त्र होकर जमीनपर लेटना चाहिए। यदि धूप बहुत तेज हो और आपने कभी पहले धूप-नहान न लिया हो तो बदनको जलनेसे बचानेके लिए बदनपर कोई पतला-सा कपड़ा या बड़ा अच्छा हो कि ताजी हरी पत्तियां डाल ली जाएं।

ठंडी गीली मिट्टी भी सारे वदनपर लगाकर उसे जलनेसे वचाया जा सकता है।

धूपसे जलना न हानिकारक है न खतरनाक, पर जले हुए स्थानोमे अक्सर बहुत पीड़ा होती है। अत. जहातक बन सके इस प्रकार जलनेसे अपनेको बचाना चाहिए। यदि कही जल ही जाय तो उसकी दवा है ठडे पानी एवं ठंडे पानीसे भीगी पट्टियोका प्रयोग। (गीली मिट्टी लगाना भी उतना ही लाभकर होगा)। आम तौरसे काममे लाये जानेवाले मरहम और तेलोका प्रयोग कभी न करना चाहिए।

जब धूप बहुत तेज हो, तब धूप-नहान बहुत अधिक देरतक कभी नही लेना चाहिए। वायु और प्रकाश-स्नान लेते समय कभी धूपमे और कभी सायामे रहा जा सकता है।

यह आवश्यक है कि धूप-नहान जमीनपर लेटकर ही लिया जाय। घरकी छतपर या बिछौनेपर लेटकर लेना, जैसा कि लोग अक्सर किया करते है, ठीक नही है। मनुष्य धरतीका बेटा है।

पृथ्वीके सीधे संपर्कमे आनेपर मनुष्यपर जो जीवनदायक प्रभाव पड़ता है, उसपर मै सुविस्तृत प्रकाश फिर डालूंगा।

यदि नगे होकर वायु और प्रकाश-स्नान लेनेका मौका न मिले तो हलके कपड़े पहनकर खुली जगहमे, और उसका भी मौका न मिले तो अपने कमरेमे ही लेना ठीक होगा। जब धूपमे लिया जाय तो मुंहको धूपसे बचाना चाहिए।

धूप-नहानके बाद कटि-स्नान लेकर शरीरकी गरमी शात करनी चाहिए।

झंझरीदार झोंपड़ी

मैदानमें बनी झोंपड़ीमें जिसमें वायु और प्रकाश निर्बाध रूपमें आते हों, सोनेसे बड़ा लाभ होता है।

यह बिलकुल मामूली झोंपड़ी होती है। वर्षाके पानीसे बचावके लिए ऊपर छाजन डाल देते हैं। इसमें दीवारें नहीं होतीं, बिलकुल खुली या झंझरीदार होती है। आंधी और तेज हवासे बचनेके लिए परदे होते हैं और जाड़ेके दिनोंमें घोर ठंडसे बचनेके लिए सरकंडे आदिकी टट्टी या कम ऊंचाई का काठका परदा लगा दिया जाता है जिसमें वायुका प्रवेश अच्छी तरह होता रहे। अगर खिड़कियां और रोशनदान काफी हों तो दीवारें भी रखी जा सकती हैं और तब यह रहनेके काममें भी लायी जा सकती है। छतमें भी, रोशनदान रखना अच्छा होता है जिसमें खिड़कियां बंद होनेपर वे खुले रखे जा सकें।

शरीरके लिए, विशेषकर रात्रिकालमें जब वह पाचन-कार्यमें संलग्न रहता है, शुद्ध ताजी हवा परमावश्यक है। इस दृष्टिसे इस तरहकी झोंपड़ीमें सोना स्वास्थ्यके लिए बहुत महत्वपूर्ण है। जिनके बाग-बगीचे आदि हैं वे रहनेके लिए ऐसी झोंपड़ियां मजेमें बनवा ले सकते हैं।

जंगलमें बने हुए मकानोंमें भी रसोईघर, रद्दी चीजों आदिकी गंध रहनेके कमरोंमें पहुंच सकती है। वायुके दूषित होनेका एक कारण यह भी होता है कि एक ही मकानमें नीचे-

ऊपर बहुतसे मनुष्य रहा करते है और पत्थरकी दीवारोमे घुसी हुई दुर्गंध बहुत दिनोंतक रुकी रहती है; इसलिए ऐसे मकानोकी हवा बिलकुल शुद्ध कभी नही रहती। झंझरीदार झोपड़ेमे यह खराबी नही पायी जा सकती। सर्दी, आन्त्रिक सन्निपात ज्वर, विसूचिका, गठिया, घातक अर्बुद, चर्मरोग, फोड़ा या और कोई भी रोग हो, शुद्ध हवा उसे दूर करनेमे सबसे अधिक सहायक होती है।

सारे सुखोंका मूल आधार स्वास्थ्य ही है। मनुष्य भौतिक सुखोका उपभोग अपने स्वास्थ्यके अनुरूप ही कर सकता है। इस तथ्यका ज्ञान हो जानेपर लोग झंझरीदार झोंपड़ीमे रहनेका लाभ समझने और उसका निर्माण करने लगेंगे और तब प्राकृतिकी गोदमे बनी हुई इन सुंदर झोंपड़ियोमें सोना या रहना लोगोंके लिए आश्चर्यका विषय नही रह जायगा और इन्हे नगरके कमरोपर बहुत तरजीह दी जाने लगेगी जो गंदे, दुर्गंधसे विषाक्त और ऐसे रोगोके उत्पत्ति-स्थान होते हैं जो शरीरको ही विकृत और विषाक्त नही करते बल्कि सभी प्रकारके मानसिक और आध्यात्मिक विकारो, जड़ता और उन्माद, तृष्णा और विनाश, पाप और अपराध, घृणा और द्वेष, कलह और संघर्ष—संक्षेपमे संसारकी सभी बुराइयोके कारण होते है।

यह भय नही करना चाहिए कि इस तरहकी झोंपड़ीमे रहनेपर जाड़ेके दिनोमे ठिठुरकर मर जायेंगे। अगर साधारण तोशक और रजाई या कंबल हों तो मैदान या जंगलमे

वनी ऐसी झोपड़ीमे आरामसे रहा जा सकता है; क्योंकि शुद्ध और ताजी हवामे सांस लेनेपर भरे और गदे कमरेमे सांस लेनेकी अपेक्षा शरीरमे अधिक गरमी पैदा होती है।

इन झोपड़ियोमे सोनेवालो और इनके कपड़ोंका वर्षासे मजेमे वचाव हो जाता है। मौसम अच्छा होनेपर खुले मैदानमे सोना झझरीदार झोपड़ीमे सोनेकी अपेक्षा अधिक लाभदायक होता है, क्योंकि हम प्रकृतिकी ओर जितना ही वढते जायगे वह हमे उसका उचित पुरस्कार देती जायगी। मैदानमे सोने-पर हम अविराम गतिसे विचरण करनेवाले तारोतक पहुचते है और मंद समीरण हमारा आलिगन करता रहता है। सुदर रात्रि मनको तो मुग्ध करती ही है, शरीर तथा आत्माकी सारी कमजोरियोको भी दूर कर देती है।

अगर कोई मनुष्य मकानसे वाहर खुले मैदानमे सोता है तो इसमे दिखावे या उपहासकी कोई वात नही है जव कि खरहे, हिरन, वारहसिगे, सूअर तथा अन्य वहुतसे जीव मैदानमे ही रहते हुए अपनी साफ चमकीली आंखों, शरीरकी स्फूर्ति और शक्ति, स्वास्थ्य तथा प्रकृतिसे प्राप्त अन्य अच्छे गुणोको उत्तम ढगसे वनाये रख सकते है। ये पशु मनुष्योंकी तरह आचरण नही करते जो अपने स्वास्थ्यकी उपेक्षा ही नही करते, उसे अपने ही पैरोसे रौंदा करते है जिससे उनका जीवन कटु और दु:खमय हो जाता है।

स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भारी-भरकम मकानोंसे छोटे हलके मकान अच्छे होते है। वागोमे या वृक्षोंसे परिवेष्टित छोटे-

छोटे मकान अधिक बनने चाहिए। गलियोंमें कतारमें बने हुए मोटी दीवारोंवाले मकान स्वास्थ्यकी दृष्टिसे अच्छे नही होते। नगरकी सीमापर बने हुए मकान भीतरके मकानोसे कुछ अच्छे होते है। मकानोंकी बनावट ऐसी होनी चाहिए जिसमें हवा और रोशनी बिना किसी रुकावटके हमेशा आती रहें।

हमारी वेष-भूषा

प्रकृतिकी इच्छा है कि मनुष्य नंगा रहे; और इसी तरहके जीवनके उपयुक्त उसने मनुष्यके शरीरको बनाया है। यदि ऐसी बात न होती तो मनुष्य चरखे-करघेका आविष्कार करनेके बहुत पहले ही मर-खप गया होता। इसलिए यथार्थ बात यही है कि मनुष्यको किसी तरहके भी कपड़े नही पहनने चाहिए।

हम अपने शरीरको चाहे कुछ क्षणोंके लिए ही क्यों न ढकें, किंतु ऐसा करना हमारे स्वास्थ्यके लिए बुरा है। मनुष्यको प्रकृतिने कैसा स्वास्थ्य दिया था, उसकी शारीरिक और मानसिक शक्ति कितनी तीव्र थी, उसे कितनी उम्र मिली थी और वह कितने आनंद और सुखका अधिकारी था ?—इसका ज्ञान हमें नही है, अतः हम यह नही समझ पाते कि कपड़े पहनकर और फलतः अपने शरीरको प्रकाश और वायुसे वंचित रखकर मनुष्य-जातिने अपने शरीरको कैसी कल्पनातीत हानि पहुंचाई

है। शीतोष्ण कटिबंधमे अभी कई ऐसी जातियां है (उदाहरणके लिए फायर आईलैडके रहनेवाले तथा दूसरे लोग) जो जाडा हो अथवा गरमी, कभी कपडे नही पहनती। कुछ ही वर्ष हुए समाचार-पत्रोने योरोपनिवासी किसी कैप्टेन स्मिथकी सारे कटिबंधोमे की गई उस यात्राका वर्णन किया था जो उन्होने बिना कपड़े बिलकुल नंगे बदन की थी।

आज हम एकाएक फिरसे सबके नगा रहना शुरू करनेकी आशा क्यों नही कर सकते, यहां यह बतानेकी मुझे आवश्यकता प्रतीत नही होती।

पर इस बातकी सख्त जरूरत है कि हम ऐसे कपड़े ही पसंद करे और बनावे जो वायु और प्रकाशको शरीरतक आसानीसे और भरपूर पहुचने दे और जिनसे होकर शरीरकी दूषित वायु बिना किसी कठिनाईके निकलती रह सके।

इधर बहुत दिनोंसे स्त्री और पुरुष दोनोके लायक अनेक प्रकारके हवादार कपड़े बाजारमे बिकने लगे है, पर जो कपड़े सिलवाए जायं उनका सछिद्र और हवादार होना ही काफी नही है, बल्कि वे चुस्त न होकर खूब ढीले-ढीले भी होने चाहिए।

कपड़े अजीब किस्मके और बहुत काट छाटकर सिले हुए नही होने चाहिए, अन्यथा वे व्यर्थमे लोगोका ध्यान आकर्षित करेगे। पर न तो कुरुचिपूर्ण फैशनका गुलाम होनेकी जरूरत है और न भड़कीले कपडोको मान्यता देनेकी ही आवश्यकता।

इस सबंधमे "बढिया कपड़े पहनकर आदमी बड़ा दिखाई देता है", लोगोंकी यह आम धारणा बड़ी निराशाजनक है।

पर हमें यह आशा करनी चाहिए कि ऐसा वक्त शीघ्र आवेगा जब लोग वस्तुतः ऊची चीजोंकी सुंदरताको समझने लगेंगे।

बाजारमे कई तरहकी स्वास्थ्यप्रद कही जानेवाली बनियानें मिलती है, किंतु वे तो और भी निकम्मी होती है। ऊनी कमीज या बनियान तो पहनना ही न चाहिए। ऊनके सीधे संपर्कमे आनेपर त्वचा सुकुमार हो जाती है। फोडे-फुंसी या घावपर कोई ऊनी पट्टी नही बांधता, जो चीज चुटीली या घावभरी त्वचाके लिए बुरी है वह स्वस्थ त्वचाके लिए बहुत अच्छी कैसे हो सकती है?

अनेक सूती बनियाने बड़ी गहरी बुनी होती है। धोनेपर वे सिकुड़कर नमदेकी तरहकी हो जाती हैं। सनके बने कपड़े बहुत भारी तो होते ही हैं, वे अक्सर हवादार भी नही होते। कुछ कपड़े बड़े महीन और पतले होते हैं, अत. वे बदनमें बिलकुल चिपक जाते है। कई कपड़े इतने कमजोर होते है कि बहुत जल्दी फट जाते है। कमीज और बनियानके लिए कपड़ा खरीदते वक्त इन बातोंका पूरा ध्यान रखना चाहिए, क्योकि इनका हमारे स्वास्थ्यसे विशेष संबंध है।

मेरे चिकित्सालयमें लोग जो कमीजे पहनते है वे बहुत हवादार होती हैं और इतनी पतली नही होती कि बदनमें चिपक जायं। इनका रग मलाईका-सा होता है, ये बिलकुल सफेद कपडेकी भी बन सकती है।

सबसे अधिक अत्याचार तो हम अपने पैरोपर करते है। शरीरके किसी भी अंगकी बनिस्बत पैरोंसे अधिक गंदगी निकलती

है, यह उनसे निकलनेवाले पसीनेसे स्पष्ट प्रतीत होता है। इसलिए पैरोंको समय-समयपर खुला रखना चाहिए। पर दुर्भाग्यसे चाल इससे विलकुल उल्टी है। लोग अपने पैरोको चमडेके तंग जूतोंमें कसे रखते है, जिससे उन्हें कष्ट होता है और स्वास्थ्यको नुकसान पहुंचता है।

चमडके जो जूते पहने जायं वे कड़े फिट न हों। कपड़े अर्थात् कैनवसके वने जूते चमड़ेके जूतोंसे अधिक स्वास्थ्यप्रद होते हैं। अव कैनवसके जूते हर जगह विकने लगे हैं। रवड़ और चमडा स्वास्थ्यके लिए खास तौरसे हानिकारक है। इसलिए चमडेके जूतों, दस्तानों एवं जुर्रावके इस्तेमालसे वचना चाहिए। सूतके पतले मोजे ऊनी मोजोसे अच्छे है।

दस्तानोका प्रयोग विलकुल न करना चाहिए। यदि व्यवहार किया ही जाय तो वे सूत या वटे सूतके वने होने चाहिए। जुर्राव भी मजवूत लचीले सूती कपडेके वने होने चाहिए।

सवसे अच्छा तो यही है कि मनुष्य फिरसे नगे पांव चलना आरंभ करे। नगे पाव चलनेको लोग तमाशेकी चीज न समझे; इसके लिए इस संवंधकी अनेक प्रचलित रूढियोको मिटाना होगा। पर ऐसी रुढियोंसे हमे वहुत डरनेकी जरूरत नही है, हमे हिम्मत करके आगे वढना चाहिए और लोगोंके सामने आदर्श उपस्थित करना चाहिए। ऐसा कर हम लोगोंको 'प्रकृतिकी ओर लौटो' के पथपर लगावेंगे। इसके लिए आवश्यकता हो तो हमे कष्ट भी सहना चाहिए। फिर शीघ्र ही हमारे साथ चलनेवाले लोग मिल जायगे।

यदि शहरकी सड़कोंपर नंगे पांव चलनेकी हमारी हिम्मत न हो तो जब हम गांवोंमें जायं या यात्रा आदिपर निकलें, उस वक्त तो हमें नंगे पांव ही चलना चाहिए ।

अपने घरमें या अपने कमरेमें हम चप्पल पहनकर मजेमें रह सकते है और अपने पैरोंको आराम दे सकते है । मुझे तो चप्पले बड़ी सुंदर लगती है । प्राचीन ग्रीक-निवासी और पुराने राजा चित्रोमे चप्पल पहने दिखाए जाते हैं और वे चप्पल पहने बड़े भव्य प्रतीत होते है । आजकी चप्पलो और सेडिलोंमे कई दुर्गुण होते है । कई ऐसी होती है जो पैरोंको दबाती और काटती हैं । मेरे चिकित्सालयमें जो सेडिलें पहनी जाती हैं वे मेरे बताए अनुसार बनी है और इन दुर्गुणोंसे मुक्त है । उनमें पैर बहुत अधिक स्वतत्र रहते हैं और उन्हे आराम मिलता है ।

प्राचीन कालमें पाजामा घृणाकी दृष्टिसे देखा जाता था । जो पाजामा पहनता था लोग उसे जंगली समझते थे, साधारण लोग ढीला-ढाला मोड़दार 'टोगा' (प्राचीन रोमका चोगा-विशेष) पहनते थे ।

आजके लोग पाजामा छोड़कर टोंगा या चोगा पहनना जल्दीसे पसंद न करेंगे । लोगोंकी इस रुचिके विपरीत कोई दूसरी चीज चलानी कठिन प्रतीत होती है । पर इतना तो हो ही सकता है कि लोग कसे हुए जांघिए वगैरहका उपयोग न करें ।

स्त्रियां, लड़कियां और छोटी-छोटी बच्चियां तक जांघिया क्यो पहनती हैं ? यह बात बिलकुल समझमें नही आती ।

मैं यहां इस रिवाजकी निंदा करनेमें समय नहीं लगाऊंगा; पर मेरा यह दृढ विश्वास है कि यदि स्त्रियां जांघिया पहनना बंद कर दे और उनके पेड़के चारों तरफ हवा आ-जा सके तो वे गर्भाशयके रोग, बच्चे जननेमे पीड़ा, मूर्छा आदि अनेक रोग, जिनसे वह प्रायः पीडित रहती हैं, बची रहेंगी।

करिए और देखिए।

हमारी मां-बहनोंके वस्त्रोंमे एक भयंकर राक्षसी घुस आई है—वह राक्षसी है चोली। पुराने जमानेकी निशानीके तौरपर रखे गये यंत्रणा देनेके अस्त्र, जिनसे मनुष्यके अत्याचार करनेकी सीमा प्रदर्शित होती है, मुझे इतने भयानक नही प्रतीत होते जितनी आजकी ये चोलियां। अत्याचारके उन साधनोंका प्रयोग तो बड़े-बड़े अपराधियोंको सजा देनेके लिए किया जाता था और अपराधी इसे जबरन सहता था; पर हमारी मां-बहनें तो खुशी-खुशी अपनी इच्छासे अपने ऊपर भयानक अत्याचार कर रही है और इन चोलियोंसे इस हदतक अपनेको कसती है कि उनके लिए सांसतक लेना कठिन हो जाता है। यह बड़ी विचित्र पहेली है।

स्त्रिया अपने इस कष्टकी इतनी आदी हो गई हैं कि वे इसका अब अनुभव ही नही कर पाती। पर वास्तवमें यंत्रणाके उन प्राचीन अस्त्रोंसे चोलीकी यंत्रणा कम नही होती।

चोलीके विरुद्ध अबतक लोगोंने बहुत कुछ कहा और लिखा है, पर उससे कोई विशेष लाभ नही हुआ। मैं इस विषय-

पर अब व्यर्थके लिए अधिक लिखना उचित नही समझता। जबतक बेहोशीके दौरे, मूर्छा, तरह-तरहकी कमजोरियों और पीड़ाओंको आनंदकी वस्तु समझा जाता है और पीले करुणोत्पादक चेहरेको सौंदर्यका आदर्श, तबतक चोलीका चलन चलता रहेगा। इस संबंधकी अपनी गलतीके लिए जब पुरुष सजा पा लेगे तब ईश्वर उन्हें अवश्य अक्ल देगा।

यदि स्त्रियां ढीले कपड़े पहनना पसंद करें तो वे कई तरहकी ऐसी ढीली अंगिया भी बना सकती है, जिनका शरीरपर दबाव न पड़े और रक्तके संचालनमे बाधा न हो।

कितना अच्छा होता यदि जन्मते ही बच्चोको गरमानेके लिए कपड़ेमे लपेटनेकी प्रथाका अंत हो जाता। इस प्रथाके कारण बच्चोंकी बढान शुरुमे ही रुक जाती है। बच्चोमें बड़ोंकी अपेक्षा जीवनशक्ति और उष्णता अधिक होती है। वे नंगा रहना बड़ोंसे ज्यादा अच्छी तरह बर्दाश्त कर सकते है। उनकी नैसर्गिक वृत्ति उन्हें अपने कपड़े उतार फेंकनेके लिए बार-बार प्रेरित करती है। जब कभी उनके कपड़े उतार दिए जाते है, वे कितने खुश होते है। अतः हमें प्रकृतिकी भावनापर ध्यान देना चाहिए और बच्चोंको समय-समयपर नंगे सुलाने और नंगे रखनेका खयाल रखना चाहिए।

प्यारी माताओ! यदि आप अपने बच्चोंके कपड़ोकी कम चिता करेंगी तो निश्चय जानिए कि वे एक दिन आपको इसके लिए अवश्य धन्यवाद देगे। वे आपके इतने अधिक कृतज्ञ होगे कि जिसकी आप कल्पना भी नही कर सकती।

नंगे पांव रहनेमे बच्चोको बडा आनंद मिलता है। हमें उन्हें यह आनंद मनाने देना चाहिए और उन्हें इस आजकी सभ्यताके रोग, शोक और अकाल मृत्युसे बचनेके पथपर चलनेसे न रोकना चाहिए। यदि हम इस संबंधमे औचित्यसे काम लेगे तो हमे अपने बच्चोंके लिए व्यर्थकी चिता, दुःख और कष्ट उठानेकी आवश्यकता न रहेगी। पर बात क्या है कि माताएं अपने अन-जानेमे अपने सुकोमल प्यारको कठोर निर्दयतामे बदल देती है और बच्चोको उस सच्चे आनंद, खुशीके खजानेका उपभोग नही करने देती जो प्रकृति उनके लिए सहर्ष खुला रखती है और इस प्रकार बच्चोंके जीवनभरके रोग-शोकका कारण होती है। इस गुत्थीको कौन सुलझा सकता है ?

फटे हवादार कपड़े पहने, नंगे पांव गांवकी धूलमे खेलने-वाले प्रसन्न-बदन नटखट लड़कों और खानाबदोशोंके लडकोंपर नजर डालिए। फिर बच्चोंको स्वस्थ रखनेके नियम जानने-की आवश्यकता न रह जायगी। नगे पांव रहनेकी आदत डालना बच्चों और बड़ों, दोनोके लिए लाभदायक है।

हम किसीको प्रणाम करते वक्त, गिरजेमे और कब्रिस्तान-मे एव प्रार्थनाके समयकी गंभीर और महत्त्वपूर्ण अवस्थाओमे अपनी टोपी क्यो उतार देते है ? अब भी एक धीमी-धीमी आवाज हमे बताती है कि बुद्धिके उद्गमस्थान सिरको ढकना प्रकृतिकी इच्छा एवं ईश्वरकी आज्ञाके विरुद्ध है, अतः पाप है। धार्मिक अनुष्ठानोंके समय यह पाप करनेसे हम अनजानमें ही बच जाते है।

प्रकृतिने मनुष्यके सिरको आरंभमे लंबे, घुंघराले, लहर-दार बालोंसे सुसज्जित किया था। स्त्रियोके बाल तो इतने बड़े होने चाहिए कि उनकी सुनहली अलकोसे उनका सुंदर शरीर ढक जाय। पर मनुष्य जब अपने सिरको ढकता है, तब वह प्रकृतिकी इस देनका निरादर करता है। वह जो इसे नष्ट कर देता है, पापपूर्ण भी है और मूर्खतापूर्ण भी। ईसाके सिरको कभी किसी टोपीने नही ढका। उसे तो केवल कांटों-के ताजसे सुसज्जित किया गया था।

जितना ही अच्छी तरह सिरको ढका जाता है, उतना ही अधिक बालोंको नुकसान होता है, अंतमे वे बिल्कुल उड़ जाते है। बाल उड़ जानेपर हम सुदरसे अधिक असुंदर ही प्रतीत होते है। खल्वाट मस्तक साक्षात् कुरूपता है।[1]

अत: सभी टोपिया और हैट हवादार और हल्के होने चाहिए और उनके अंदर अस्तरमे चमड़ा नहीं लगाना चाहिए। भीतरकी तरफ चारो ओर कपडेकी (ऊनी) पट्टी लगाई जा सकती है। पर नंगे सिर रहनेके लिए हमेशा मौका निका-लना चाहिए। जब हम अपने घरमें रहे, या कमरेमे बैठकर

---

[1] जो फिरसे या अच्छे घने बाल उगाना चाहते है, उन्हे प्रकृतिके नियमों-के अनुसार (जल, प्रकाश, वायु, भोजन) जीवन व्यतीत करना चाहिए। और जहा जब बने सिरको नगा रखना चाहिए। सिरपर मिट्टीकी पट्टी रखनेसे सिरकी त्वचासे विजातीय द्रव्य खिच आवेगा और बालके उगनेमे सुविधा होगी। प्राकृतिक चिकित्साद्वारा बालोके बढने और घने होनेमे और भी सुविधा मिलेगी।

काम करें, उस वक्त हमे अपना सिर खुला रखना चाहिए। शहरकी सीमा पार कर लेनेपर हमेशा टोपी उतार लेनी चाहिए।

यदि लोगोंमें एक बार फिरसे नंगे सिर, नंगे पांव और बन सके तो माझियोंकी भांति सीना भी खोलकर रखनेकी आदत डाली जा सकती तो उन्हे अपार लाभ पहुचाया जा सकता। लोगोका यह प्रकृतिकी ओर एक बड़ा कदम होता और जीर्ण रोगोंकी लबी शृखला जगह-जगहसे टूट जाती। पर कभी भी इतने कम कपड़े पहननेकी जरूरत नही है कि आदमी जाड़ेसे ठिठुरता रहे और कष्ट भोगता रहे।

यदि हम हर तरहसे प्राकृतिक जीवन बिताना आरंभ कर देगे तो हमारे शरीरमे स्वयं धीरे-धीरे इतनी उष्णता उत्पन्न हो जायगी कि हम जो अपनेको जाड़ोंमें ऊनी कपड़ेसे लादे रहते है, उनमेसे एकके बाद दूसरा कपडा स्वयं अपनी इच्छासे और खुशी-खुशी उतार फेकेगे। यह नही कि उस वक्त उनके बिना हमारा काम चल जायगा, वरन् उनके फिरसे उपयोग करनेपर उनसे हमे तकलीफ होने लगेगी।

कुछ लोग प्राकृतिक जीवनसे यह अर्थ लगाते है कि ऐसा जीवन व्यतीत करनेवालेको टेबुल, कुर्सी, मेज, कपड़े आदि वस्तुओसे, जो उसे अभीतक आराम और आनंद प्रदान करती रही है, वचित रहना पडेगा। पर यह डर निराधार है। आरंभमे जो इन वस्तुओसे जितना चाहे आनंद उठावे। पर प्रकृति-पथपर अग्रसर होनेपर सभ्यताके ये अधिकांश चिह्न धीरे-धीरे न केवल व्यर्थ प्रतीत होगे, वरन् वे भारवत् एवं कष्ट-

कर हो जायंगे। उनसे तब खुशी-खुशी छुट्टी ली जा सकेगी और इस प्रकार प्राप्त सादगी और स्वतत्रता, अवश्य ही अधिक आनंद और सुखका सृजन करेगी।

इसलिए चलो प्रकृतिकी ओर लौटे। इस पथपर चलकर हम आनद और प्रसन्नता प्राप्त करेगे, शातिप्रदायिनी सादगीके अधिकारी होगे और असतोपकी मूर्ति आवश्यकतासे मुक्ति मिलेगी।

आज हम इतने सुकुमार हो गये है कि कपड़े विना हमारा काम नही चलता। दूसरे, कपड़ोकी इसलिए भी जरूरत है कि समाजमे विना कपड़ेके रहना लोगोमे अपने प्रति क्रोध और घृणा उत्पन्न करता है। कपड़ोसे बस इतना-सा काम सधता है, अन्यथा वे विलकुल व्यर्थ है।

कपडोद्वारा न तो चमकनेकी और न लोगोको मोहित करनेकी इच्छा करनी चाहिए और न उनसे अपनी नकली कीमत बढानेकी ही कोशिश करनी चाहिए। यदि ऐसा हो तो फिर हम अपने कपडोके लिए पहलेकी तरह चिंतित न रहेगे, उनका हमारे लिए विशेप मूल्य न रह जायगा न हमे उनके लिए उतनी चिता होगी और न वे हमारा इतना समय और ध्यान आकर्षित करेगे। निस्संदेह यह बड़े संतोषकी बात होगी। तब हमे अपने शरीरपर अगूठी, हार, वाज़ूबद, कठी-से कृत्रिम अलकार लटकाने और चिपकानेकी जरूरत न रह जायगी।

संसारको मुक्ति दिलानेवाले ईसाने अपने अनुयायियोसे अनुरोध किया था कि वे दो कोट न पहने; और उन्होंने कहा

था—"जिसके पास दो कोट है उनमेंसे एक वह उसे दे दे जिसके पास एक भी नही है।"

यदि ईसा लोगोको प्रकृति-पथपर लौटाये बगैर उन्हें जिंदगीमे खुशी दिलाने और ईश्वरके निकट भला बनानेकी कोशिश करते तो वे भी अपने पहले और बादमे हुए क्षीण-ख्याति सुधारकोंकी भांति असफल रहते। उस दशामे प्रकृतिकी अवहेलना करनेके कारण विस्मृत हुए अनेक दार्शनिकों एवं उपदेशकोंकी भाति ईसा और उनके उपदेश भी विस्मृतिके गर्तमे कबके विलीन हो गये होते।

ईसाके समयमे एसेस नामका एक छोटा-सा संप्रदाय था। इस संप्रदायका वर्णन रोमके इतिहासकार जोसेफस और फिलोने किया है। ये एसेस बिलकुल प्राकृतिक जीवन व्यतीत करते थे। अपने जीवनके कुछ भागमें तो ये संन्यासीकी तरह रहते थे। उस वक्त ये रेगिस्तानमे या पहाड़पर रहते थे। रोग और आवश्यकतासे विहीन इस तरहके जीवनद्वारा वे इस पृथ्वीपर सुख और आनंद प्राप्त करते थे और अपनेको स्वर्गके लिए तैयार करते थे।

एसेसके उपदेश, जो हमे इतिहासकारोंद्वारा प्राप्त है और ईसाके उपदेश जो इंजीलमे लिखे मिलते है, दोनोमे इतना अधिक साम्य है कि खुले दिल और दिमागसे सोचनेवाला इस परिणामपर पहुंचता है कि ईसा निश्चय ही एसेन थे। देवविद्याके विशारदोका भी मत इसके विपरीत नही है।

इस विषयपर मै फिर लिखूंगा। हा, इतिहासकारोंका

कहना है कि एसेंस हर प्रकारके आडंबरसे दूर रहते थे और केवल एक सफेद-सा लबादा अपने शरीरपर धारण करते थे जो अधोवस्त्र और ऊर्ध्ववस्त्र दोनोका काम देता था और इससे शरीर ढकनेका काम पूरा-पूरा चल जाता था। एसेस जातिकी अपनेको सुंदर दिखानेकी इच्छा नही थी और न वे कपड़ोद्वारा भव्य बनना और लोगोंपर रोब जमाना चाहते थे। जब उनका चोगा फट-फटकर शरीरको किसी तरह ढकने लायक नही रह जाता था तभी वे उसे बदलते थे। इसके पहले वे नये चोगेका व्यवहार नही करते थे।

प्राकृतिक जीवनसंबंधी ईसाके उपदेश धीरे-धीरे करीब-करीब विस्मृत हो गये या लोगोने उनपर विशेष ध्यान नही दिया अथवा उनका लोग अब केवल लाक्षणिक अर्थ लगाते है।

"जिसके पास दो कोट है वह एक कोट उसे दे दे जिसके पास एक भी नही है" अपनी इस आज्ञाका ईसा चाहते थे कि लोग लाक्षणिक नही शब्दशः अर्थ करे और वही अर्थ करें जो एसेस करते थे। अतः प्र येक सच्चे ईसाई और हर ईमानदार आदमी-को चाहिए कि वह अपने लिए केवल एक लिबास रखकर बाकी सारे कपड़े गरीबोको दे दे।

आजके वातावरणमे लोगोंके बंधे विचारोके अंतर्गत रहकर अधिक-से-अधिक प्रकृतिके निकट रहनेके लिए एवं ईसाकी आज्ञानुसार चलनेके लिए, स्वास्थ्यको कम-से-कम हानि पहुंचाते हुए किसे कितने कपड़ेकी जरूरत होगी, वह कपड़ेके मामलेमे कितनी सादगी अपना सकता है एवं उसकी आवश्यकतासे किस

हदतक स्वतंत्र हो सकता है, इसका निर्णय प्रत्येकको अपने लिए स्वयं करना चाहिए।

कम-से-कम नये कपड़े बनवाते समय तो हमें सादगी और स्वास्थ्यका ध्यान रखना शुरू कर ही देना चाहिए। स्त्रियोंको इधर खास तौरसे ध्यान रखनेकी जरूरत है। सादे कपड़े पहनना शुरू कीजिए, वे आपको आजके मूर्खतापूर्ण फैशनेबुल कपड़ोंसे अधिक सुंदर जंचने लगेंगे। जो स्त्री फैशनकी गुलाम न बनकर बल्कि फैशनकी अवहेलना कर सीधे-सादे कपड़े पहनती है, वह कभी नुकसान नहीं उठावेगी। उसे इसके लिए हर जगह सहानुभूति और सम्मान मिलेगा।

मूर्खतापूर्ण फैशनकी प्रशंसा करना अब हमें बंद कर देना चाहिए। जो लोग बहुमूल्य वस्त्र पहनकर अपनेको आकर्षक बनाना चाहते हैं, उन्हें ईसाके इन शब्दोंपर ध्यान देना चाहिए: "खेतमें खिली हुई लिलीकी ओर देखो, कितनी सुंदर है। और मैं तुम्हें बताता हूं कि यद्यपि सोलोमन इसकी तरह सजाए नहीं गए थे, पर वे इससे कम गौरवशाली न थे।" खेतोंमें खिले फूल, एक पेड़से दूसरे पेड़पर प्रमुदित-मन दौड़ती गिलहरी, पत्थरों और झाड़ियोंपरसे शानसे छलांग मारता हुआ हिरन, सुंदर पंखोंवाली गाती हुई चिड़िया, ये सभी सुंदर हैं।

अपने सुंदर केशोंसे सुसज्जित, उत्कृष्ट रूपसे सुडौल अंगोंवाली, एक ढीला-सा वस्त्र पहने ग्रीसकी स्त्री भी सुंदर होती थी। सैमन स्त्रियां अपने सौंदर्यके लिए बहुत प्रसिद्ध हैं। प्रकृतिकी ये बालिकाएं बहुत थोड़े कपड़े पहनती हैं और अपने

द्वीपमे निष्कपट भावसे विचरण करती रहती है। इनका भोजन होता है करीब-करीब केवल फल, जिसे प्रकृति अब भी बहुतायतसे उपजाती है।

जवानीमे ही वृद्धत्वको प्राप्त हुए, मक्खन-सी चिकनी चांद लिए, नुकीले टोवाले जूतो, एक आंखके चश्मे तथा अन्य सिगार-सामानसे बने-ठने जवान कुरूपताकी प्रतिमूर्ति है, उन्हे देखकर घृणा होती है।

खेतमे गड़े डरावेकी तरह प्रेत-सी लगती हुई पीली-पीली लड़कियां और स्त्रियां जो गोटे पट्टेसे लैस चमकीले भड़कदार कपड़े पहने, सिरके बालोंको आड़ा तिरछा किये, रुनझुन-रुनझुन बजते गहने पहनकर शहरकी सड़कोंपर घूमती नजर आती हैं उन्हें कुरूप न कहा जाय तो क्या कहा जाय? उनकी ओर लोग आकर्षित नही होते, वरन् उन्हे देखकर प्रत्येक सौदर्यके पारखीके मनमें घृणा उत्पन्न होती है।

ईसाने अपनी आज्ञामे छोटी-छोटी बातपर भी ध्यान रखा है। उन्होने अपने शिष्योंको छड़ी लेकर चलनेसे भी मना किया है—"तुम लोग अपने साथ दो कोट न रखो, न जूते ही पहनो और न छड़ी लेकर ही चलो।" इसलिए बिना छड़ीके टहलना अधिक प्राकृतिक एवं स्वास्थ्यप्रद है। अनुभवकी बात है कि बिना छड़ी लिए चलना अधिक सुखप्रद और स्वास्थ्यप्रद है।

कपड़ोंकी बात तो अलग रही, घरको सजानेमे भी हम जिस तड़क-भड़कसे काम लेते है वह अधिकतर अप्राकृतिक और हानिप्रद है। इस दशामें भी हम अपनी उस प्राकृतिक दशासे बहुत

दूर जा पडे है जब मनुष्य ईश्वरके बनाए प्रासादमें, तारोंसे ग्रथित आकाशके नीचे, पेडोके सायेदार गुबजके तले रहता था और खुली धरतीपर बठता और लेटता था। उस समय प्रकृति स्वयं अपने हाथो उसके घरको फूल-पौदो और वृक्षोंसे सजाती थी।

पहले हमे तकिया और झालर लगे मेज-कुर्सीसे बचना चाहिए और उनका त्याग करना चाहिए। मुलायम गद्दी-तकिया लगे सोफेपर बैठने या लेटनेपर शरीरके कुछ अंग बहुत अधिक गरम हो जाते है। फल यह होता है कि इन अंगोमें रक्त इकट्ठा हो जाता है जिससे शरीरके रक्त-संचालनमें बाधा पड़ती है, थकान और सुस्ती आती है, कापुरुषता और हर तरहकी कमजोरीका आगमन होता है। मै समझ नही पाता कि लोग गद्दे और झालरदार टेबुल कुर्सी, जिनमे गर्दा बुरी तरह फँसा रहता है, से भरे कमरेमें आरामका अनुभव कैसे करते है? इसके बजाय वेतकी बनी और बेतसे बुनी कुर्सी आदिका उपयोग हो सकता है। सीधी-सादी लकडीसे बनी मेज, कुर्सियां और बेच जैसी कि पहले लोग काममे लाते थे, आजके तकिये और झालरदार सोफे और कुर्सीसे अच्छे समझे जाने चाहिए।

खिडकियोको सजानेमें भी कम बेवकूफीसे काम नही लिया जाता। पहले लोग खिड़कीपर पर्दा नही लगाते थे। वायु और प्रकाश अबाध रूपसे कमरेमे आता रहता था और यह बहुत अच्छी बात थी। आज सुसंस्कृत! कुटुबोंमे यदि घरमे कोई ऐसी खिडकी हो जिससे रोशनी घरमे घुस सकती हो, तो वह बड़े शर्मकी बात समझी जाती है और इसलिए वे

उसपर पर्दा डाल देना आवश्यक समझते है। अतः वे केवल ऐसे पर्दे खिड़कीपर नही लगाते जिससे सड़कपर चलनेवालोको घरके अंदरकी चीजे न दिखाई दे, वरन् वे उसपर इतने मोटे कपड़े लगाते है कि कमरेमें अंधेरा हो जाता है। जिससे कमरे अस्वास्थ्यकर तो हो ही जाते है, उनमे आराम भी नही मिलता। यदि खिड़कियोंको सजाना ही हो तो क्यों नही किसी सुदर, पतले पारदर्शी कपड़ेस उन्हें सजाया जाय जिससे सूर्यकी किरणों और प्रकाशको कमरेमें पहुंचनेमे कम-से-कम रुकावट हो।

यहां मैं थोड़ा-सा बिछावनके बारेमें भी कहना चहता हूं। मनुष्यकी जिदगीका आधा भाग बिछावनमें ही कटता है। बिछावनमे वह अपनी थकान दूर करना और अपना स्वास्थ्य बढाना चाहता है। इसलिए बिछावनपर बहुत ध्यान देनेकी जरूरत है ताकि उन्हे प्रकृतिके अनुकूल बनाया जा सके। पहली जरूरत बिछावनके बारेमें यह है कि उसमे हवा आसानीसे आ-जा सके। चादरके अंदरकी हवा, शरीरसे निकले भाप और पसीनेके संसर्ग-में आकर गंदी हो जाती है। उसकी गंदगी दूर करनेके लिए चादरके अंदरकी हवासे बाहरकी हवाको मिलनेका पूरा मौका मिलना चाहिए। इसलिए रूई या परसे भरे रजाई-गद्देका पूर्ण बहिष्कार करना चाहिए। ओढ़नेके लिए केवल ऊनी कंबल सर्वश्रेष्ठ है। शरीरसे लगी रहनेवाली चादर जरा पतली रहनी चाहिए ताकि वह शरीरसे अच्छी तरह चिपक सके। कंबलके ऊपर जो चादर डाली जाय वह भी हल्की, सूक्ष्म रंध्रयुक्त होनी चाहिए। ऐसे ओढनेके नीचे शरीरमें उपयुक्त और आवश्यक गर्मी पैदा होती है।

विछांनेके लिए खर-पयालकी वनी चटाई, जैसी कि पहले चला करती थी, वहुत अच्छी रहेगी। पयाल या खरमें हवा अच्छी तरह आ-जा सकती है और वह शरीरको बिना अप्राकृतिक रूपसे गरम किये, काफी गरम भी रहती है। पर आज लोग अपने शयनकक्षकी फर्शपर विछे गलीचेपर खर गिरा हुआ देखना कैसे पसद करेगे। इसलिए चटाईका चलन चलेगा, ऐसा प्रतीत नही होता।

पर गद्दा समुद्री घास, जई भूसे आदिसे भरकर भी बन सकता है। कंवलसे भी गद्देका काम लिया जा सकता है। घोड़ेके वाल और ऊनसे भी गद्दा बन सकता है। ऊनके साथ यदि घोड़ेके वाल मिलाकर गद्दा बनाया जायगा तो ऊन दब-दवकर इतना नही चिपटा हो जायगा कि हवा उसके आर-पार न जा सके।

ऊंचे-ऊंचे तकिए लगाकर सोते वक्त सिरको वहुत न उठाइए। तकिए हों ही तो वहुत पतले। ओढ़नेके नीचे बिलकुल नंगे (बिना कमीज या जांघिया पहने) सोनेपर जितना जोर दिया जाय, कम है। विना कपड़े पहने सोनेपर कपड़े पहनकर सोनेसे शरीर ज्यादा गरम रहता है। हवादार गद्दे वड़ी आसानीसे वन सकते है। धीरे-धीरे लोगोंको पुराने चालके गद्दे छोड़कर स्वास्थ्यकर गद्दे वनवाने चाहिए।

धरतीमाता

मछली जलका जीव है, वह जलमे ही रह और जी सकती है। पक्षीका निर्दिष्ट स्थान वायु है। वह आकाशका राजा है। जब वह आराम करता है तब वह पेड़पर बैठता है, इसके लिए जमीनपर तो शायद ही कभी उतरता है। (जब मैं यह कह रहा हूं तब मेरा लक्ष्य मुर्गी-से परदार जानवरकी ओर नहीं है) लेकिन आदमी धरतीपर चलता है।

जबतक आदमीने जूते-कपड़े नही पहने थे तबतक वह बैठा होता था या चलता, दोनो ही हालतोंमे पृथ्वीके सीधे संपर्कमे रहता था।

पृथ्वी और मनुष्यके संबधमे उस वक्त किसी प्रकार भी अड़चन नही पड़ती थी।

प्रकृति यह चाहती है कि उसका और मनुष्यका यह निकट संबंध अब भी बना रहे। प्रकृतिकी इस इच्छाको एक पवित्र एवं अलंघ्य नियमकी तरह समझना चाहिए जिसे तोडनेपर हमेशा दंड मिलता है।

यह जानकारी मुझे अधिक-से-अधिक प्रकृतिकी ओर लौटने तथा अपने और अपने साथियोके लाभके लिए उसके नियमोंको गहराईसे समझनेकी अटूट एवं अथक कोशिशके सिलसिलेमें हुई और मुझे आशा है कि लोगोंके लिए यह जानकारी कामकी होगी। मुझे इसका अनुभव साफ-साफ हुआ है कि कमरे अथवा तख्तोपर नंगे पैर टहलना उतना पुरअसर, शक्ति एवं

उत्साहवर्द्धक नही है जितना खुली धरतीपर टहलना; चाहे उसपरकी धूल और घास बिल्कुल सूखी ही क्यो न हो। वनवासियो एवं वनमे काम करनेवाले मजदूरोसे बात होनेपर उन्होने मुझे विश्वासके साथ कहा है कि बेच अथवा और किसी चीजपर सोनेसे पृथ्वीपर सोना उनके अधिक अनुकूल पड़ता है एव इससे उन्हे अधिक शक्ति भी मिलती है।

पशु और मनुष्य दोनो ही पौधोंकी तरह पृथ्वीके प्राणी है। उनके विकासमे उनका पृथ्वीसे सबध छूट गया और यह स्नायु-वृक्ष चलने-फिरने लगे। पर पौधोकी तरह पशुओं और मनुष्य-पर प्रकृतिके नियम समान रूपसे लागू है। उन्हे शारीरिक शक्ति एव प्राणशक्ति अब भी पृथ्वीसे ही मिलती है।

इस जानकारीके बाद मैंने नगे पाव पृथ्वीपर चलनेको 'अधिक महत्त्व दिया और मुझे नंगे पाव चलनेका चिकित्सक गुण ज्यादा-से-ज्यादा समझमे आने लगा। फिर मै यह सोचने लगा कि मनुष्य धरतीसे और अधिक लाभ किस प्रकार ले सकता है। मैंने पहला काम यह किया कि रोगियोका चारपाईपर सोना बद करा दिया और उन्हें खुले आसमानके नीचे अथवा वायु एवं प्रकाशपूर्ण झोपडोमे जमीनपर पुवाल या गद्दा बिछा-कर सुलाने लगा। इस प्रकारके सोनेके समय वे धरतीके कुछ अधिक नजदीक आए। इससे प्रत्यक्ष लाभ मालूम हुआ, नीद ज्यादा ताजगी और आनद देनेवाली हुई।

पर जल्दी ही कुछ रोगी बिल्कुल नगे ही मुलायम घासपर पुवाल ओढ़कर सोने लगे। वे सभी सोनेमें पृथ्वीसे मिले लाभ-

का वर्णन उत्साहपूर्ण शब्दोमे करते। वे लोग जो कुछ कहते, उससे ज्ञात होता कि यदि रोगी पृथ्वीपर सोना शुरू कर दे तो उन्हे सभी रोग, खास तौरसे आजके प्रचलित कोढ़ियो स्नायु-संबंधी रोगोमेसे किसीका कोई डर न रहे। रातको सोतेमे मनुष्यपर जो पृथ्वीकी शक्तियोका प्रभाव पड़ता है वह निस्सदेह आश्चर्यकारी है। जिसने इसका कभी अनुभव नही किया है उसकी समझमे यह बात आनी कठिन है कि मनुष्य-शरीरपर इसका सोतेमे कितना तरोताजा करनेवाला और शक्ति एवं जीवनदायक असर होता है।

रोगीकी पाचन-क्रियाको सुधारना एव उसे शक्तिशाली बनाना प्रत्येक चिकित्सा-पद्धतिका पहला काम है। प्राकृतिक नहान एवं वायु और प्रकाश-स्नानसे शौच समयपर और साफ होने लगता है पर पाचन-क्रियाको ठीक करनेके लिए जमीन-पर सोने-सा दूसरा उपाय नही है।

धरतीपर सोनेसे शरीरकी सुस्ती जाती, चेतना जगती और आंते सड़ांध एवं पुराने कड़े मलको अच्छी तरह निकाल पाती है। फलत. शरीर नवजीवन और नई शक्तिका अनुभव करता है।

नगे पांव चलनेमे अथवा प्रकाश और वायु-स्नान लेते वक्त जमीनपर नंगे लेटनेमे पृथ्वीकी चिकित्सक शक्तिका वह अनुभव नही होता जो रातको पृथ्वीपर सोनेसे होता है। पता नही यह विशेष लभ सोते वक्त शरीरके बिल्कुल निश्चेष्ट रहनेसे मिलता है अथवा पृथ्वीकी शक्तिप्रदायिनी क्रिया रातको खास तौरसे तेज हो जाती है।

प्राय: सभी पशु, विशेषतया खरहे और हिरन जब अपने लिए सोनेका स्थान बनाते हैं, पत्ती एवं लकड़ीके टुकड़े वगैरह जमीनपरसे हटा देते हैं। वे ऐसा निश्चय ही इसलिए करते हैं ताकि वे पृथ्वीके सीधे संपर्कमें रह सकें और पृथ्वीकी शक्ति उनपर प्रभाव डाल सके। कोई भी पशु घास, पत्ती, लकड़ी वगैरह इकट्ठी कर उनपर नहीं सोता, इन सब चीजोंको तो पक्षी ही अंडा सेनेके सुभीतेके लिए गरम रहनेवाला घोंसला बनानेके लिए इकट्ठा करता है। एक खास तौरसे ध्यान देने योग्य बात यह है कि जंगलके पशु जहां सोते या आराम करते हैं उस जगहसे लकड़ी डंठल पत्ती वगैरह और यहांतक कि यदि हो तो बरफ भी हटाकर साफ कर लेते हैं। कभी-कभी वे जमीनपर लोट भी लगाते हैं। जर्मनीके शिकारी उनकी इस आदतको 'गदलोट' कहते हैं।

लोमड़ी और बिज्जू अपनी मांदमें बहुत-सी चीजें घसीट ले जाते हैं पर अपने सोनेकी जगह बिल्कुल साफ रखते हैं। वे हमेशा साफ-सुथरी जमीनपर सोते हैं। जंगली सूअर मिले तो पेड़की पत्तियोंके ढेरमें घुसकर या झाड़ियोंमें छिपकर सोना पसंद करते हैं पर जहां सोते हैं उसपर कोई चीज नहीं होती। कभी-कभी तो अपने शरीरका कुछ भाग वे जमीनमें गड़ा तक देते हैं।

एक बार मुझे एक बीमार पालतू बाजकी गतिविधिका अध्ययन करनेका मौका मिला था। उसे उसके गंदे पिंजड़ेके बाहर निकाल दिया गया था और मेरे कहनेपर लोगोंने उसे बिल्कुल अकेला छोड़ दिया था कि वह जहां चाहे जा सके।

वह तरकारीके खेतमे गया और करमकल्लेकी क्यारीमें जहां जमीन मुलायम थी कुछ जमीन खुरची और अपनेको उसमे थोड़ा धंसाकर चुपचाप लेटा रहा। कुछ दिनो बाद वह बागसे लौट आया और हम लोगोने देखा कि वह बिल्कुल स्वस्थ हो गया है। जबतक वह बीमार रहा उसने कुछ भी नही खाया। इस प्रकार पशु गोकि अपने साधारण जीवनमे चलते दौडते वक्त पृथ्वीके संपर्कमे रहता है फिर भी आराम करते वक्त और बीमारीमे पृथ्वीके अधिक नजदीक और सीधे सपर्कमे आनेकी कोशिश करता है।

जबतक बिछावन रहेंगे उनके सुधारकी बात चलती रहेगी और जबतक मनुष्य प्रकृतिद्वारा निर्मित बिछावनपर नही सोवेगा बिछावनकी अपूर्णता भी मनुष्यके सामने आती रहेगी। प्रकृतिने अपने इस बिछावनमे वह जादूभरी शक्ति भर दी है कि उसके सपर्कमे आनेपर मनुष्यको अपने जीवनमे अधिकाधिक आनंदका अनुभव होता है।

पहले मनुष्य प्रकृतिके नेतृत्वमे, पापरहित, पवित्रतम एवं आनदसे परिपूर्ग जीवन व्यतीत करता था। वह अबाध रूपसे उस स्वर्गीय सुखका उपभोग करता रहता था जिसकी कल्पना प्रत्येक सुसभ्य जातिकी स्वर्गसंबधी कल्पनाके अतर्गत की गई है। पर स्वर्गके सर्पकी तरह तर्कने पृथ्वीपर हमला किया और लोगोंको बहकाया कि वे खुदाके हुक्मों--प्रकृतिके नियमों--जिनकी अनुभूति हमे ज्ञानेद्रियों-स्पर्शेंद्रियो आदि नैसर्गिक वृत्ति एवं विवेकद्वारा होती है--की अवहेलना कर अपनी

इच्छानुसार मौज और खुशीमे रत रहेगे तभी उनके शरीर, मन और आत्मा, तीनोको पूर्ण आनंद मिलेगा।

जैसा कि मैने 'प्रकृतिके बोल' पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था कि तर्कके दुरुपयोग एवं अपमानके फलस्वरूप सर्पके बच्चे विज्ञानका जन्म हुआ। उसने औषधविज्ञानको ही नही अध्यापनविद्या धर्म-शास्त्र, दर्शन एवं न्याय-शास्त्रको भी पैदा किया। मनुष्यको सुखी एवं समृद्ध बनानेवाले प्रकृतिके नियमोके पालनकी राय विज्ञान कभी नही देता। औषध-विज्ञान तो यह घोषणा करता है कि यदि मनुष्य प्रकृतिके अनुकूल जीवन व्यतीत करेगा तो उसका अहित हुए बिना न रहेगा। वह कहता है कि प्राकृतिक भोजन फल आदिसे मनुष्यको पूरी शक्ति तो मिलती ही नही उसका स्वास्थ्य नष्ट होता है और मनुष्यका प्रकाश और वायुके सपर्कमे अपनेको लाना खतरेसे खाली नही है। (इससे सर्दी वगैरह हो जाती है)। उसकी यह भी अवमानना है कि प्राकृतिक भोजन, जीवन व्यतीत कर हम जिंदगीके मजे कम कर देगे। इसके बाद विज्ञान, शरीर-विज्ञान एवं और भी प्रयोगशालामे किए गये अनेक प्रकारके अन्वेषणोके आधारपर अप्राकृतिक भोजनका एक नुस्खा तैयार करता है, जिसके लिए वह कहता है कि इसे खाते ही शक्ति मिलती है और वह स्वादिष्ट लगता है। इस प्रकार विज्ञान नैसर्गिक वृत्ति, स्वाद (सही मानोमे) एव सदसद्विवेकका कोई खयाल न करनेवाले स्वास्थ्य-नियमोका निर्माण करता है। विज्ञानकी दूसरी शाखाएं अध्यापन, धर्म, दर्शन,

न्यायशास्त्र भी अब ऐसे नियम बनावेगे जिनमे मनुष्यको प्रकृतिके संपर्कमे आनेसे फूंक-फूंककर बचाया जायगा और कहा जायगा कि इनपर चलकर मनुष्य अच्छा और भला बनेगा तथा उसे सुख और संतोष प्राप्त होगा।

इस प्रकार विज्ञानके फेरमें पड़कर मनुष्यने जूते पहने और पृथ्वीकी सुखद शय्याको छोड़कर पलंगपर लेटा। उसने कल्पना की कि इनके द्वारा उसे वह हिफाजत, आराम और आनंद मिल रहा है जो प्रकृति उसे नही देती थी। पर तर्कके इस झूठे लुभावने और विज्ञानकी चमकीली सिखावनके फेरमें पड़कर मनुष्यको न आराम मिला न आनंद, न स्वास्थ्य, न खुशी, न साधुता, न सौजन्य; पर उसकी आशाके विपरीत मिले उसे रोग और पीड़ा, ऊब और घबराहट, पाप और अपराध, दु.ख और निराशा। प्रकृतिके विरुद्ध चलनेवालेसे प्रकृति इसी तरहका बदला लेती है। कविवर गेटेने ठीक ही कहा है:

"इस प्रकारके जीवनमे मनुष्यको शायद कुछ अधिक संतोष मिल जाय, पर जब उसने स्वर्गीय प्रकाशसे पथ-प्रदर्शन लेना छोड़कर तर्कका पल्ला पकड़ा तो उसने अपनेको अधिक शक्तिशाली अनुभव किया—पशुसे भी अधिक शक्तिशाली और फिर उसमें पशु-जितना भी विवेक नही रहा।"

तर्क एक उच्च प्रतिभा है और मनुष्यके लिए ईश्वरकी विशेष देन है। पर मनुष्य इसका सदुपयोग नही कर सका और यह शक्ति उसके लिए आसुरी फंदा और दुःखोंका कारण बन गई।

आत्मा और शरीरका सच्चा और पूर्ण स्वास्थ्य जिसमें

शारीरिक शक्ति, मानसिक स्वच्छता, आत्मानंद सम्मिलित हैं बिना एक बार फिर अपनेको पृथ्वीके सीधे संपर्कमे—चलते-फिरते वक्त और खास तौरसे आराम करते वक्त—लाए बगैर मनुष्यको और किसी तरह मिलनेको नही है।

यह उम्मीद तो नही की जा सकती कि मनुष्य एकदम कपड़ा पहनना ही छोड़ देगा और दिनभर नगा घूमेगा। अभी इस रास्तेकी अनेक कठिनाइयोको उसे सुलझाना है, और न यही उम्मीद की जा सकती है कि वह एकाएक सर्वथा प्राकृतिक भोजनको अपना लेगा और केवल फल-मेवेका ही आहार ग्रहण करेगा। पर इतना तो वह कर ही सकता है कि हरदम नंगे पांव रहे। इस चलनसे जाड़ेमे भी कोई तकलीफ नही होगी। वरन् लोग खुशी और आनदका अनुभव करगे। नंगे पांव चलना तपस्या नहीं है, इससे जीवनका आनंद घटता नही बढ़ता है। मनुष्य जब नंगे पांव चलना शुरू करता है, धरतीको अपना बेटा वापस मिल जाता है। मनुष्यपर नूतन स्वास्थ्य और सच्ची खुशीकी वर्षा होने लगती है। आजके रोगी, दुखी पापी, अन्यायी मनुष्यका पुर्नानिर्माण भी होगा; वह जो है उससे दूसरा तभी बनेगा जब वह नगे पांव चलना रोज कुछ मिनट या चंद घंटोके लिए ही नही पर हमेशाके लिए सीख लेगा।

वृक्षमे जो काम जड़े करती है हमारे शरीरमें वही काम कुछ अंशोंमे पैर करते है। उनके द्वारा पृथ्वी हममें शक्ति और प्राणोंका सचार करती है।

ईसा नंगे पाव चलनेको बहुत महत्त्व देते थे। वे स्वयं नंगे

पांव चलते थे और उन्होंने अपने शिष्योंको आज्ञा दी थी :

"तू जूतोका बोझ मत घसीट !"

वे भिक्षु जो नगे पांव चला करते थे, ठीक ही समझते थे कि ईसाका प्रतिपादित आनंद और मुक्ति तबतक मनुष्यको नही मिलेगी जबतक वह जीवनमे उस प्राकृतिक पद्धतिको नही अपनाएगा जिसे ईश्वरने अपने भक्तोके जीवनद्वारा सारे ईसाई-ससारके सामने उपस्थित की है और जिनकी आज सर्वथा अवहेलना की जाती है ।

प्रत्येक आरोग्य-मदिरका यह पहला नियम होना चाहिए कि उसके अधिवासी हमेशा नंगे पैर रहे, चप्पल भी न पहने ।

तब कुछ दिन नगे रहनेपर प्रकृतिके दिये हमारे पैरोमे जब खून दौड़ने लगेगा और इससे जब उनकी आकृति स्वाभाविक हो जायगी, लोग घिसे, भौडे, पेबंद लगे जूतोसे खुले पैरोंको अधिक सुंदर और सौदर्यसंवर्धक मानने लगेंगे और तब नंगे पाव चलनेका, जिसका प्रतिपादन ईसाने अपने उपदेश और उदाहरणद्वारा किया है, न मजाक उड़ाया जायगा, न इसे ओछी दृष्टिसे देखा जायगा। घृणास्पद जूतोको, जो अक्सर पैरोको दबाते-काटते हैं और जिसका कष्ट मनुष्यके मुखपर प्रतिबिबित होता रहता है, प्रकृतिकी कलाकृति मनुष्यके पैरोसे सुंदर समझना प्रकृतिका अपमान करना है ।

यदि धरतीपर सोनेका महत्त्व एक बार पूरी तरह समझ लिया जाय और इसका चलन चला दिया जाय तो मनुष्य-जाति रोगी शरीर और विकृत मनके भंवर-जालसे निकल जाय ।

इस स्थितिमें भूमि बिछानेमें प्राकृतिक स्नान, वायु और प्रकाश-स्नान, प्राकृतिक भोजन आदि भी बड़े सहायक होंगे।

नये-पुराने सभी प्रकारके रोगोंमें धरतीपर सोनेका चमत्कारिक गुण सिद्ध देखनेको मिलता है।

हज़रत ईसा गंदी हवा, विलास, चातुरता और नैतिक पतनके अभिशापित शहरोंसे हमेशा दूर रहते थे। वे अधिकतर रेगिस्तानमें या पहाड़ोंपर रहते थे। वे अपने उपदेश अधिकतर इन्हीं स्थानोंके वासियोंको दिया करते थे और यदि किसी दिन व यरूशलमके मंदिरमें उपदेश करते थे तो अपनी रात वे आलिवस पहाड़पर ही बिताते थे जहां निश्चय ही वे खुली धरतीपर सोते थे। प्रकृतिकी गोदमें विश्राम करते वक्त उनके शरीरपर ओढ़नेके नामपर केवल एक ढीला-ढाला लबादा ही रहता था।

धरतीपर सोना प्रारंभ करनेवालोंको सूखी ऊँची बढ़िया जगह चुननी चाहिए, यदि ऐसी जगह न मिले तो जमीनपर चटाई बिछाकर सोना चाहिए। इसमें तो कोई संदेह नहीं कि चटाई पृथ्वीकी शक्तिको बहुत कुछ रोक लेगी। पुआल, ऊन या रूईसे भरे गद्दे या कंबल-दरीपर सोनेकी तो बात ही नहीं सोचनी चाहिए। इनका उपयोग पृथ्वीसे संबंध होनेमें बहुत बाधा पहुंचाता है। तकियेकी भी जरूरत नहीं है। ठंडी ताजगी प्रदान करनेवाली धरतीपर सिर रखकर सोना विशेष लाभदायक है।

यदि धरतीपर सोनेकी पहली रात कुछ तकलीफदेह मालूम हो तो निराश होनेकी जरूरत नहीं है।

मैंने बराबर यह देखा है कि दो-चार दिनके बाद ही रोगीको उसकी धरतीकी शय्या अति सुखद प्रतीत होने लगती है। तब वह पृथ्वीपर कोई चीज भी बिछाकर सोना कभी स्वीकार नहीं करता। बरसातकी रातमे ओढ़नेकी चीजोको भीगनेसे बचानेके लिए मै चाहता था कि रोगी अपनी झोपड़ियोमें सोवें पर वे अपनी पृथ्वी-शय्या छोडनेके लिए बड़ी कठिनाईसे तैयार होते थे। कुछ ही दिन धरतीपर सो लेनेके बाद उसकी कठोरताका भी कोई अनुभव नही होता। इससे भी डरनेकी जरूरत नहीं है कि जाड़ेकी रातोंमे जब ओढ़कर धरतीपर नंगे बदन सोवेगे तो धरती बड़ी ठंडी लगेगी। बहुतसे लोगोंको बिछावनमे सोनेकी अपेक्षा जमीनपर सोनेसे पसीना जल्द आता है। पर धरतीपर सोना आरंभ करनेवालोंको, और ऐसे लोगोंको भी जिन्होने प्राकृतिक जीवन व्यतीत कर अपने शरीरकी गर्मीको नही बढा लिया है, ग्रीष्म एवं बसंतकी-सी ही ऋतुओंमे खुली धरतीपर खुले बदन सोना चाहिए और जरूरत हो तो कुछ ओढ़कर सोना चाहिए।

जब आदमी धरतीपर सोना शुरू करता है तब शुरूमे पहली रातको उसे अक्सर वैसी अच्छी नीद नही आती जैसी नीद उसे अपने बिछावनमें आती थी। इसके बाद सबको और कभी-कभी निद्राभावके पुराने और बुरे रोगियोंको भी खूब नीद आती है और इससे उन्हे अपूर्व ताजगी और शक्ति मिलती है। पर यह गहरी नीद आनेकी अवस्था बहुत दिनोंतक नही चलती। अक्सर कुछ दिन बाद लोगोंको बहुत थोडी नीद आती है।

इस स्थितिसे मुक्ति दिलानेमें प्राकृतिक स्नान, वायु और प्रकाश-स्नान, प्राकृतिक भोजन आदि भी बड़े सहायक होंगे।

नये-पुराने सभी प्रकारके रोगोंमें धरतीपर सोनेका चमत्कारिक गुण शीघ्र देखनेको मिलता है।

हजरत ईसा गंदी हवा, विलास, कापुरुषता और नैतिक पतनके अधिपति शहरोंसे हमेशा दूर रहते थे। वे अधिकतर रेगिस्तानमें या पहाड़ोंपर रहते थे। वे अपने उपदेश अधिकतर इन्हीं स्थानोंके वासियोंको दिया करते थे और यदि किसी दिन व यरूसलमके मंदिरमें उपदेश करते थे तो अपनी रात वे आलिबस पहाड़पर ही बिताते थे जहां निश्चय ही वे खुली धरतीपर सोते थे। प्रकृतिकी गोदमें विश्राम करते वक्त उनके शरीरपर ओढ़नेके नामपर केवल एक ढीला-ढाला लबादा ही रहता था।

धरतीपर सोना प्रारंभ करनेवालोंको दूबसे ढकी बढ़िया जगह चुननी चाहिए, यदि ऐसी जगह न मिले तो जमीनपर चटाई बिछाकर सोना चाहिए। इसमें तो कोई संदेह नहीं कि चटाई पृथ्वीकी शक्तिको बहुत कुछ रोक लेगी। पुवाल, ऊन या रूईसे भरे गद्दे या कंबल-दरीपर सोनेकी तो बात ही नहीं सोचनी चाहिए। इनका उपयोग पृथ्वीसे संबंध होनेमें बहुत बाधा पहुंचाता है। तकियेकी भी जरूरत नहीं है। ठंडी ताजगी प्रदान करनेवाली धरतीपर सिर रखकर सोना विशेष लाभदायक है।

यदि धरतीपर सोनेकी पहली रात कुछ तकलीफदेह साबित हो तो निराश होनेकी जरूरत नहीं है।

करता है[1]। जितने घंटे मनुष्य सोता है उतने घटे उसकी जिंदगी-से मिट ही जाते है । पशु प्रायः रातभर घूमते रहते है। वे कभी कभी आराम जरूर करते है, खास तौरसे दिनमे। जब वे आराम करते है तब कभी-कभी ऐसा मालूम होता है जैसे उनके सभी मानसिक एवं शारीरिक कार्य बंद हो गये है पर वे उस तरह नहीं सोते है जिस तरह आदमी सोता है। मनुष्यकी तरह तो घरेलू पशु भी नही सोता। घोड़ेको ही लीजिए, वह कठिन परिश्रमके बाद ही कुछ घंटे गहरी नीदमे सोता है। गोकि पशु सोते नही है पर उनकी ताजगी और चमक बनी रहती है। वे रातभर सोनेवाले मनुष्यकी तरह न कभी जम्हाई लेते हैं और न उनके मुंहपर कभी उनीदापन और थकान ही दिखाई देती है। शरीरकी चमक बनी रहे, सुस्ती कभी न घेरने पावे इसके लिए हमें प्रकृतिसे अधिक संपर्क स्थापित करना चाहिए, जिससे धीरे-धीरे हम सोनेकी बहुत कम जरूरत रह जाय और संभवत. आगे चलकर इसकी जरूरत बिल्कुल खतम हो जाय। यहां आराम करने और सोनेके भेदको समझ लेना चाहिए। कार्यके बाद विराम यह प्रकृतिका नियम है। आजके मनुष्यके शरीर और मनको उसकी आतरिक अशाति और उद्विग्नताके

---

[1]कुछ पशु जाडेभर सोते रहते है। उनसे मनुष्यकी तुलना नही की जा सकती। उनकी बनावट कुछ ऐसी होती है कि ठडककी वजहसे उनके शरीरमे रक्त-परिचालन बहुत धीमा होता है और पाचनक्रियाका काम बिल्कुल रुक जाता है अत ऐसे वक्त पशुओको भोजनकी बहुत थोडी या बिल्कुल जरूरत नही होती।

कारण कभी पूर्ण विश्राम नहीं मिलता। ज्यों-ज्यों उसका स्वास्थ्य सुधरता जायगा वह सुंदरतम आनंद, मधुरतम प्रसन्नता प्रदान करनेवाले विश्रामका अधिकारी होता जायगा।

इस प्रकारके विश्राममें जड़ता नहीं होती, न मस्तिष्ककी मरणावस्थाकी-सी दशा।

पशु पूर्ण विश्रामकी अवस्थामें सब कुछ सुनते और करते हैं। प्राकृतिक भोजन ग्रहण करनेवाले और प्राकृतिक स्नान करनेवालेको बहुत कम नींदकी जरूरत होती है।

जिस प्रकार खुली धरतीके बजाय कंबलपर सोकर भी धूप-नहान लेनेवालेको नींद नहीं आती उसी प्रकार प्राकृतिक जीवन व्यतीत करनेवाला यदि नंगा होकर अधिक गरमीके दिनोंमें भी धरतीके बजाय बिछावनपर सोवे तो भी निद्रा उसपर अधिकार नहीं कर पाती। जितना ही अधिक हम अपनेको विशेषतः धरतीपर सोकर एवं अन्य प्राकृतिक नियमोंद्वारा प्रकृतिके संपर्कमें लावेंगे उतनी ही कम हमें नींदकी जरूरत रहेगी और बल तथा ताजगीके लिए नींदकी अपेक्षा।

यदि किसीको सुलाना हो तो किसी तरकीबसे उसके स्नायुओंमें ढीलापन लानेकी जरूरत होती है। यह अवस्था ब्रोमा-इड, मार्फिया, अफीमके विषोंद्वारा उत्पन्न की जाती है और इतने जोरके झटकेसे एवं इतनी गहराईसे की जाती है कि बादमें स्वास्थ्यपर उसका बुरा असर साफ-साफ प्रकट होता है। शराब पीनेसे, अप्राकृतिक भोजन करनेसे, गरम कमरेमें सोनेसे, गरम कपड़े ओढ़कर सोनेसे, मोटे गद्देदार बिछावनमें सोनेसे

भी नीद आती है और इस नीदको लोग शक्तिदायक और लाभ-दायक समझते है। पर यह नीद भी इन बाहरी उपकरणों-द्वारा शरीरमे ढीलापन उत्पन्न हो जानेके कारण ही आती है और निश्चय ही शरीरको नुकसान पहुंचाती है पर वह हानि इतनी अधिक नही होती कि उसके लक्षण साफ-साफ दिखाई दे सकें।

फिर भी लोग सोकर उठनेपर एक प्रकारकी घबराहट और भयका अनुभव करते ही है। पर जब लोग धरतीपर सोने लगते है तब उन्हे नीद थोडी ही क्यों न आए या न भी आए तो भी सोकर उठनेपर उन्हे कोई अप्रिय एवं कष्टकर अनुभव नही होता।

आजके कृत्रिम जीवन, स्नायुविक उत्तेजना, गरम बिछौनेके कारण जो लोग स्नायुविक दौर्बल्यके अनेक रोगियोकी तरह अपने शरीरको ढीला नही कर पाते एवं जिन्हे अच्छी तरह देरतक नीद नही आती उनकी दशा चितनीय समझी जानी चाहिए।

जो लोग शराब पीते है एवं दूसरे अप्राकृतिक खाद्योका उपयोग करते है एवं अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करते है, गरम कपड़े आदि पहनते है और जिन्हे धरतीपर सोनेकी आदत नही है यदि वे थकान आनेपर अपने गरम बिछावनमे जाकर लेटते हैं तो गलती करते है। पहले तो ऐसे कार्य करना जिससे शरीर थके और फिर उस थकानसे लड़ना शरीरको तेजीसे खपाना है। उदाहरणके लिए यदि कोई अफीम या मार्फिया खा ले और इससे जो नीद आवे उससे लड़े तो शरीरपर इन

विषोका असर ज्यादा बुरा होगा और नीदसे वह जीत भी न सकेगा, वह उसे जरूर धर दबावेगी।

मैंने निद्रासंबधी अपने जो विचार यहां प्रकट किए है वे केवल यह दिखलानेके लिए प्रकट नही किए है कि मै प्रचलित विचारोसे विपरीत बडे भिन्न विचार रखता हू और न इस आशासे किए है कि लोग उन्हे पढकर मुझे वाह-वाही देंगे या यदि मेरे विचार उन्हें असुविधाजनक और भारस्वरूप लगे तो कम-से-कम मै उनके क्रोध और घृणाका भाजन बनूगा। मेरी इच्छा केवल इतना ही बतानेकी है कि यदि कोई सज्जन खुली धरतीपर नगे सोनेका प्रयोग—संभवतः गरमीकी किसी सुंदर रात्रिमे करे और उन्हे नीद कम आवे तो वे पस्त हिम्मत न हो और इस सर्वथा प्राकृतिक रीतिका अनुसरण करनेसे उनके स्वास्थ्य और शरीरको जो अपूर्व लाभ मिलनेवाला है उससे वचित न रहे। यदि ये प्रयोगकर्ता बीचमें ही अपना प्रयोग छोड़ बैठे तो वे जान ले कि किसी शराबकी भट्ठीमें चुलाई ओषधि या किसी मरीज-दिमागमे पैदा हुए रसायनसे महरूम न रह जाएगे, वरन् एक ऐसी प्राकृतिक महोषधिके अपनेको अनधिकारी ठहरावेंगे जिसे प्रकृति स्वयं अपने हाथों प्रदान करती है और जिसकी अनुभूति स्वास्थ्यकी सच्ची नियन्त्रिणी एवं पथप्रदर्शिका नैसर्गिक वृत्तिद्वारा होती है।

जिन लोगोने नगे पैर टहलनेका इरादा पक्के तौरसे कर लिया है वे इसकी चिता न करे कि वे कहा टहलेंगे। खेत और खलिहान, जंगल और वन काफी लबी दूरीम फैले हुए हैं जहां

कोई भी टहल सकता है। आजके लोगोंके दिमागोसे रूढ़ि-वादिता खतम हो रही है जिससे वे नई चीजे देखनेके आदी होते जा रहे है। अत नगे पांव टहलनेको लोग बहुत विचित्र चीज नही मानते और नगे पाव टहलनेवालोको न चिढाते है न उसका मजाक ही उड़ाते है।

लोग यह भी पूछ सकते है कि रातको खुली धरतीपर खुले बदन सोनेके लिए अपना कबल और ओढना लेकर कहां जाएं? प्राकृतिक चिकित्सालयोमे इसकी सुविधा रहती है। वहां पार्कोमें ऊंचे-ऊंचे तख्ते खडे करके, स्त्री और पुरुषोके लिए अलग जगहें बना दी जाती है जिनमे वायु एवं प्रकाशपूर्ण झोंपड़े भी होते है ताकि रोगी इच्छानुसार खुली जमीनपर या जमीनपर (पुवाल या पंखसे भरा) गद्दा बिछाकर सो सके और वायु और प्रकाशस्नान कर सके।

ऐसी जगहोंमे प्राकृतिक स्नानकी भी सुविधा अवश्य होनी चाहिए। वहां इस स्नानके लिए छोटी-छोटी कोठरियां बनवा दी जा सकती है।

मेरी कदापि यह मंशा नही है कि प्रत्येक व्यक्ति मेरे विचारोंसे प्रेरित होकर समाजमे गहराईतक जड पाई हुई पुरानी रूढियोसे, जो अकसर नुकसानदेह ही होती है, अपना नाता तोड़ ले और जिनके साथ अभीतक वह भुगतता और सहता रहा है, जिनके साथ अब भी उसका भाई-चारे और प्रेमका संबंध है, उनके विरोधका भाजन बने एवं उनसे खुली लड़ाई ठान बैठे।

जहांतक बन सके हमें ऐसे खुले विद्रोहसे बचना चाहिए पर ऐसा न हो कि हम जिस लक्ष्यकी सिद्धिके लिए कटिबद्ध है उसे ही हतोत्साह होकर छोड़ बैठे। ऐसा करना अपमान-जनक एवं भीरुताका लक्षण होगा। स्वास्थ्य-प्राप्तिका हमे सदा ध्यान रहना चाहिए। स्वास्थ्यपर ही सारी दुनियाकी खुशी निर्भर है।

समाजके स्वास्थ्यकी देख-रेखके लिए नियत सरकारी अधिकारियोसे भी हमे न भिड़ना चाहिए, और न ऐसे कानूनोंको ही तोड़ना चाहिए, गो वे गलत ही क्यों न ठहरते हों, जिन्हे साधारण जनताके मतके आधारपर चुने प्रतिनिधियोंने बनाया है।

पर प्रत्येक नागरिकको यह ध्यान रखना चाहिए कि ऐसे कानून (टीका-आदि लगानेके कानून) से लोगोका कम-से-कम अहित हो और उन्हे इस बातकी कोशिश करनी चाहिए कि ऐसे कानून समय पाकर बदल दिए जायं या मिटा दिये जायं।

सर्वथा प्राकृतिक जीवन व्यतीत करनेवालोका मजाक उड़ाने और उनकी राहमे रोड़े डालनेकी लोगोकी इच्छा होनेके कई कारण है। पहली बात तो यह है कि जो लोग ऐसा करते है उन्हे अपने अस्वाभाविक जीवनका एवं उससे आनेवाली विपत्तियोका नैसर्गिक रूपसे ज्ञान रहता है और प्राकृतिक जीवन व्यतीत करनेवालोको हुए लाभको देखकर उन्हे ईर्ष्या होती रहती है। दूसरे, प्राकृतिक भोजन एवं जीवनकी अस्वाभाविक रीतिसे, जिनका मनुष्य मादक द्रव्यों एवं पापाचारोकी तरह

गुलाम बना रहता है, मुक्ति पा लेनेके लिए न उसमें काफी मानसिक बल होता है, न इसके लिए उसे प्रोत्साहन अथवा मौका ही मिलता है। और सबसे बड़ी बात यह है कि उन्हे इस सही रास्तेका समुचित ज्ञान भी नही होता कि वे इसका अनुसरण कर सकें।

पर जब लोग इस सत्यको अधिकाधिक साफ तौरसे पहचानने लगेगे और शाति एवं बुद्धिमत्तापूर्वक उसे इस तरह अपनाएंगे कि लोग उनसे कम-से-कम चिढ़ें या भड़कें, तो इसकी जड़ उतनी ही जमती जायगी और इसके मार्गमें कांटे बिछाने-वालोकी संख्या भी कम होती जायगी। और अब तो मालूम होता है कि रास्ता बहुत कुछ साफ हो भी गया है।

तब पृथ्वीके आनद और आरामका दरवाजा जिस प्रकार आज वह मेढक और चूहे, खरहे और साही, हिरन और बारह-सिंघे, लोमड़ी और बिज्जू आदि सभी जीवोके लिए खुला है उसी प्रकार ईश्वरके प्रियपात्र मनुष्यको भी धरतीमाताके जादूभरे संसर्गमे रहकर आराम करनेकी सुविधा मिल जायगी, जिससे उसे पृथ्वीका सच्चा आनंद मिलेगा एवं उसके स्वास्थ्यको अपरिमेय लाभ प्राप्त होगा।

कुछ ही दिन हुए जब कुछ स्थानोंमे स्वास्थ्योन्नति एवं रोग-निवारणके लिए कुछ लोगोका बरफपर भी नंगे पांव टहलना आरंभ करनेका समाचार सुना गया था। साधारणतः सुननेवालोने तब इसका मजाक ही उड़ाया था।

लोग तो पहले पावोको, जिनका हमेशासे खास खयाल

रखा जाता रहा है एवं जिन्हें हर समय गरम रखनेका खास इंतजाम किया जाता रहा है, ठंडी हवा, खुरदरी धरती एवं शीतकाल हो तो बरफके सपर्कमें लानेके विचारमात्रसे झिझकते थे। क्यों न झिझकते ? हमेशासे जो दादी कहती आई है "बेटा ! पांवोंको हमेशा गरम रखो।" और डाक्टर साहब पांवोंको ठंडे पानीसे बचानेकी सीख जो देते आए हैं। इस समाचारके बाद कुछ लोगोंने नंगे पांव टहलनेकी आजमाइश की और जाना कि नंगे पांव टहलना स्वास्थ्यके लिए तो सब तरहसे उपयोगी है ही, बढ़िया कसरत भी है। और तभीसे इस सर्वथा प्राकृतिक उपचारके संबंधमें लोगोंके विचारोंमें बड़ा परिवर्तन हुआ है।

इसी तरह धरतीपर सोनेका भी चलन चलेगा। कुछ दिनतक यह चलन नंगे पांव चलनेसे बहुत अधिक कठोर एवं अमानुषीय समझा जायगा। पर जब लोग इसका प्रयोग कर देखेंगे तब इसके रोग-निवारणके विशेष गुणसे परिचित हो जायंगे और यह भी जान जायंगे कि यह चाल नंगे पांव चलनेकी तरह ही निरापद है।

सूर्यकिरणें रोग-निवारणमें बड़ी लाभकर सिद्ध हुई हैं। यदि रोगी धूपमें टहलनेके बजाय लेटकर धूप ले तो लाभ बहुत अधिक होता है। इसी तरह धरतीपर लेटनेपर धरतीका असर भी टहलते समयसे ज्यादा सीधा पड़ता है। धूपकी तरह धरती भी शरीरमें रोग-निवारणकी क्रिया प्रारंभ कर देती है, पर यदि टहलनेमें या और किसी कार्यमें शक्तिका व्यय हो रहा

हो तो धूप और धरतीसे शक्ति मिलती रहनेपर भी शरीर अपने शोधनका कार्य पूरी तेजीसे नही कर पाता।

जो भी हो, प्रचलित विचारोका खयाल करके प्रत्येक रोगीको और खास तौरसे चिकित्सालयके निवासियोको खुली धरतीपर आराम करने या सोनेकी राय देते वक्त बहुत सोच-समझसे काम लेना चाहिए। इसके चुनावका सारा भार रोगीपर ही छोडना चाहिए। इक्के-दुक्के आदमी जो धरतीपर सोकर लाभ उठावेगे उन्हे देखकर और लोग भी उनका अनुसरण करेगे। शुरूमे एक रात जमीनपर और दूसरी रात बिछौनेमे सोना काफी होगा।

जब मैंने अपने चिकित्सालयोमे धरतीपर सोनेका चलन चलाया तो मुझे भी अनेक वहमोका सामना करना पडा। किसीको जमीनपर सोनेका प्रयोग करनेकी इच्छा ही नही होती थी। तब कई लोगोने एक साथ बड़े उत्साहसे धरती-पर सोना आरंभ किया और इससे प्राप्त लाभोसे बड़े प्रसन्न हुए। फिर तो उन्होने प्रायः सभीको खुली धरतीपर सोनेके लिए राजी कर लिया। इससे प्रत्येकको जो लाभ हुआ उसे देखकर सचमुच बड़ा आश्चर्य होता था।

जलके प्रयोग लोग प्रिसनीज, कनाइप, कूने आदिके समयसे करते आ रहे है। नहानेके साथ शरीरको रगडनेकी क्रिया भी प्रचलित हो गई है; पर इनमेसे कोई भी क्रिया पूर्णतया प्रकृतिकी बोधगम्यताके अनुसार प्रतिपादित नही है।

नंगे रहनेका प्रचार पहले-पहल रिक्लीने किया था।

वह वायु और प्रकाशसंबंधी प्राकृतिक नियमोंको पूरी तरह नही समझता था और इनकी जानकारीके बगैर भी वह कुछ लोगोको नंगे रहनेकी राय दे देता था पर इससे साधारण जनता-में इसका चलन नही हो सका।

पर धरतीकी शक्ति और उसके प्रयोगपर किसीका जरा भी ध्यान नही गया था। जब मैने पहले-पहल इसकी चर्चा की तो लोगोको बड़ा आश्चर्य हुआ; पर शीघ्र ही धरतीकी शक्ति लोगोके लिए कुतूहलका विषय बन गई और हर जगह इसकी बात बडे ध्यानसे सुनी जाने लगी।

सचमुच धरतीके रोग-निवारक गुण और इससे मिलने-वाले अनेक प्रकारके लाभोसे बढकर दूसरा दिलचस्प और आवश्यक विषय है भी नही। इसलिए मै इसकी चर्चा विशेष रूपसे करना चाहता हूं। पृथ्वीमे इसके आदिसे ही एक शक्ति-शाली प्राणका प्रवाह हो रहा है जिसपर मनुष्यके बनाव-बिगाडका कोई असर नही पड सका है। यदि मनुष्य पृथ्वीके सीधे सपर्कमे आ जाये तो पृथ्वी मनुष्यको भी अपनी इस सजीव शक्तिसे प्रवाहित करनेको तैयार रहती है।

हम पृथ्वीसे इच्छित शक्ति प्राप्त कर सकते है और जो जितना ही अधिक प्राकृतिक जीवन व्यतीत करता है पृथ्वीसे उतनी ही अधिक शक्ति मिलती है। जब कभी मौका मिले आदमीको धरतीपर कपड़े पहनकर ही सही बैठना चाहिए। टहलते वक्त या लबी यात्राओमे खुली धरतीपर बैठकर या लेटकर आराम करना चाहिए। पृथ्वीकी शक्ति प्रकृत्या

मनुष्यपर उसके कपड़ोंके द्वारा भी असर करती है। आप थोड़ी देरके लिए आरामसे खुली धरतीपर सो जाइए, आप मेरे कथनका अनुभव कर लेंगे।

उत्तेजित मनोदशा, निरुत्साह और शोकके क्षणोंमे, हिस्टीरियाका दौरा होनेपर एवं शरीरमे ऐंठन चलने आदि-की दशाओं अथवा अनेक प्रकारकी रोगावस्थाओंमे मैंने धरतीपर बैठने या लेटनेसे लोगोको अकसर शीघ्रतासे शांत होते, उनका कष्ट कटते और उन्हे रोगमुक्त होते देखा है।

पृथ्वी यदि गीली हो तो हमे इसकी चिता करनेकी जरूरत नही है। ऐसी हालतमे पृथ्वीकी रोगनिवारक शक्ति अधिक सतेज होती है जिसकी पुष्टि इस बातसे होती है कि कई लोगोको इससे सर्दी-जुकाम हो जाता है। यह शरीरकी शुद्धि प्रारंभ होनेका प्रत्यक्ष प्रमाण है, जैसा कि अकसर लोग समझते हैं यह किसी तरह भी डरकी चीज नही है।

सारी प्रकृतिमें ही रातके वक्त एक निराली शक्ति प्रवाहित होती रहती है। यदि आप रात्रिके समय जंगल-में जायं तो प्रतीत होता है कि वहां संसारके मुक्त प्राण पर्यटन कर रहे हैं। लोग कहते हैं कि दूर्वा दिनमे नही, रात्रिको ही बढती है। इससे यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि धरतीकी शक्ति रातको खास तौरसे शक्ति-शाली होती है।

मैंने अपने चिकित्सालयमें बराबर ऐसी कोशिश की है जिससे लोगोंको धरतीपर सोना अधिकाधिक सुखद प्रतीत हो। अंतमें मेरे मनमें बालूके गद्दे बनवा देनेका विचार उत्पन्न हुआ। साधारण धरतीपर सोनेके बजाय इनपर सोना ज्यादा आरामदेह होता है। ये धरतीसे मुलायम होते हैं।

चारसे आठ इंच मोटी बालूकी तह सोनेके लिए काफी होती है। इसपर कोई भी पतला टाट या कपडा बिछाया जा सकता है। इससे पृथ्वीकी शक्ति प्राप्त करनेमें कोई विशेष बाधा नही पडती और ओढना भी साफ रहता है। इसमे और भी कई लाभ हो सकते है। सिरहानेकी ओर घासकी ऊंची पटिया-सी बनाकर तकियेका काम लिया जा सकता है।

यदि बालूका यह बिछावन खुली जगहमे लगाया जाय तो लाभ और विशेष हो, क्योंकि मनुष्यके रोग-निवारणमें आकाशका भी स्थायी प्रभाव पड़ता है। और यह प्रभाव रात्रि-को अधिक शक्तिपूर्ण रहता है। तारोभरी रातमे आकाशके महान गुबजके नीचे जब मनुष्य सोता रहता है, यह शक्ति उसके शरीरमें जीवन और बल भरती रहती है। आकाश और धरतीकी शक्ति मिलकर एक महान शोधक शक्ति बन जाती है।

मौसम ठीक न होनेपर यह बिस्तर खुले कमरेमें या खेमेमें बनाना चाहिए।

काठका कोई भी लंबा और बड़ा-सा बक्स किसी कमरेमे रख दिया जा सकता है और मिट्टी बालू भरकर सोनेके काममे लाया जा सकता है।

सर्दीका भय

खुलेमे, हवामे और प्रकाशमय झोपडीमे, जमीनपर सोने और जाडेके दिनोमे तथा खास तौरसे रोगकी हालतमे भी इस तरह रहनेकी मेरी सिफारिशने कुछ लोगोके सामने कितने ही भयंकर रोगोकी तस्वीर खडी कर दी होगी। उनके रोगटे खडे कर दिए होगे। वे सोचते होगे इस तरह रहा जाय तो सर्दी, जुकाम, गठिया, मीयादी बुखार, इन्फलुएजा, निमोनिया आदि भले चंगेको धर दबाएगे और रोगी इस रहन-सहनकी बदौलत दुनियासे ही कूच कर जायगा।

लोगोंके दिलोसे ठंडके भयका भूत भगानेकी कोशिश मैं कई बार कर चुका हू। यह जानते हुए भी कि राक्षसकी भाति इसके पाव चारो तरफ फैले हुए है, मै एक बार फिर इसपर एक सांघातिक आघात करना चाहता हूं।

मनुष्यकी पाचन-प्रणालीका काम देखनेसे मालूम होता है कि वह ऐसे ही खाद्यको अच्छी तरह पचा सकता है कि जिन्हें प्रकृतिने उसके लिए उपजाया हे अर्थात् धरती, जिन्हे बिना खेती या बागवानीकी मददके, अपने आप उपजाती है और जिन्हे

आदमी उनकी प्राकृतिक—बिना बिगड़ी हुई अवस्थामे (मेवे, झरबेर, फल एवं अन्य कई चीजे) स्वाद लेकर खा सकता है। अव यदि आदमी इन प्राकृतिक खाद्योको बदली हुई दशामें आग-की मददसे खाता है या ऐसे अप्राकृतिक खाद्य खाता है कि जो प्राकृतिक खाद्योसे देखनेमे तो थोड़े बहुत मिलते है पर जिन्हे प्रकृतिने उसके लिए नही वनाया है तो उसकी पाचन-प्रणाली उन्हे अंशत., और सो भी कठिनाईसे ही पचा पाती है या वे बिल-कुल नही पचते। शरीर इन अप्राकृतिक खाद्योका उपयोग (रक्त, पेशी, अस्थि आदि बनानेमें) पूरी तरह नही कर सकता। उससे हमारे शरीर और मस्तिष्कको समुचित रूपसे बढ़नेके लिए उपयुक्त सामान नही मिलता, न पूरी शक्ति और जीवन। उस खाद्यका अवशेष आमाशयमे पडा रहकर, वहांसे ठोस, तरल और वायव्य रूपोमें शरीरके प्रत्येक अंग और उनके सिरोंतक पहुंच जाता है और कभी-कभी शरीरका रूप ही बिगाड़ देता है। यह शरीर-द्रव्य नही विजातीय द्रव्य है। और यह द्रव्य दूसरे तरीको, सांस और त्वचाद्वारा टीके और इंजेक्शनके रूपमे भी शरीरमे पहुंच सकता है।

विजातीय द्रव्य धीरे-धीरे अगोके बीचमे स्थान बना लेता है। यह अंगोंको अपनी प्रकृतिके अनुसार जल्दी या देरसे नुक-सान पहुंचाता और उन्हे नष्ट कर देता है। विजातीय द्रव्य भीतर सड़ने भी लगता है, उससे एक प्रकारकी गरमी निकलती है जो शरीरको नुकसान पहुंचाने और नष्ट करनेका असर रखती है। इस तरह शरीरके कभी इस अंगमे तो कभी उस अंगमे दर्द

उत्पन्न होता रहता है और उनके सारे साधारण कार्योंमे व्याघात पहुंचता रहता है जिससे आगे चलकर मनुष्यकी अकालमे मृत्यु हो जाती है। इस जमानेके लोगोमे विजातीय द्रव्यके बनने और इकट्ठा होनेकी यह क्रिया अधिक तेजीसे होती है। क्योकि हम लोग भारी-भारी जूते और मोटे-मोटे कपड़े पहनते है, शरीर-पर ठडा पानी लगनेसे अपनेको बचाते है, पृथ्वीसे हमारा कोई संबंध नही रह गया है, वायु और प्रकाश हमारे तनतक नही पहुच पाते, हम गदी हवामे सांस लेते है। इन कारणो एवं प्रकृति-के विरुद्ध किए गए अन्य पापोके कारण हमारी पाचनशक्ति और जीवनशक्तिके कार्यमे बाधा पड़ती रहती है जिससे आगे चलकर वे निकम्मी हो जाती है।

पर ज्यो ही मनुष्य अपने भारी जूतो और भारी कपडोको अलग कर देगा और ऐसे कपड़े इस्तेमाल करेगा कि उनसे होकर पानी, प्रकाश, हवा और खास तौरसे तेज ठंडी हवा शरीरतक आसानीसे पहुंच सके त्यो ही प्रकृति हमारी जीवन-शक्तिको, विजातीय द्रव्यको ढीला करने और बरजोरी शरीरसे बाहर निकालनेका लाभकर कार्य करनेके लिए तुरंत प्रेरित करेगी। जीवन-शक्तिकी इस क्रियाको स्वास्थ्यकर उभार कहते है।

यह उभार कमजोर, दुबले और बिगड़े शरीरवालोमे स्व-भावतः बहुत जल्द और तेजीसे होता है। उन्हे प्रकृतिकी इस सहायताकी आवश्यकता भी बहुत अधिक रहती है। क्योंकि ठंडे पानी, प्रकाश, वायु और ठंडी जमीनके डरसे और इनसे मिलनेवाले लाभसे अपनेको बचाये रखनेकी वजहसे उनकी

जीवनशक्ति बहुत मंद पड़ जाती है और उनके शरीरमें विजातीय द्रव्य बहुत अधिक मात्रामें इकट्ठा हुआ रहता है।

इससे सर्दी और जुकाम डेरे डाल देते हैं अथवा अंगों (फेफडे,स्नायु आदि) की अपना विजातीय द्रव्य निकाल डालनेकी आतुरताके अनुरूप लाल बुखार, चेचक (बच्चोंके रोग) हाफाडाफा, मीयादी बुखार, निमोनिया, इन्फ्लुएंजा आदि तीव्र रोग होते हैं। नमी, हवा और ठंडक लगनेके अलावा अन्य कारणोसे, उदाहरणार्थ वायुमंडलके तापमानमें यकायक परिवर्तन, अत्यधिक मानसिक उत्तेजना आदिसे भी तीव्र रोग (मीयादी बुखार, हैजा आदि) हो जाते हैं। कभी-कभी ये रोग शरीरमें स्वयं बिना किसी बाहरी कारणके उत्पन्न हो जाते हैं।

इन तीव्र रोगोंके साथ हमेशा तीव्र ज्वर भी होता है। पहले प्राय: कुछ ठंडक-सी लगती है; विजातीय द्रव्यमे उत्तेजना होनेसे, अणुओके आपसमे रगड़ खानेसे शरीरके अंदर गरमी बढ़ जाती है; इसलिए रक्त शरीरके अंदरकी तरफ खिंच जाता है, शरीरका बाहरी भाग ठंडा हो जाता है और रोगीको ठंडक मालूम होती है। पर जल्द ही गरमीके शरीरकी त्वचातक पहुंच जानेसे, शरीर गरम हो जाता है। क्योंकि इस समय परिचालित विजातीय द्रव्यको शरीर त्वचाद्वारा तीव्रतासे बाहर निकालनेकी कोशिश करता है। हाफेडाफेमें गला खास तौरसे आक्रांत हो जाता है। बढती हुई गरमीसे विजातीय द्रव्यका आकार बढ़ जाता है और वह पेटसे सिरकी ओर जाते

समय गलेमे फस जाता है जिससे दम घुटकर मृत्यु हो जानेका भय उत्पन्न हो जाता है।

अब यदि हम रोगीके कमरेकी खिड़कियां बंद करके, प्रकृतिके चिकित्सा-साधन, शुद्ध वायु और प्रकाशको रोगीतक पहुंचनेसे रोकते है एवं ज्वरनिरोधक जहरीली दवाएं आदि देते है तो बेचारे रोगीकी जीवन-शक्ति और भी कमजोर हो जाती है और गरीब रोगी प्रकृतिके विरुद्ध ठानी हुई इस लड़ाईमे सदैव परास्त होता एवं गिरता है। रोगीको भयानक कष्ट और पीड़ाएं सहनी पड़ती है। तब भी होता यही है कि प्राय: उसकी मृत्यु ही हो जाती है; कभी-कभी यह भी होता है कि इस लड़ाईमे रोगके लक्षण चले जाते है, रोगी अच्छा हुआ-सा दिखाई देता है अर्थात् शरीर अपनेको शुद्ध करनेका प्रयास बंद कर देता है पर कुछ ही दिन बाद शरीर अपनेको विजातीय द्रव्यसे मुक्त करनेकी और भी अधिक कठिन रीति ग्रहण करता है और एक भयानक उभार प्रस्फुटित होता है। हो सकता है कि इन्फ्लुएजा किसी शोथनाशक दवासे प्रकट रूपसे चला जाय पर शीघ्र ही फेफड़ोमे प्रदाह आरंभ हो जाता है। इस प्रकार ओषधियोंके उपयोगके कारण कभी-कभी जीवनशक्ति सदाके लिए ऐसी क्षीण हो जाती है कि शरीर तीव्र रोग अथवा अन्य किसी रीतिसे अपने विजातीय द्रव्यको निकाल फेकनेमे सदाके लिए असमर्थ हो जाता है।

शरीरमे इकट्ठा विजातीय द्रव्य जब सड़ने लगता है तब

जीर्ण रोग होते हैं--यह सडान गरमी उत्पन्न करती है जो शरीर-के[1] लिए हानिकर है। जीर्ण रोग अब खतरनाक होता जाता है, धीरे-धीरे स्नायुदौर्बल्य, यक्ष्मा (इन्फ्लुएजा और फेफड़ोंमें प्रदाह उत्पन्न हो जानेके कारण), कैंसर, गठिया, मधुमेह, बड़े

---

[1]भीतर गरमी मालूम होना जीर्ण ज्वरका लक्षण है। इस रोगमे रोगीका शरीर बाहरसे ठडा रहता है पर ज्यो-ज्यो रोगकी दशा बिगडती जाती है रोगीका शरीर ऊपरसे भी गरम रहने लगता है। इसीलिए पुराने जीर्ण रोगियोको अतमे तेज ज्वर रहने लगता है। ऐसी दशामें समझना चाहिए कि रोगीकी जीवनशक्ति बिलकुल क्षीण हो गई है। इस दशामे ज्वर तीव्र रोगके ज्वरके समान विजातीय द्रव्यको शरीरसे बाहर निकालनेके लिए नही बढता है वरन् इसका यह अर्थ है कि जो जीवनशक्ति शरीरके अदरसे ज्वरको दूर करनेमे लगी हुई थी और ज्वरको बाहर जानेसे रोक रही थी उसने थककर काम छोड दिया है, जिसकी वजहसे ज्वर शरीरके बाहर-भीतर सभी जगह बढ गया है। जीर्ण ज्वरकी अतिम अवस्थाके इस ज्वरसे लडनेके लिए भी प्राकृतिक चिकित्साके साधन प्रकाश, वायु, जल, मिट्टी, प्राकृतिक भोजन आदिका उपयोग सफलताके साथ किया जा सकता है।

उदाहरणके लिए सदा बहनेवाले खुले घावको लीजिए। कभी-कभी यह कोई तेज मरहम लगानेसे बद हो जाता है। पर ऐसा करके केवल एक ऐसे रास्तेको जिससे शरीरका विजातीय द्रव्य धीरे-धीरे निकल रहा था, बद कर दिया जाता है। अब विजातीय द्रव्य शरीरके अदरकी ओर चलता है और यदि इसे निकलनेका कोई दूसरा रास्ता शीघ्र न मिला तो यह शरीरको इतनी बडी हानि पहुचा सकता है कि जिससे मृत्युतक हो सकती है। पर यदि विजातीय द्रव्यका बनना ही प्राकृतिक भोजनद्वारा

घाव-सरीखे कठिन रोग उत्पन्न हो जाते है। इस समय यदि प्राकृतिक चिकित्साद्वारा रोगीकी जीवनशक्ति धीरजसे लगे रहकर एक बार फिर न जगा दी जाय तो ये रोग रोगीको वर्षों खाटमें सड़ाकर धीरे-धीरे उसे कब्रतक पहुंचा देते हैं।

तीव्र रोगोंमें शरीरको वहुत हानि पहुंचाते हुए भी औषधोपचार रोगोंको दवानेमें सफल हो जाता है। पर जीर्ण रोगोंको तो वह दबा भी नहीं पाता। वहां उसकी कुछ नही चलती। हां, चीर-फाड़ और संखिया आदि-सरीखे भयकर विषोके द्वारा जीर्ण रोगकी दशा भी कभी-कभी कुछ बदल जाती है, रोगके एक-दो लक्षण दूर हो जाते है और शरीरके किसी विशेष अगके रोगके लक्षण प्रकट रूपसे चले भी जाते हैं। लेकिन रोगीका प्रधान रोग तो वढ़ता ही जाता है। यहांतक कि जिन चीजोके मोहके कारण वह प्रकृति-पथसे हटा था वे उसकी कोई सहायता नही कर पाती और अतमे वह मृत्युके कराल गालमे जा पड़ता है।

टीकेके जहरद्वारा शरीरकी जीवनशक्ति आरंभमे निकम्मी

रोक दिया जाय एव प्रकाश, वायु, जल और धरतीकी शक्तिके उपयोगद्वारा शरीरकी जीवन-शक्ति और पाचनको वढाकर विजातीय द्रव्यको मल, मूत्र एव स्वेदमार्गसे निकालनेमे सहायता की जाय तो घावका वहना अपने आप वद हो जायगा और शरीरकी रोगनिवारिणी शक्ति वढ़नेसे वह सूख जायगा। इस विधिसे किसी प्रकारकी हानिकी संभावना नही है, न शरीरका ही कोई नुकसान हो सकता है।

कर दी जा सकती है। फलस्वरूप जिन जीवन-शक्तिसे भरे-पूरे लड़कोंके शरीरका विजातीय द्रव्य चेचक आदि बच्चोंके रोग कहे जानेवाले उपायोंसे निकल जाता था वे बंद हो जाते हैं। अब इन सीधे-सादे तीव्र रोगोंके बजाय डिप्थीरिया, फेफड़ोंका प्रदाह-सरीखे भयानक रोग होते हैं और स्नायुदौर्बल्य, यक्ष्मा, कैंसर आदि सरीखे जीर्ण रोगोंकी एक लंबी कतार उनके पीछे लग जाती है। कितने ही लोग यक्ष्मा, कैंसर, स्नायुदौर्बल्य, कठमाला, बहरेपनको साथ लिए अपनी बैसाखीके सहारे कब्रकी ओर लड़खड़ाते हुए बढ़ते दिखाई दे रहे हैं। इनमेसे कितने ही अंधे भी हो चुके हैं और अनेकोंके शरीरका आकार विकृत हो गया है। इनमेंसे अनेककी यह दशा स्वास्थ्यके रक्षक कानून और औषधोपचारद्वारा विहित टीकेने की है। पर यह बात बहुत कम लोगोंको मालूम है। इस संबंधमे भी यही देखना है कि अंधेरेमे रखे गए इस सत्यपर प्रकाश कब पड़ता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जुकाम एवं अन्य साधारण तीव्र रोगोंके लिए दी गई दवाएं ही मनुष्यके लिए बड़ा-से-बड़ा खतरा उत्पन्न करती है, उसे कष्ट और संकटमे डालती है। यहां भी औषधोपचार प्रकृतिके आवाजपर कान नही देता और प्रकृतिके सदुद्देश्योंका गलत अर्थ लगाता है।

हम जितना ही आगे बढ़कर प्रकृतिका स्वागत करेंगे, तीव्र रोगोंके उद्देश्योंको समझकर उनके सहायक होंगे, जितना ही हम रोगोंके सही कारण अप्राकृतिक भोजन, शहरों और कमरोंकी गंदी हवासे बचेंगे—और जितना ही हम अपने शरीरपर

प्रकाश, वायु, शीतल जल एवं धरतीकी शक्तिका असर होने देंगे उतनी ही पूर्णता और शीघ्रतासे हम अपने शरीरके अंदर उत्पन्न गरमीके खतरेसे दूर होंगे। और तब मल भी (नाक और फेफड़ेके रास्ते) अधिक शीघ्रतासे और समुचित रीतिसे निकलने लगेगा। गुर्दे और बड़ी आतें अपना काम ठीक-ठीक करने लगेगी। गरमी होनेपर पसीना आने लगेगा, खसरा, लाल बुखार चेचकके रूपमें मल त्वचाके ऊपर आ जायगा तथा अनेक अन्य रूपोमे विजातीय द्रव्य शरीरसे बाहर होने लगेगा। शरीरमे गरमी कम होनेपर रोगीको कष्ट और पीड़ा कम होगी और उसे शीघ्र ही आरामका अनुभव होने लगेगा। तीव्र रोग जानेपर उसे अपनेमे नवीन शक्ति आई प्रतीत होगी एव इससे उसका काया-कल्प उस ग्रीक पौराणिक पक्षीकी भाति हो जायगा जो अपनेको भस्म करके अपनी राखसे फिर पैदा हो जाता था।

तीव्र रोगोके उपचारमें औषधोपचारकी असफलता एवं ओषधिके प्रयोगसे होनेवाली हानियां उन सबपर, जो डाक्टरोकी तडक-भडकसे चौधिया नही गए है, एवं जो दवाओद्वारा रोगीपर लाए गए असरको निष्पक्ष भावसे देख सकते है, प्रकट हो जायगी। इसी प्रकार तीव्र रोगोमे प्राकृतिक चिकित्सा करनेपर जो लाभ होता है एवं रोगोके जानेपर स्वास्थ्यमे जो सुधार होता है वह कोई भी किसी प्राकृतिक चिकित्सालयमे जाकर या स्वयं अनुभव करके साफ-साफ देख सकता है। तब उसे मेरे इस कथनपर भी विश्वास हो जायगा कि तीव्र रोग जरा भी खतरनाक

नहीं है वरन् वे उपचारात्मक उभार हैं जिनके द्वारा शरीर अपनेको विजातीय द्रव्यसे मुक्त कर लेता है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि मीयादी बुखार, डिप्थीरिया, हैजा आदि सभी तीव्र रोग अधिकतर सर्दीके कारण होते हैं और जिनसे लोग आजकल बुरी तरह डरते हैं, बिल्कुल खतरनाक नहीं हैं। यदि इनका समुचित उपचार किया जाय तो वे अत्यधिक लाभकारी सिद्ध होते हैं। वे मनुष्यके लिए वरदानस्वरूप हैं, आनंद और हर्षके साथ उनका स्वागत करना चाहिए।

अनगिनत रोगियों एवं स्वयं अपनेपर किए गए अनेक अनुभवोंने मेरे इस विश्वासको कि सर्दी, जुकाम आदि रोग प्रकृति हमारे लाभके लिए लाती है, अधिक दृढ़ कर दिया है। जो मेरी बताई उपचार-पद्धतिको काममें लायेगा, उसे मेरे कथनकी सत्यताकी प्रतीति करानेवाले ठोस प्रमाण भी मिल जायंगे।

तीव्र रोग शरीरको चलाते रहनेका प्रकृतिका एक साधारण उपाय है। पर वह सर्वथा आवश्यक नहीं है। यदि प्रकृतिकी ओर लौट चला जाय तो उससे पूरी तौरपर बचा जा सकता है। जुकाम या अन्य कोई तीव्र रोग होनेपर यदि जल्द ही उसकी प्राकृतिक चिकित्सा आरंभ कर दी जाती है अर्थात् यदि रोगी प्राकृतिक स्नान करता है, कमरेकी सारी खिड़कियां खुली रखकर कमरेमें या बाहर खुलेमें सर्दी-गर्मीके अनुसार थोड़ी या अधिक देरतक बार-बार नंगे रहकर वायुको शरीरपर लगने देता है, नंगे पांव टहलकर, खुले बदन सोकर या आरामकर धरतीसे अपना संबंध जोड़ता है तो चेचक, डिप्थीरिया, मीयादी बुखार,

तीव्र ज्वर, हैजा-सरीखे डरावने रोग भी कोई कष्ट नही देते और रोगीकी परिचर्यामे लगे लोगोंको भी रोगके उतार-चढ़ावके समय कोई चिता नही होती। पर यदि स्वस्थ दिखाई देनेवाले लोग या जीर्ण रोगके रोगी, अभीसे, तीव्र रोग होनेके पहले ही, प्रकृतिकी ओर लौट चलें अर्थात् जल, प्रकाश, वायु और धरतीका समुचित उपयोग जिसका वर्णन मैं कर चुका हूं, करने लगे और प्राकृतिक भोजन करें, जिसके संबंधमें मै आगे लिखूगा, तो उन्हे जुकाम या कोई भी अन्य तीव्र रोग न होगा।

अपने प्राकृतिक चिकित्सालयमे और इसे स्थापित करनेके पहले मुझसे जिन अनगिनत रोगियोने पूरे विश्वासके साथ चिकित्सा कराई उन्हे चिकित्साकालमे न तो जुकाम हुआ और न कोई अन्य तीव्र रोग। इस प्रकारके स्वास्थ्यकर उभार भी किसी-न-किसी रूपमें अप्रीतिकर होते है। वे कम-से-कम हमारे साधारण जीवन-क्रममे बाधक तो होते ही है। पर जिन अनेक बूढ़े और जवानोने, जिन्होने बिना किसी विशेष सावधानी या क्रमागत परिवर्तनके सीधे नगे पांव टहलना शुरू कर दिया, खुलेमे प्राकृतिक नहान लेने लगे, वायु और प्रकाशपूर्ण झोंपड़ीमे सोने लगे अथवा बिल्कुल खुली जगहमे खुली धरतीपर लेटने लगे और नंगे रहने लगे, उनमेसे किसीको भी, यद्यपि उन्होने अच्छे और बुरे मौसममें, बरसात और धूपमें और कभी-कभी कड़ाकेकी सर्दीमे भी सारी चिकित्सा जारी रखी, कोई उभार नही हुआ।

इस प्रकार पूर्णतया प्रकृतिकी ओर लौटनेसे हमारी जीवन-शक्ति प्रचडरूपसे उद्दीप्त हो उठती है और वह अपनी पूरी शक्ति-

के साथ शरीरसे विजातीय द्रव्य निकालनेमें लग जाती है जिसकी प्रक्रियास्वरूप सारे शरीरमें ऐंठन-सी होती है, कभी-कभी हल्का या तेज दर्द भी होने लगता है (फोड़े भी हो जा सकते हैं), पर साथ-साथ शरीरके अंदरकी बढ़ती हुई गरमी, जो सभी कष्टकर, उत्तेजक और थकानेवाले तीव्र रोगोंका कारण होती है, तुरंत कम हो जाती है और धीरे-धीरे चली जाती है। इसकी वजहसे तीव्र ज्वर और साधारणतया जुकाम या कोई भी तीव्र रोग नहीं होने पाता। साधारण जीवनमें भी मनुष्य जितना ही अधिक ठंडे जल, ठंडी हवाके संपर्कमें अपने शरीरको रखता एवं उसपर मोटे कपड़े और भारी जूते नहीं लादता तथा जितनी ही दृढ़ता-पूर्वक वह प्रकृतिमें अपने विश्वासको बनाये रखता है उसे उतना ही मामूली और निरापद स्वास्थ्यकारक उभार होता है और यदि हल्का जुकाम-सा कोई उभार हुआ हो तो वह आसानीसे चला भी जाता है; पर जब प्राकृतिक जीवन व्यतीत करते कुछ दिन हो जाते हैं तब तो इस प्रकारके उभार आनेकी संभावना नहीं रह जाती।

यह सभी जानते हैं कि जो सर्दीसे नहीं डरते या जिनके पास सर्दीसे बचनेके लिए काफी कपड़ा और जूता वगैरह खरीदनेको पैसा नहीं है उन्हें या तो तीव्र रोग होते ही नहीं या बहुत कम होते हैं।

क्या ठंडकके बारेमें मेरे विस्तारपूर्वक लिखे हुए विचारोंको पढ़कर आपके मस्तिष्कसे सर्दीका भय निकल जानेकी आशा की जा सकती है? नहीं, मैं इतना मूर्ख नहीं हूं कि यह सोचूं

भी कि सर्दीके भयानक किलेको मेरे विचारोसे जरा भी ठेस लगी होगी। चाहे जितने प्रमाण उपस्थित किए जानेपर भी, कुछ लोगोको भयरहित होकर मौजसे हवा और ठंडकके झोके नगे बदनपर सहते एवं गीली धरतीपर नगे पाव चलते दिखाई देने-पर भी लोग तरह-तरहकी आपत्तिया पेश करेगे, कहेगे, अरे वह तो अभी जवान है, उसका शरीर सहनशील बन गया है, उसकी काठी मजबूत है इसलिए वह यह सब कर सकता है पर मेरे लिए यह कैसे संभव है ? इन वहानोकी फौजके बलपर ही सर्दी अपने भयके गढकी रक्षा करती है।

यदि डाक्टर अनेक रोगोसे पीड़ित भी हो तो भी लोग उस-के पास जाते है और इस विश्वासके साथ जाते है कि वह हमें रोगमुक्त कर देगा। जो दवा दवा-फरोशके यहांसे आती है यदि वह जहर भी हो अत स्वास्थ्यको नुकसान पहुंचानेवाली एवं नष्ट करनेवाली हो और दवा बनानेवालोकी जरा-सी गलतीसे जान लेनेवाली साबित हो तो भी हम आख मूंदकर उसका विश्वास करते है। जब डाक्टर इन खतरनाक दवाओके नाम सादे कागजपर लेटिन भाषामे, जिसे हम समझ नही पाते, लिखकर देता है तो उनपर हमारा विश्वास और भी बढ़ जाता है।

पर प्रकृतिसे लोग डरते है। और उस प्रकृतिपर विश्वास नही करते कि जिसकी चिकित्साके साधन जल, प्रकाश, वायु, गरमी, सर्दी है, जिनसे ससार बना है एवं चलता है और जो प्रकृति सारे प्राणियोका भला चाहती है। जबतक मनुष्य

प्रकृति-पथसे नही हटा, वह प्रकृतिकी गोदमे खुशी-खुशी खेलता रहा और प्रकृति अपनी इच्छा उसे साफ-साफ बताती रही। डाक्टर यही कोशिश करते है कि लोग प्रकृतिके प्रति अपना यह अविश्वास बनाए रहे।

विश्वकी उत्पत्ति शाश्वत प्रेमके भंडारसे हुई है, इस भंडार-से शुभके अतिरिक्त क्या कभी कोई अशुभ या बुरी चीज प्रगट हो सकती थी ? इसलिए प्रकृतिमे जलकी एक बूद भी ऐसी नही है, कोमलतम वायुका मंदतम झोका भी ऐसा नही है और न सर्दीका एक लघुतम अंश ही ऐसा है जिसका निर्माण देह-धारियोके कल्याण और सुखकी दृष्टिसे न किया गया हो।

जब मनुष्य प्रकृतिसे विमुख हो गया तब अपने कष्टोंका कारण अपनेमे न खोजकर अपनेसे बाहर प्रकृतिमे खोजने लगा। यह उसके नए आचरणके अनुरूप ही कहा जायगा। अब उसने प्रकृतिको खतरोसे भरी हुई, निर्दय और कठोर माना जिसके परिणामस्वरूप वह प्रकृतिका अविश्वास करने लगा। जिसका आगे चलकर यह फल हुआ कि प्रकृति और उसके कार्योका वह गलत अर्थ लगाने लगा और फलस्वरूप वह प्रकृतिके साधनोका दुरुपयोग करके अपने लिए कष्ट और दुःख मोल लेने लगा। अनेक खतरनाक काम प्रकृतिको गलत समझनेके कारण ही किए जाते है।

प्राय. एक सदीसे ज्यादा हो गया कि डाक्टरोने जलका उपयोग उसकी स्वाभाविक अवस्थामे, अथवा उस अवस्थामे जिसमे कि अपनी नैसर्गिक बुद्धिकी सुननेवाले पशु काममे

लाते है, रोगियोकी चिकित्सामे इस्तेमाल करनेसे इनकार कर दिया है। चाहे फोड़ा सड़ जाय और रोगी मर जाय फिर भी वे फोड़ेको धोनेके लिए गरम पानीका ही उपयोग करेगे।

बहुत दिन नही हुए कि किसी भी ऐसे रोगीको जिसे जोरों-का ज्वर चढ़ा हो, चाहे वह अत्यधिक प्यासकी पीड़ासे परेशान हो एवं भीतरकी गरमीसे जला जा रहा हो चिकित्सक पीनेको ठंडा पानी नही देते थे। किसीको भी यदि उसका शरीर किसी कारणसे गरम हो गया है तो किसी रूपमें भी ठडा पानी पीनेकी इजाजत उसे नही थी। सिपाहियोंको मार्च करते समय ठंडा पानी पी लेनेपर सख्त सजा दी जाती थी। यदि सिपाही प्यासके मारे थककर गिर जाय तो भी इसकी परवा नही की जाती थी। बदनके गरम हो जाने या रहनेपर ठंडे पानीसे नहाना बहुत खतरनाक समझा जाता था।

पर आज अवस्था बदल गई है। आज यदि किसीके घाव हो जाता है या कोई अग कट जाता है तो पहले ठडे पानीका ही उपयोग होता है, ज्वरके रोगीका कष्ट कम करनेके लिए उसे खुशी-खुशी ठंडा पानी पिलाया जाता है; मार्च करते समय सिपाहीको केवल ऐसी जगहोको छोड़कर जहांके लोग कीटा-णुओंसे नही डर गए है—यही तो लोगोंके लिए आज हौवा बना हुआ है—ताजगी लानेके लिए ठंडा पानी पिलाया जाता है।

यह सप्रमाण सिद्ध हो चुका है कि स्नान करते समय शरीर-को जब पहले पानी छूता है उस समय शरीर जितना ही अधिक गरम होता है स्नानसे लाभ उतना ही अधिक मिलता है।

अब लोग वाष्पस्नानके बाद बदनसे जब पसीना जोरोसे चूता रहता है तुरत ठडे पानीसे नहाते है ।

आज इसके स्पष्ट चिह्न दिखाई दे रहे है कि लोग प्रकृतिकी ओर लौटना चाहते है पर ठंडी हवाके बजाय लोग पहले ठडे पानीकी ओर आकर्षित हो रहे है । आज जगह-जगह ठंडे पानीसे चिकित्सा करनेवाले जल-चिकित्सालय खुल गए हैं और रोगी बहुतायतसे वहां चिकित्साके लिए पहुंचने लगे है ।

प्रकृति निस्संदेह बहुत दयालु है, यदि कोई उसकी तरफ एक कदम भी बढता है तो वह उसे अपने हृदयसे लगानेको हाथ फैलाकर दौडती है और हमारी भलाईके लिए अपना वरदहस्त सदा आगे बढाए रहती है । यद्यपि ठंडे पानीका उपयोग आज उस पूर्ण विधिसे नही होता जैसा कि प्रकृति चाहती है फिर भी लोग यह जान गए है कि ठडे जलमे रोग-निवारणका गुण अत्यधिक मात्रामे मौजूद है । यदि इस ठडे पानीके द्वारा प्राप्त सफलताकी तुलना औषधोपचारद्वारा प्राप्त सफलताओं या यों कहिए कि असफलताओसे की जाय तो निश्चय ही वह मानव-जातिको विस्मित कर देनेवाली होगी । किंतु ठंडे पानीका उपयोग एक बारमे केवल कुछ ही देरतक और सीमित रूपमे ही किया जा सकता है ।

पर शुद्ध ताजी हवा मनुष्यका प्राण है । त्वचा एवं फेफड़ों-द्वारा जिस अनुपातमे शुद्ध वायु मनुष्यको मिलती है ठीक उसी अनुपातमे उसका शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक स्वास्थ्य घटता-बढ़ता है ।

यदि हम केवल एक क्षणके लिए भी मनुष्यको वायुसे वंचित कर दे तो उसके जीवनका तत्काल अंत हो जायगा। यदि हम उसका नाक और मुह खुला रखकर उसके शरीरपर किसी ऐसे पदार्थका लेप कर दे कि वह त्वचाद्वारा सास न ले सके तो कुछ ही घंटोंमे उसकी मृत्यु हो जायगी।

जलके विपरीत वायुमे रोगी हमेशा रह और घूम सकता है और इच्छा होनेपर समय-समयपर वह अपने कपडे भी उतार दे सकता है। भोजनको, जिससे मनुष्यका सारा शरीर और स्नायु बने है, प्राकृतिक कर देनेसे शरीरमें विजातीय द्रव्य एवं रोगका बढ़ना तुरंत रुक जाता है। यदि स्वास्थ्यको बनाये रखने एवं रोगोको दूर करनेके लिए वायु, ठंडक, धरतीकी शक्ति एवं प्राकृतिक भोजनका—इस भोजनकी आजके शाकाहारी भोजनसे कोई तुलना नही है—उपयोग किया जाय तो उससे प्राप्त सफलताके सामने शीतल जलद्वारा प्राप्त सारी शानदार सफलता मात हो जायगी। पर वह प्रयोग अनिवार्यत. मेरी बताई विधिके अनुसार, जिसका वर्णन मै कर चुका हूं और आगे चलकर और करूंगा, होना चाहिए।

जलका प्रयोग यदि गलत तरीकेसे और देरतक किया जाय तो हानि हो सकती है पर वायुसे किसी हालतमे भी कोई नुकसान नही होता, उसका प्रयोग सदा लाभकर ही होता है। लेकिन तब भी लोग वायुको अविश्वासकी दृष्टिसे ही देखते हैं। आज जब हमारा शरीर विशेष रूपसे गरम रहता है या जब

हमारे शरीरसे गरमीके मारे पसीना बहता रहता है उस समय भी हम ठंडे पानीसे स्नान करते नही हिचकते, ज्वरके रोगियोको भी ठंडे पानीमे सुला दिया जाता है पर क्या कोई यात्री जो तेज रफ्तारसे चलनेके कारण पसीने-पसीने हो गया है, किसी खुले स्थानमे या किसी शिलाखंडपर वैठकर अर्धनग्नावस्थामें (नगी छाती, नगे पांव और नंगे सिर) या बिलकुल नंगे होकर अपने शरीरपर तेजीसे आती हुई ठंडी हवा केवल कुछ समयके लिए लगने दे सकता है ? डिप्थीरिया या चेचकसे पीड़ित किसी बालकको या निमोनिया या मीयादी वुखारके तीव्र ज्वरसे पीड़ित किसी बड़ेको, जो गरमीके मारे छटपटा रहा हो, और मोटे भारी ओढ़नेको फेक देना चाहता हो, जाड़ेके दिनोमें खिडकी खुले ठडे कमरेमे या खुले मैदानमे विलकुल नगा ले जानेका कोई साहस करेगा ?

ऐसे रोगीको आज कौन दुर्गंधभरी भारी, जहरीली हवाभरे कमरेमे और ठंडकके दिनोमे भी वाहर ले जाकर वाग या बनमे वनी वायु और प्रकाशवाली झोंपड़ीमे सुलाएगा या यदि वहुत ठंडक नही हुई तो उसे नंगे ही साफ समतल भूमिपर लेटने या सोने देगा ?

केवल ऐसा करनेके खयालसे ही, औरोकी कौन कहे हमारे आजके प्राकृतिक चिकित्सक और उनके अनुगामियोका दिल दहल उठेगा और वे भयके मारे कांप उठेगे । और जो खुल्लम-खुल्ला ऐसा करनेको कहेगा लोग उसे सीधे-सीधे पागल करार दे देगे । सदियो पहले पुराने जमानेमे जैसा कानून था वैसा यदि

आज होता तो मेरे-ऐसे लोग जेलखाने या पागलखानेकी हवा खाते होते। और जिस प्रकार गैलीलियोपर यह कहनेके लिए कि 'सूर्य पृथ्वीके चारो ओर नही, पृथ्वी सूर्यके चारों ओर घूमती है' मुकदमा चलाया गया था उसी प्रकार मुझपर आजके वैज्ञानिक मुकदमा चलाते।

जो भी हो, यह तो सही ही है कि ठंडी वायु भी ठडे पानीकी भाति ही गरम शरीरपर लगनेपर उसे चैतन्यता एवं शक्ति प्रदान करती है। गरम दिनके बाद शीतल रात्रिका आगमन होता है, गरमीके मौसमके बाद जाड़ेका मौसम आता है— गरमी और ठंडकके इन परिवर्तनोके पीछे प्रकृतिके महान् उद्देश्य छिपे हुए है। किसी भी खुली जगहमे बागमे, या अच्छा हो कि किसी जगलमे, रोगीको ले जानेपर उसे शुद्ध ताजी हवा मिलेगी, शीतल समीर उसके खुले बदनपर लगेगा, धरती उसके तापको एवं रोगको हरेगी, तीव्र रोगका रोगी शीघ्रतासे स्वस्थ होगा एवं जीर्ण रोगके रोगीकी उंगली प्रकृति स्वयं पकड़कर उसे फूलोभरे रास्तेसे सुख और आनंदके अप्रत्याशित संसारमे ले जायगी।

यदि हम पानी, प्रकाश, वायु और धरतीकी शक्तिके उस तरहके उपयोगकी जैसा कि मैं रोगियोंके रोगनिवारणार्थ करता हूं केवल बात भी करे तो लोग मारे डरके उसे अनाड़ी चिकित्सा कह उठेंगे जिसका तात्पर्य यह होता है कि प्राकृतिक चिकित्सा बड़ी कष्टसाध्य एवं खतरनाक चिकित्सा है जिसके द्वारा कुछ ही लोग इसके खतरेके बावजूद भी आकस्मिक

रूपसे अच्छे हो सकते है, वरना अधिकतर लोगोको तो इसमें मरना ही होता है।

असलमें तो जल, प्रकाश, वायुसे बेचारे कमजोर रोगीको वंचित रखना और मीठी कडवी जहरीली दवा देना ही लापरवाही, क्रूरता, कठोरता एवं मूर्खताकी चरम सीमा है।

प्रकृतिके हाथो सौपनेसे अधिक मृदुताका व्यवहार रोगीके साथ और क्या किया जा सकता है ? प्रकृतिकी चिकित्सासे अधिक शीघ्रतासे रोगीको कौन स्वास्थ्य प्रदान कर सकता है ?

प्रकृतिकी शरणमे रहनेवाले रोगीके कष्ट शीघ्रतासे दूर होते है, उसकी चिता चली जाती है और उसे नवजीवन एवं नवप्रसन्नता प्राप्त होती है। यदि रोगोका उपचार जल, प्रकाश, वायु, ठंडक एव धरतीकी शक्तिसे किया जाय तो निश्चय ही आजसे बहुत कम लड़के निराश माताके हृदयसे एवं भग्नहृदय पिताके हाथोसे छिनकर ठडी कब्रमे सोयेंगे, दु ख और अभावमे लिपटी विधवाएं और बच्चे भी कम दिखाई देगे तथा लुटे हुए-से शोकमय जीवन बितानेवाले पुरुषोकी भी संख्या कम हो जायगी।

मै इसका पूरा अदाज नही कर पा रहा हूं कि यदि हम अपनेको वायु और धरतीको पूरी तौरसे सौप दे तथा प्राकृतिक भोजन[1] ग्रहण करना आरंभ कर दे तो दुनियासे दुःख और अभाव, कष्ट और निराशा कितनी कम हो जायगी।

---

[1]यदि भोजनमे परिवर्तन किए बिना भी वायु, प्रकाश, धरतीकी शक्ति और प्राकृतिक स्नानका अथवा केवल वायु और प्रकाशका सहारा

पर आज भी मां बड़े प्रेमसे अपने बच्चेको मोटे-मोटे कपड़े पहनाती है, पैरोमे मोजे, सिरपर कटोप और गलेमें गुलूबंद बाधती है तथा अपने पतिको हमेशा कोई-न-कोई कपडा बच्चेके लिए लानेको कहती रहती है। यदि बाहर ठंडी तीखी वायु लोगोको अपनी ठंडकसे ताजगी एवं शक्ति प्रदान करनेका न्यौता देती हुई बहने लगती है तो मा बड़े यत्नसे बच्चोको भारी वायुसे भरे कमरेके अदर ही रखती है। उसे ठडकका डर एक क्षणके लिए भी चैन नही लेने देता। इस प्रकार अपने बच्चेके स्वास्थ्य और कुशलताके बारेमे व्यर्थमे चितित होकर वह अनजानमे अपने हाथों उसकी कब्र खोदती है।

गलत भोजनके कारण शरीरमे रोगकारक द्रव्य अधिकाधिक इकट्ठा होता है और प्रकृतिको वायु और धरतीकी शक्ति-द्वारा शरीरकी जीवनशक्तिको उत्तेजित करके इस विजातीय द्रव्यको निकालनेका मौका नही दिया जाता। यदि प्रकृति किसी प्रकार कोई मौका ढूढ निकालती है तो डाक्टर अपनी जहरीली शीशिया लिए प्रकृतिके इस प्रयासको दबा देनेके लिए तैयार मिलता है। तब कफनसे लिपटा हुआ शरीर घरसे निकलता है। ओह! इस शरीरसे लोगोंको कितनी आशा थी, लोग इसे कितना प्यार करते थे,

---

लिया जाय तो मनुष्यके स्वास्थ्य और सुखमे अभूतपूर्व उन्नति होती है। पर यदि साथ-साथ प्राकृतिक भोजनका, जिसके बारेमे आगे बताऊगा, उपयोग किया जाय तो यह उन्नति बहुत अधिक बढ जाती है।

मृत्युने इन सबपर पानी फेर दिया ! मृत्यु प्राकृतिक है, इसमे कुछ भी बुराई या भद्दापन नही है पर लोग मृतकके पीछे बुरी तरह रोते चलते हैं। श्मशानमे ऐसा आर्तनाद होता है कि जिसे सुनकर आदमी भयभीत हो उठता है, उसपर मुर्दनी छाने लगती है और लगता है उससे कोई बडा पाप हो गया है। मनुष्यके अज्ञानने क्रूरतापूर्वक फिर एक हत्या कर दी ! पर चिताके बुझनेके पहले ही चारो ओरसे यह आवाज सुनाई दे जाती है कि "जो ईश्वर करता है वह अच्छेके लिए ही करता है।"[1]

खैर, हम लोगोने ठडे पानीका उपयोग आरभ कर दिया है और वह दिन शीघ्र ही आनेवाला है जब हम लोग वायु, धरती और सही प्राकृतिक भोजनपर अपनी आस्था जमाएगे। जलसे अधिक ये हमारे विश्वासके अधिकारी है।

तब मनुष्यको नया स्वास्थ्य प्राप्त होगा, उसके जीवनमे सच्चे आनंदका प्रवेश होगा, जवानीकी ताजगी उसके बुढापेतक बनी रहेगी और वह हर प्रकारसे सुखका अधिकारी होगा। तब रोग और शोक, दुःख और कष्ट, अभाव और निराशा

---

[1]यह समझना कि ईश्वर जिसे प्यार करता है उसके लिए रोग और कष्ट भेजता है बहुत बडी और दु खद भूल है। यह ईश्वरके प्यार और बुद्धिमत्ताका मजाक उडाना है। सारे दु ख और कष्ट प्रकृति-पथसे हटने और अपने जीवनको प्राकृतिक नियमोके विरुद्ध चलानेके अपराधका आवश्यक फल और दड है।

उसके पथसे अलग रहेंगे और मृत्यु स्वच्छ आकाशसे बिजलीकी भांति अप्रत्याशितरूपसे गिरकर उसके बागकी नवकलियोको नष्टकर उसके संसारसे आनद और प्रसन्नताको अंतर्हित नही कर सकेगी।

प्राकृतिक चिकित्साका उपादानः मिट्टी

बाइबिलमे लिखा है, "खुदाने धरतीकी धूलसे आदमीका पुतला बनाया, उसके नथनोमे प्राण फूके और वह सजीव प्राणी हो गया।"

तो आदमी मिट्टीका ही बना है।

घाव और हर प्रकारके चर्मरोगके लिए गीली मिट्टी असली प्राकृतिक मरहम है। मिट्टीके बने शरीरकी क्षतिकी पर्ति मिट्टीसे ही हो जाती है।

मैंने कई बार यात्रियोसे सुना है कि बहशी घावो और त्वचाके रोगपर गीली मिट्टीका प्रयोग करते है और शीघ्र रोगसे मुक्ति पा लेते है।

पशु भी घावोपर मिट्टीका ही प्रयोग करते है। हाथीके शरीरपर यदि डाली वगैरहकी रगड़से कभी घाव हो जाता है तो वह तुरत अपनी लारसे मिट्टी गीली करता है और उसे सानकर मुलायम हलुए-सी बनाकर घावपर थोप देता है।

पशुओके रोगोमे गीली मिट्टीका प्रयोग बराबर होता

है। गाय-बैलके खुर पकनेपर उनपर लोग गीली मिट्टी बांधते या उन्हे कीचड़में खड़ा रखते है। हम अब फिरसे जब प्रकृतिके नियमोके अनुसार रहने लगेगे, प्रकृतिकी आवाजपर कान देने लगेगे, तब हमे गीली मिट्टीको अपनाना ही होगा। यदि हमने इसे अपना लिया तो समझ लीजिए हमने एक बड़ी सिद्धि प्राप्त कर ली।

मिट्टीका प्रयोग करनेवालेको किसी प्रकारके घाव, उसके प्रदाह, सूजन तथा ज्वरसे कभी कोई खतरा नही हुआ, न उसके डरसे वे आतंकित ही होते है। यदि मिट्टीका प्रयोग किया जाय तो चीरफाड़की जरूरत ही न रहे, न उनसे किसीको कष्ट ही उठाना पड़े। हर प्रकारके घाव और चर्मरोग मिट्टी-के प्रयोगसे कम-से-कम समयमे बिना किसी कष्ट अथवा दर्दके अच्छे होते है। सर्वथा प्राकृतिक गीली मिट्टीकी पुलटिसके गुण अनंत है। घाव, फोड़े-फुंसी और चर्मरोग तो इसके प्रयोगसे यो ही अच्छे हो जाते है। युद्धमे भी मिट्टीकी पुलटिस विशेष उपयोगी हो सकती है।

शरीरपर किसी तरहकी चोट लग जाय, घाव हो जाय, कट जाय, बर्छी-भालेसे लग जाय, जल जाय, गोली वगैरा लग जाय, सारा शरीर फूल जाय, फोडे-फुंसी, दाद, खाज, रकवत हो जाय, सूजन आ जाय, बिच्छू-बर्रे या साप डस ले, जानवर काट खाय, रक्तमे जहर फैल जाय, घाव दूषित हो जाय, नाक-मुहपर फफोले पड़ जाएं, सेहुआ हो जाय, सिरमे रूसी पड़ जाय, कोढ़ हो जाय, हड्डी टूट जाय, तो रोगके स्थान-

पर मिट्टीको गीली करके या नदी-नालेकी गीली चिकनी मिट्टी बाधनी चाहिए ।

मिट्टी बाधते ही शीतलता आती है, आरामका अनुभव होता है और लाभ तत्काल होता है जिसे देखकर लोगोंको बड़ा आश्चर्य होता है । मिट्टीकी महिमा ऐसी ही है, पर कितने लोग है जो इस महिमासे परिचित हो ?

मिट्टीकी पुलटिसके लिए जिसे मिट्टीकी पट्टी भी कह सकते हैं, गीली-से-गीली मिट्टी (नदी-नालेका कीचड़) लेनी चाहिए और उसे सीधे घावपर (गहरा हो तो घावके अदर भी) रखना चाहिए, फिर ऊपरसे कपड़ा बाध देना चाहिए कि मिट्टी इधर-उधर न सरके । घावपर कपड़ा रखनेके बाद उसपर मिट्टी रखकर घाव और मिट्टीका सीधा संबध होनेसे बचानेकी कोशिश कभी न करनी चाहिए ।

लोगोको मिट्टीका यह प्रयोग आवश्यकतासे अधिक सीधा और सरल प्रतीत होता है । उनका चितित, अस्थिर मस्तिष्क बड़े-बड़े वैज्ञानिक अनुसधानोके बलपर जटिल मशीनोंकी सहायतासे शमनात्मक मरहम बनानेकी कोशिश करता है ।

मिट्टीकी साधारण पुलटिस आदमीको बिना किसी खतरेमे डाले घावको भर देती है, बडी आसानीसे अच्छा कर देती है । मरहम अकसर बहुत हानि पहुंचाते है । मिट्टीके प्रयोगसे कई लोग इसलिए डरते है कि कही मिट्टी गंदी हुई तो खूनमे विष न पहुच जाय । पर जहां कूड़ा-करकट फेका

जाता हो या गंदगी गाडी जाती हो वहांकी मिट्टी कोई लगावेगा ही क्यों ?

शराब, मांस आदि अनेक अप्राकृतिक खाद्योंद्वारा शरीर-म पहुंचनेवाली गंदगीके बारेमे, जिसके कारण अनेक रोग उत्पन्न होते हैं और जो घावोको खतरनाक बना देती है, आज कोई नही सोचता। शरीरमे भरे विषसे कोई नही डरता, लोग डरते हैं उन विषोसे जो बाहरसे शरीरमे अनजानसे पहुच सकते हैं, गोकि इनसे डरनेकी जरा भी जरूरत नही है। मिट्टीद्वारा शरीरमें विष पहुंचनेकी तो जरा भी आशका नही है।

घावपरसे मिट्टीकी पट्टी जब हटाई जाती है तो अकसर उसके साथ बदबूदार तरल पदार्थ निकलता है। मिट्टी इसे घावके चारों तरफसे खीचकर निकाल लाती है। इससे यह आसानीसे समझा जा सकता है कि मिट्टी घावको और उसके चारो ओरकी जगहको दूषित पदार्थसे मुक्त रखती है और इसीलिए मिट्टीके प्रयोगसे घाव शीघ्र और आसानीसे अच्छे होते है।

घावमें मिट्टीद्वारा विष पहुंचनेका कोई डर नही है। यदि मिट्टीद्वारा कुछ गंदगी घावमे पहुच जायगी तो मिट्टी उस गदगीको तुरंत सोखकर नष्ट कर देगी।

कुछ लोग मिट्टीमे खाद-गोबर मिले होनेकी शंका करते है, पर यह तो सभी जानते है कि देहाती घावपर सीधे गोबर रख देते हैं। उनका घाव बिना विषाक्त हुए ठीक हो जाता

है, इसलिए यदि मिट्टीकी पुलटिसमे गोबर हो भी तो किसी प्रकार डरनेकी जरूरत नही है।

रोगोके कीटाणु पृथ्वीपर भरे पड़े है, आजके विज्ञानके इस कथनपर जरा भी ठडे दिलसे विचार किए वगैर लोग इतने घबरा गए हैं कि गीली मिट्टीके प्रयोगकी वात करना ही एक साहसका काम हो गया है। इसके प्रचारपर पुलिस रोक लगा सकती है, पर हमे इन पक्षपातपूर्ण रूढिवादी विचारोसे डरनेकी जरूरत नही है।"

यह कहनेकी जरूरत नही कि मैने अनगिनत वार मिट्टीका प्रयोग किया है और प्रत्येक वार फल आशातीत हुआ है। नुकसान तो कभी किसीको पहुचा ही नही, न एकका भी रक्त विषाक्त हुआ।

वहशी और पशु अपनी नैसर्गिक वृत्तिद्वारा प्रेरित होकर अपने घावोपर मिट्टीका प्रयोग कर उन्हे अच्छा कर लेते है। नैसर्गिक वृत्ति किसीको कुराह नही ले जा सकती। हम बिना किसी संशयके इसके इशारेपर चल सकते है, हमे कभी कोई हानि नही होगी।

यदि घाव बड़ा हो तो हर प्रकारसे प्राकृतिक जीवन व्यतीत करनेकी (मास, मदिरा, वीड़ी, सिगरेट आदि छोडनेकी) आवश्यकता होती है, यह प्रयोगद्वारा सिद्ध हो चुका है।

मिट्टीकी पुलटिस और इसके अनेक प्रकारके प्रयोगोके बारेमें कहना अभी थोड़ा वाकी रह गया है।

मै यह पहले ही बता चुका हू कि मिट्टीमे घुलाने और

चूसनेकी शक्ति है। वह विजातीय द्रव्यको घुलाकर चूस लेती है।

यह बराबर देखा गया है कि लोग बिना पहलेकी जानकारीके डंक मारनेपर या सापके डस लेनेपर नैसर्गिक वृत्तिद्वारा प्रेरित होकर मिट्टीका प्रयोग करते है।

एक बार जब ईसामसीह कही जा रहे थे तो उन्होंने रास्तेमें एक आदमीको देखा जो जन्मसे अंधा था।

जब उन्हे उसके बारेमे ज्ञात हुआ तो उन्होंने जमीनपर थूककर मिट्टी सानी और अधेकी आंखोपर लगा दी।

और कहा, "सैलम तालाबपर जा और अपनी आंखे धो।" यह सुनकर वह गया, आंखे धोई और देखता वापस लौटा।

धरतीमे जो आश्चर्यकारी रोगनाशक गुण है उनके कारण मिट्टीकी पुलटिसको भी विशेष स्थान प्राप्त हो गया। मिट्टीके प्रयोगसे कितने स्थानीय रोग इस प्रकार चले जाते है जैसे उनपर जादू कर दिया हो। यह प्रकृतिकी ही शक्ति है जिससे ये आश्चर्यजनक कार्य सपन्न होते है।

कोई किसी भी रोगका रोगी क्यो न हो, सामान्यतया उसके सारे शरीरकी चिकित्सा जल, प्रकाश, वायु तथा प्राकृतिक भोजनद्वारा होनी अत्यंतावश्यक है। इसी एक उपायद्वारा स्थायी स्वास्थ्यकी प्राप्ति होगी। पर स्थानीय चिकित्साके भी बहुतसे लाभ है। यदि तुरत लाभ प्राप्त करना हो तो रोगी अंगकी चिकित्सा कभी-कभी अत्यतावश्यक हो

जाती है, और इसके लिए वस्तुत. प्राकृतिक साधन मिट्टीसे बढकर दूसरा ज्यादा पुरअसर उपाय नही है ।

अबतक ऐसे अवसरपर जलका प्रयोग होता आया है । रोग-स्थित स्थानपर लोग भीगे कपडेकी पट्टी बाधकर गरमी लानेके लिए ऊपरसे ऊनी कपडा बाधते है । पर मिट्टीकी पुलटिस अधिक प्राकृतिक है और अधिक लाभदायक भी, क्योकि मिट्टी पानी ज्यादा सोखती भी है और जल्द सूखती भी नही। इसके अलावा घुलाने और जज्ब करनेका मिट्टीमे अपना निजी गुण भी है।

प्रेसनिज साहब[1]के बताये पेडूपर गीले कपडेकी पट्टी बाधने और भी जितने प्रकारके गीली पट्टीके प्रयोग है, मिट्टीकी पुलटिसके प्रयोगकी तुलनामे नगण्य है और वह दिन दूर नही है जब लोग उनके बजाय मिट्टीकी पट्टीका ही उपयोग करेंगे ।

मिट्टीकी पट्टी भी प्रेसनिज साहबकी बताई पट्टियोंकी तरह ही बाधी जाती है । अतर केवल यह है कि जलकी जगह गीली पट्टीका प्रयोग होता है । जहातक बन सके मिट्टीको ढीली बनाना चाहिए पर इतनी ढीली नही कि रखनेपर बहने लगे ।

मिट्टीकी पट्टी बनानेके लिए गीली मिट्टी या नदी-

---

[1] प्रेसनिज साहब जस्टके पहले हुए थे । ये रोगोको मिटानेके लिए पानीका प्रयोग भीगी पट्टियोके रूपमें करते थे । —अनुवादक

नालेकी कीचड़ लेकर छाती, आख, गलेके चारों ओर और गरदन, गाल, पैर, पिंडली, पंजे, हाथ, जननेंद्रिय, मूत्राशय, तिल्ली और जिगरके स्थान, रीढ़की हड्डी आदि जहा भी रोग हो फैला देनी चाहिए और फिर उसपर कोइ ऊनी या सूती मोटा कपड़ा रखकर बाध देना चाहिए ताकि मिट्टी अपने स्थानपर बनी रहे। ऊपरवाले कपडेके एक सिरेपर एक डोरी लगी रहे तो बांधनेमे सहूलियत होगी।

जरा सोचने-समझनेवाला कोई भी आदमी आसानीसे जान लगा कि किसी विशेष स्थानपर मिट्टीकी पुलटिस कैसे बांधी जा सकती है। समझना केवल यही रहता है कि गीली मिट्टी अपने स्थानपर कैसे टिकी रक्खी जा सकेगी।

बाधनेकी पट्टी सूती या ऊनी कोई भी हो सकती है। पानीकी पट्टी या गद्दीमें ऊपरस ऊनी पट्टी बांधनेकी जैसी जरूरत होती है वह मिट्टीकी पट्टीमे नही, क्योकि मिट्टी अपने आप गरम हो जाती है। पर जो रोगी कमजोर हो, जिनके शरीरमे गर्मी कम हो, उनके लिए ऊनी पट्टीका प्रयोग बहुत अच्छा है।

मिट्टीकी पुलटिस वह बनी-बनाई दवा है जिसका कोई भी रोग क्यो न हो, किसी तरहका दर्द क्यो न हो तुरंत उपयोग कर सकते है। सदा अभीष्ट फल प्राप्त होगा। कितने ही रोगोमे तत्क्षण आराम पहुंचेगा। रोग कड़ा हो तो मिट्टीकी पुलटिस देरतक रक्खे रहना चाहिए। सर्वरोगहारी मिट्टी रोगोकी एक ही ओषधि है।

रोग शरीरके बाहर हो या भीतर, मिट्टीकी पट्टी गरमीको खीचती है। यदि रोग छातीपर है तो मिट्टीकी पट्टी छातीपर, मूत्राशय और तिल्लीके रोगोमे इनके स्थानमे पेटके ऊपर, डिप्थीरियाके रोगमे गलेके चारो ओर तथा और भी रोगोमे इसी तरह रखनी चाहिए।

सभी रोग पेटकी गडबडीके कारण पैदा होते है, अत. पेडूपर मिट्टीकी पट्टी रखना सभी रोगोमे लाभदायक साबित होगा। ऐसे रोगोमे जिनमे कोई खास स्थान ग्रसित नही होता—जैसे स्नायुदौर्बल्य, शोकातुर होना, आदि रोग जो सारे शरीरके रोग कहे जा सकते है—पेडूपर मिट्टीकी पट्टी रखना लाभकारी है।

पेडूपर मिट्टीकी पट्टी रखनेसे ज्वर तुरत कम होता है। अत इसका उपयोग मीयादी बुखार, लाल बुखार, मोतीभरा, कफज्वर आदि-से नये रोगोमे और किसी भी कारणमे गिरे स्वास्थ्यमे अवश्य करना चाहिए।

मिट्टीकी पट्टी पेडपर घटोतक पडी रह सकती है, अत यह कटिस्नानकी बनिस्बत, जो एक बारमे केवल कुछ मिनटोके लिए ही लिया जाता है, पेटसे ज्यादा गरमी खीचती है। पर क्योकि मिट्टीकी पट्टीके बाद पेडूको साफ करनेके लिए उसे धोना ही पड़ता ह, अतः मिट्टीकी पट्टीके बाद बहुत थोड़े समयका एक कटिस्नान हमेशा ले लेना चाहिए। नहान यदि नही लिया जाय नो भी कोई हरज नही है।

मिट्टीकी पटटी उतारनेके बाद उसपर हाथ रखनेसे

मालूम हो जायगा कि मिट्टीकी पट्टी पेड़ू या फोड़ेकी कितनी गरमी खींचती है।

सारे बदनमे धूप लेनी हो तो मिट्टी पोतनेके बाद धूपमे लेटकर हम अपने बदनपर अहसान करेंगे। इस प्रकार शरीरमे धूप लगनेसे चमड़ी काली नही होगी, न जलेगी। धूप-नहान लेते वक्त यदि केवल मिट्टी मिला पानी ही शरीरपर चुपड़ लिया जाय तो वह जलनेसे बचेगा।

मिट्टीकी पट्टी आवश्यकतानुसार घंटो रखी रह सकती है और दिनमे कई बार बदली भी जा सकती है। रोग कड़ा हो तो पट्टी शुरूमे जल्दी-जल्दी बदलना चाहिए। सोते समय रातको मिट्टीकी पट्टी बांधी जा सकती है और तकलीफ न होती हो तो पट्टी रातभर बधी रह सकती है। जब पट्टी बहुत गरम हो जाय तो उसे उतारकर दूसरी लगा देनी चाहिए।

जहा आदमी रहता है वहांकी मिट्टी जैसी भी हो वह मिट्टीकी पट्टी बनानेके लिए उपयोगी होती है। चिकनी मिट्टी आसानीसे चिपकती है और इससे लाभ कुछ विशेष भी होता है। अगर मिले तो चिकनी मिट्टीका ही उपयोग करना चाहिए।

सूजन, फेफड़े, गले और कठनलिका, आख, नाकके रोग, गठिया, वात-रोग, रूसी, चर्मरोग, पेटके और जननेंद्रियसंबधी रोग, मूत्राशय और यकृतसंबंधी रोग, नसोकी पीड़ा, हर प्रकारके दर्द, सिरदर्द, दांतका दर्द आदि जैसे अनगिनत रोगोमें,

जो आये दिन होते रहते है, मिट्टीकी पट्टीका सहारा विश्वास-पूर्वक लिया जा सकता है।

दर्दका तो मिट्टी निश्चय और निरापद इलाज है, क्योंकि दर्दके कारण विजातीय द्रव्यको मिट्टीकी पुलटिस खीच लेती है और दर्द हमेशाके लिए चला जाता है। फोडे, फुसी, सूजन वगैरहके लिए जिन अप्राकृतिक ओषधियोंका उपयोग किया जाता है वे रोगको अच्छा करनेके साथ ही विषको शरीरके अंदर पहुचाती है और इस प्रकार घातक सिद्ध होती है।

दर्द मिटानेवाली दवाका उपयोग कर दांतसाज दांतको ही खतम कर देता है। ऐसी दवाओसे बचना चाहिए। अगर दांतका दर्द बिना दांत खोये (उखड़वाये) चला जाय तो फिर उस लाभका क्या कहना।

अगर एक बार मिट्टी रखनेसे दर्द न चला जाय तो उसे तबतक बदलते रहना चाहिए जबतक इच्छित लाभ प्राप्त न हो जाय।

गरदनपर मिट्टीकी पट्टी बांधनेसे सिर-दर्दमे विशेष लाभ होता है।

बिजली गिर जानेपर या सांपका विष चढ जानेपर या किसी प्रकारके घातक रोगसे एकाएक आक्रांत हो जानेपर आदमियोको सिर बाहर रखकर समूचा जमीनमे गाड़ दिया गया है। कभी-कभी कोई खास अंग विशेष तौरपर हाथ-पांव ही गाड़े गये है। इससे रोगी जल्द अच्छा हो गया और बच गया है। आदमीको समूचा या उसका कोई विशेष अंग गाड़ते

वक्त ऋतुकी उपयुक्ततापर ध्यान रखना चाहिए। हैजेके उग्र रोगी तथा मीयादी बुखारके रोगीको गाड़ना श्रेष्ठतर साधन है। जिस मिट्टीमे रोगी गाड़ा जाय वह बहुत खुश्क न होनी चाहिए।

शरीरके जिस अगकी चिकित्सा मिट्टीकी पुलटिससे की जाती है अथवा सारा शरीर या शरीरका जो अग मिट्टीमे गाड़ा जाता है, उसे मिट्टी शक्तिशाली और तरोताजा बना देती है, यह देखकर मिट्टीका महान चिकित्सक गुण स्पष्ट हो जाता है। जिनकी किसी कारणवश एकाएक मृत्यु हो गई है वे मिट्टीमे गाड़ देनेसे पुनर्जीवित हो गये है।

सूर्यके प्रकाशमे शरीरको बालूमे गाड़नेकी भी सिफारिश की जा सकती है। सूर्य बालूको गरम कर देता है, अत. इस क्रियाका लाभ बढ जाता है।

हमेशा मिट्टीकी ठढी पुलटिसका ही प्रयोग करना चाहिए, उसे अप्राकृतिक तरीकेसे आगपर कभी गरम न करना चाहिए। गरम पानी पीकर देखिए। तुरंत मालूम हो जायगा कि उसमें न तो ताजगी है न शक्तिप्रदायक गुण। इस तरह पुलटिसको जब आगपर गरम कर देते है तो पुलटिसमे लगा पानी और मिट्टी दोनोकी रोगनाशक और शक्तिदायक शक्ति नष्ट हो जाती है। गुनगुने गरम या खूब गरम पानीके प्रयोगसे भी विजातीय द्रव्यको घुलाया जा सकता है और रोगसे कथित मुक्ति पाई जा सकती है। इस रीतिसे शरीर कमजोर हो जाता है और उसे बड़ी क्षति पहुचती है। यहातक कि हानिका

पल्ला लाभसे बहुत ऊंचा पड़ता है। इसमें तो कोई संदेह नहीं कि हानिकी प्रतीति तुरंत नहीं होती, पर वह लगड़ाती हुई धीरे-धीरे आती है और कुछ देर बाद पहुंच ही जाती है।

गरम पानी या गरम पुलटिसके प्रयोगके तुरंत बाद ठंढे जलके स्नान, फुहारे आदिका प्रयोगकर हम गरम प्रयोगसे हुई क्षतिको मिटा नहीं सकते।

इसी तरहकी हानि गरम वाष्पके स्नानसे भी होती है।

मिट्टी अथवा कीचड़ लगानेसे त्वचा बहुत अच्छी तरह साफ होती है। शरीरपर बराबर मिट्टी लगाकर रगड़कर धोते रहनेसे त्वचा पूर्णतया स्वच्छ होनेके साथ-साथ मुलायम और चिकनी हो जाती है।

इस विलक्षण ओषधि मिट्टीसे रोग जिस तरह आसानी और आरामसे तथा जितने निश्चित रूपसे जाते हैं उसके लिए मिट्टीके प्रयोगकी लाख-लाख प्रशंसा करनी चाहिए और इसका जोरदार प्रचार होना चाहिए। मिट्टीकी पुलटिस बनाकर और उसका प्रयोग करनेकी विधिकी अबतक उपेक्षा (केवल फादर कनाइप कभी-कभी मिट्टीकी पुलटिसकी राय देते थे) ही की जा रही है। मैंने बहुत पहले ही मिट्टीके प्रति अपने विश्वासकी घोषणा की थी कि मिट्टीका भविष्य महान है और इसका घर-घर प्रचार हो जायगा। जहां जब जरूरत होगी यह मिलेगी और आशातीत लाभ प्रदान करेगी। इसके प्रयोगसे जो फल निकले हैं उन्होंने मेरे विश्वासकी पुष्टि की है।

मिट्टीकी पुलटिस और मिट्टीकी पट्टीके प्रयोगसे

आश्चर्यजनक रीतिसे रोगमुक्त हुए लोगोंकी रिपोर्ट बराबर आ रही है। सभी लोग इन प्रयोगोंकी जोरदार शब्दोंमें प्रशंसा करते हैं। अनेकोंने मुझे यह भी लिखा है कि वे मेरे विचारोंका हृदयसे प्रचार कर रहे हैं।

इस प्राचीन तथा सीधी और सरल प्राकृतिक ओषधिको इसके योग्य सम्मान और पुरस्कार मिले, यही मेरी अभिलाषा है। तब प्रकृतिकी सबसे बड़ी ओषधिपर मनुष्य-जातिका पूर्ण अधिकार हो जायगा।

मनुष्यका प्राकृतिक आहार

हजारों बरससे विज्ञान इस बातका पता लगानेकी कोशिश कर रहा है कि मानवदेहके पोषणके लिए किन चीजोंकी आवश्यकता है—इंसानकी सही खूराक क्या है। जीवन-शास्त्र, रसायन-शास्त्र, शरीर-शास्त्र, तंतु-विज्ञान (हिस्टालोजी), मानव विज्ञान और विज्ञानकी दूसरी शाखाओंमें इस गरजसे छानबीन की जा रही है।

पर एक हजार सालकी खोजका नतीजा क्या रहा? एक बहुत बड़े और प्रसिद्ध प्रोफेसरका कहना है कि सच्चा विज्ञान-सम्मत आहार आज भी हमारे लिए अनहोनी वस्तु है। सैकड़ों सालतक सिर मारते रहनेपर भी विज्ञान अभी यह नहीं जान पाया है कि मनुष्यको क्या खाना और क्या पीना चाहिए। इस

विफलताके कारण वह मानते है कि विज्ञानमे इस कामकी योग्यता ही नही है। पर दुर्भाग्यवश दुनिया आज भी उसकी इस अयोग्यताकी कायल नही है।

विज्ञान तो अभी उन बातोको भी नही जान पाया है जिन्हें आदि युगके मनुष्योने बिना किसी अध्ययन या अनुसधानके जान लिया था। वह गलत-से-गलत और अति अनर्थकारी सिद्धांतोंकी घोषणा करता जा रहा है और कभी अपनी गलतीको देखता-समझता नही।

अपने समयके महाविद्वानोके विषयमे हम बाइबिलके इस वचनको दुहरा सकते हैं कि "अपने आपको बुद्धिमान कहते हुए वे मूर्ख बन गये।"

जो आदमी सच्चे ज्ञानके लिए पुनः प्रकृतिकी पुस्तकके पन्ने उलटता है, और यो सुखी और स्वस्थ रहकर जीनेके लिए जो कुछ उसे जानना चाहिए उसे सीधे-सादे ढगसे जान लेता है उसे उन लोगोके प्रयासपर हँसी आती है जो सदा अध्ययन, अनुसंधान और प्रयोगोमे तन-मनसे लगे रहते है, पर जिनकी हर खोजका फल कोई बेतुका असंगत सिद्धांतमात्र होता है।

पर इन वैज्ञानिक अनुसधानोंके बावजूद जो बात सचमुच मनुष्यके सुख-स्वास्थ्यकी वृद्धि और उसका कल्याण करनेवाली है वह दिन-दिन उसकी आखोसे ओझल होनी जा रही है। पर जो आदमी फिरसे प्रकृतिके आदेशका अनुसरण करता है, उसके बताये हुए रास्तेपर चलता है, वह देखता है कि सब पेड-पौधे और पशु-पक्षी जो वस्तुत प्रकृतिके आश्रयमे रहते है, रोग और

दु:ख-दैन्य उन्हे नही सताते। उसको इस बातका दृढ विश्वास हो जाता है कि मै स्वास्थ्य और आत्मकल्याणके सही रास्तेपर हू। सत्-असत्की जिस उलझन और बेचैनीमे आजकी दुनिया थपेड़े और गोते खा रही है वे उसे छू भी नही पाती। भले-बुरे, हितकर-अहितकरके क्षुद्र विवादको वह दूरसे चित्ताके पूर्ण समाधान और प्रसन्नताके साथ देखता है। सही रास्तेपर होनेका अटल विश्वास स्वय ही सुख-स्वास्थ्य देनेवाली बहुत बड़ी शक्ति है।

मनुष्यका प्राकृतिक आहार क्या है, यह आज एक उलझा हुआ मसला हो गया है और इससे हमारे सही रास्तेसे बहक जानेका खतरा पैदा हो गया है। कहा जाता है कि हमारे शरीरको अल्ब्यूमेन, नाइट्रोजन, पोषक नमक आदिकी अनिवार्य आवश्यकता है।

फिर भी इतना हम जरूर जानते हैं कि हमारी सच्ची खूराक वही है जो अपने प्राकृतिक रूपमे हमारी जीभको रुचती है और हमारी सहज बुद्धि जिसके ग्रहणके लिए हमे प्रेरित करती है। हमारी खूराकमे किन चीजोका होना जरूरी है और जो कुछ हम खाते है वह किस तरह पचकर रक्तमास बनता है, इस विषयमें पक्के तौरपर हम कुछ भी नही जानते। यह हमारे लिए अधिकाशमे प्रकृतिका एक रहस्य है और सदा रहेगा।

हमारा आहार क्या होना चाहिए और हमारे शरीरके सम्यक् पोषणके लिए किन तत्त्वोकी आवश्यकता होती है, इसके विषयमें विज्ञानने जो 'सिद्धात' हमारे सामने रखे है उनसे अधिक

बेतुकी बाते इनसानी दिमागसे अबतक नही उपजी। यही कारण है कि ये 'सिद्धात' रोज बदलते रहते है।

अत. इस मामलेमे हमें खास तौरसे दृढ रहना चाहिए और केवल प्रकृतिको अपने जीवन-पथका प्रदर्शक मानना, केवल उसीकी आवाजका अनुसरण करना चाहिए।

चिड़ियेका बच्चा जब घोसलेसे बाहर निकलकर पहली वार बाहरकी दुनियाके दर्शन करता है तो क्या उसके मनमे छन-भर भी इसकी उलझन होती है कि उसे अपनी भूख किस चीजसे बुझानी चाहिए? सहज बुद्धि उसे राह बताती है और वह बिना किसी परेशानीके अपनी खूराक पा जाता है।

हिरनका बच्चा घास खाता है, गिलहरीका बच्चा मीगीं-वाले फलोकी तलाश करता है और लोमड़ीका बच्चा जनमते ही चूहे-खरगोशके पीछे दौड़ने लगता है।

जानवर जन्मसे ही जहरीले पौधो और दूसरी हानिकर चीजोसे परहेज करने लगता है।

मनुष्य जब प्रकृतिके आदेशका अचूक अनुसरण करता था, जब केवल सहज बुद्धि और रुचि अपनी खूराकके पहचाननेमें उसकी पथप्रदर्शक थी, उस आदि युगमे उसने वनस्पतिजगतकी सबसे सुदर और उत्तम वस्तु–फलको अपने आहारके लिए चुना था। वह घास तो संभवतः चर न सकता था, और छोटे-मोटे जानवरोको पकडकर उनका मास नोचना उसने शायद पसंद न किया हो।

बाइबिल कहती है—"और खुदाने कहा, देखो मैंने हर एक

वीजधारी वनस्पतिको जो सारी धरतीपर व्याप्त है और हर एक पेड़को जिसमे बीज उपजानेवाला फल है तुम्हे दिया। वह तुम्हारी खूराक होगा।"

'वीजधारी वनस्पति' और 'वीज उपजानेवाले वृक्ष'का यहां विशेपरूपसे उल्लेख हुआ है। भाव यह है कि फल उपजानेवाले पेड़ मनुष्यका आहार बनाए गए। पृथ्वीपर रहनेवाले पशु-पक्षियोको, उसके कथनानुसार 'हर एक हरे पौधे' का आहार दिया गया।

इस उक्तिसे हम यह अनुमान तो कर ही नही सकते कि पेड़ खुद ही इनसानकी खूराक वननेके लिए पैदा किए गए।

दुनियाके जिस-जिस हिस्सेमें इंसान रहा, प्रकृति उसके लिए इफरातसे फल-मेवे पैदा करती रही, मनुष्यको उनके उपजानेमे हाथ-पांव नही हिलाने पड़ते थे। हां, सव कही एक ही तरहके फल नही पैदा होते थे, देश और जलवायुके भेदसे वे भिन्न-भिन्न प्रकारके होते थे।

भूमडलके इस भाग (यूरोप) मे मनुष्यकी पहली खूराक जंगलके वेर, मकोय, करौदे-जैसे फल थे। पीछे वह पेड़ोमे लगनेवाले फल भी खाने लगा और अखरोट, बादाम-जैसे मीगीवाले फल या मग्ज उसकी खास खूराक हो गए। हर चीज जो कच्ची, शुद्ध, अविकृत दशामें उसे अच्छी लगती थी उसके भोजनकी वस्तु वन गई।'

'जो चीजे कच्ची प्राकृतिक दशामे हमारी जीभको रुचती हैं

मीगी या गिरीवाले फल सालके बड़े भागमें उपलब्ध हो सकते है, प्रकृतिने ऐसा प्रबध कर दिया है कि डालियोसे वह जमीनपर या सूखे पत्तोमे झडनेके बाद लवे अरसेतक अच्छी हालतमे रह सकें।

जबतक जगलोकी 'सफाई' नही हुई थी और प्रकृति अबाधित रूपसे अपना काम कर सकती थी तबतक मग्जवाले और गूदेदार फल हर जगह इतनी इफरातसे उपजते थे कि मनुष्यको उनसे पूरा भोजन मिल जाय। हमारी परम ममतामयी माता प्रकृतिने अपनी सभी सतानोके लिए, उनकी सृष्टिके समयसे ही भोजनका प्रबध कर रखा है, और अपने लाडले बेटे मनुष्यके सामने तो उसने शाहाना दस्तरख्वान बिछा दिया है।[1]

इस रीतिसे हम आसानीसे और पक्के तौरपर जान सकते हैं कि हमारी सही खूराक क्या है। पर हम सही रास्तेसे फिर बहक न जायं इसकी सावधानी हमें रखनी होगी। कारण यह कि ज्यो ही हम उस रास्तेपर लगते हैं चारो ओरसे हमपर एत-

---

केवल वही हमारा प्राकृतिक भोजन मानी जा सकती है; क्योकि बनावटी तौरपर सेक-बघारकर उबकाई पैदा करनेवाली सर्वथा अप्राकृतिक चीजे भी जबानको अच्छी लगनेवाली बनाई जा सकती है। रसनाको धोका देना आसान है।

[1]यह सुविदित बात है कि पुराने जमानेके जर्मन शुरू-शुरूमे केवल जगली फल खाकर रहते थे। शिकार करना उन्होने बहुत पीछे सीखा। पर उसके बाद भी फल-मेवे अरसेतक उनका मुख्य भोजन बने रहे।

राज उठाए जाने लगते है। ऐसे आदमी तो सदा रहते ही है जो यह समझते है कि प्रकृति और उसकी वाणीकी बनिस्बत वह हमारी ज्यादा अच्छी रहनुमाई कर सकते है।

लोग जब पहली बार सुनते है कि मनुष्यकी सही खूराक क्या है तब आम तौरसे बहुत सशंक हो उठते है और सोचते है कि हमे आजसे ही यह आहार आरंभ कर देना चाहिए। लोगोके आजके खान-पानपर शका उठाकर हम उनके हृदयके अति कोमल और दर्दभरे स्थानको स्पर्श करते है। अत. आहारके विषयमे अपने विचार, मै वहुत ही सयत भाषामे प्रकट करूंगा और कोई ऐसी बात न कहूंगा जिसे सुनकर कोई आदमी हिम्मत हार दे।

हर आदमीको सबसे पहले तो पानी, हवा, सूरजकी रोशनी और मिट्टीकी ओर इस पुस्तकमे बताए हुए रास्तेसे, लौटना चाहिए। जो कोई तुरत इस क्रमके साथ पूरा प्राकृतिक आहार न चला सके वह कम-से-कम इतना तो कर सकता है कि अपने भोजनको जितना सादा बना सकता हो बना ले और खासकर हानिकर और नफासतकी चीजोसे परहेज करे।

इन सबसे ज्यादा जरूरी है मांसभक्षणके विषयमे अपनी जीभको काबूमें रखना। नमक लगाकर या धुएंमे सुखाकर रखा हुआ मांस अति हानिकर है। सूअरका मास और कीमा भरकर वनाई हुई चीजे तो सबसे खराब होती है।

मांसके वदलेमे हम दूधको अधिक मात्रामे ले सकते है। दूधको कच्चा, विना उबाले ही पीना या दही, मट्ठे, पनीर आदिके रूपमे खाना चाहिए।

अंडा या अडेके योगसे बनी हुई चीजे खानेकी सलाह मै किसीको नही दे सकता।

आलू, फलीदार तरकारियां (सेम, कौच इत्यादि) दाल और रोटी मनुष्यकी प्राकृतिक खूराक नही है, यह बात तो बार-बार कही जा चुकी है। अतः इन चीजोंको थोड़ा ही खाना चाहिए।

आलू और फलीदार तरकारियोंके बदले हमे हरी तरकारियां और सलाद पसंद करने चाहिए। ताजा सब्जियोंमेंसे कुछको—हरी मटर, गाजर, शलजम, पालक आदिको—कच्चा ही खाना चाहिए।

रोटी-दाल, फलीदार तरकारियां और आलू दहसे मशक्कत करनेवाले मजदूरके लिए कम हानिकर है, पर जो लोग शारीरिक श्रम नही करते, कलम और दिमागसे रोटी कमाते हैं उन्हे चाहिए तो इन चीजोसे पूरा परहेज रखना, पर यह न हो सके तो इन्हे थोड़ी मात्रामे ही खाना चाहिए। बीमारीके दिनोमें तो यह परहेज खास तौरसे जरूरी है।

ताजा फल और मग्जवाले मेवे सदा हमारे दस्तरख्वानपर होने चाहिए।

केक, मिठाइयां, चाकलेट, कहवा, हलवा, खोया और उससे बने हुए मिष्टान्न आदि हमेशा हज्मको खराब करते हैं और इस कारण स्वास्थ्यको बिगाडनेवाले है।

शराब तो वह भयावह पिशाच है जो आज सारी दुनियामें हर वक्त ऊधम मचा रहा है और सर्वत्र मानव-जातिके सुख-स्वास्थ्यकी बलि ले रहा है। अतः उचित तो यह है कि आदमी

इस विलासितासे बिलकुल ही दूर रहे पर यह न निभ सके तो वहुत ही थोड़ी, दवाकी मात्रामें ले।

तंबाकू भी हमारा दगा देनेवाला दोस्त है, और उससे होशियार रहनेकी चेतावनी मैं आपको पूरे जोरसे देता हूं।

चाय, कहवा और उत्तेजना पैदा करनेवाली दूसरी चीजें भी सर्वत्र मनुष्यके स्वास्थ्यको नष्ट कर रही हैं। ये चीजें धीरे-धीरे काम करनेवाले जहर हैं इसलिए इनकी बुराई जल्दी हमारी पकड़में नहीं आती।

कहवेसे मैं अपने पाठकोंको खास तौरसे सावधान कर देना चाहता हूं; क्योंकि आज उसका रिवाज आम है। उसके बजाय हम जौ या गेहूंके सत्तका कहवा इस्तेमाल कर सकते हैं।

पर हमारा प्राकृतिक पय तो एकमात्र जल है। वनका हिरन केवल पानी ही पीता है।

वैसे तो पीनेकी सभी चीजें हमें कम-से-कम लेनी चाहिए। शोरबा और तरल खाद्य बार-बार या अधिक मात्रामें हमारे सामने नहीं रखे जाने चाहिए। प्रकृति हमें ठोस चीजें खानेका आदेश करती है जिन्हें चबाना जरूरी होता है।

पर अगर पेय और पतले खाद्योंसे हमें बचना है तो यह जरूरी है कि हमारे भोजनमें अधिक मिर्च-मसाला न डाला जाय। नमक और सभी मसाले स्वास्थ्यके शत्रु हैं और कितने ही कठिन रोगों (पेटका कैंसर इत्यादि) इनके कारण होते हैं।

मैं भोजनके मामलेमें लोगोंकी कमजोरियोंका काफी लिहाज कर चुका। वह फिलहाल इतना भी कर दें कि अपनी

खूराकको सादी बनाना शुरू कर दे, प्रकृतिविरुद्ध आहारमे कुछ कमी कर दें, फल-मेवोमे स्वाद लेने लगे और वे उनकी मेज या दस्तरख्वानपर रखे जाने लगे तो हमे उन्हे अपनी राह जाने देना चाहिए।

पर अब हमे उनको राह बतानी है जो प्रकृतिका पूर्ण अनुसरण करना चाहते है, जो फलको अपने भोजनमे गौण नही, मुख्य स्थान देना चाहते है। बल्कि केवल फल ही खाकर रहना चाहते है। मै जानता हू कि आज भी ऐसे लोगोकी तादाद कितनी बड़ी है जो बडी प्रसन्नता और उत्साहके साथ इस रास्तेपर चलनेको उद्यत होगे। प्रकृतिकी ओर लौटनेका वक्त आया ही चाहता है।

हम प्रकृतिको अविकल और अबाधित रूपमे अपना काम करने दे तो हमारी सहज बुद्धि, हमारी रुचि और हमारी अतरात्मा हमे केवल रसदार और अखरोट, बादाम-जैसे मीगी या गिरीवाले फलोको ही अपनी खूराक बनानेकी प्रेरणा करेगे।

मीगीदार फलोके अतिरिक्त जगलमे प्रकृतिके उद्यानमें उपजनेवाले रसीले गूदेदार फल मनुष्यके लिए सबसे अच्छी खूराक है। इनके सहायक रूपमे हमारे बागोमें पैदा होनेवाले लुभावने सुस्वादु फल सेब, नासपाती, अगूर, खुबानी, शफतालू, बेर आदि है। गरम देशोंके फल बादाम, छुहारे, खजूर, अजीर, सतरे, खरबूजे, अमरूद, शरीफा, चीकू, केले आदिको भी हम इस सूचीमे शामिल कर सकते है।

मनुष्य ! देख, सृष्टिकर्ताने तेरे लिए कैसा सुंदर दस्तरख्वान सजा दिया है।

फल वह भोजन है जो भगवान हमें देता है, जिसे उसका सूर्य पकाता है। काश अब भी मनुष्य इस दिव्य देनको समझता और उसके अनादरके पापसे बचता ! इस न्यामतको अस्वीकार करके उसने प्रकृति और परमेश्वरके प्रति भारी अपराध किया है और इसका दंड अनिवार्य है--रोग और सैकड़ों प्रकारके दु.ख-दैन्य।

किसी फलदार दरख्तको सुदर फलोंसे लदा देखकर क्या आपका दिल खुशीसे खिल नही उठता ? इस दिव्य दृश्यमें क्या आपको प्रकृतिकी आवाज सुनाई नही देती ?

पकाये हुए, आलू, रोटी, दाल, जानवरोके मुर्दे इत्यादि मन और आंखोको मोह लेनेवाले ताजा फलोंके सामने क्या चीज है ? ये पकाये हुए खाद्य मुर्दा और स्वादरहित होते है। बिना नमक-मसाला मिलाये जीभको वे रुचते ही नही। फलोमे स्वाद है, दिव्य गंध है, ताजगी और जीवन है।

अप्राकृतिक, पकाये हुए खाद्य हमारी आंतोके लिए कष्टप्रद बोझ होते है, हमारे तन-मनको शिथिल, बेदम और जीवनको भारभूत बना देते है। पर फल हमारी दुर्बल रोगजर्जर देहमे फिरसे शुद्ध रक्तका संचार करते है, उसे प्राण और बल देते है।

मनुष्य रोगनाशक दवाओकी तलाशमे क्यो हैरान होता है ? फलमे उसे रोगमुक्त कर देनेका गुण है। प्रकृति यह बनी-

बनायी दवा उसे दे रही है। फल मीठे, स्वादिष्ट होते हैं और उसके दुःख-दर्दकी अचूक ओषधि है। फल देवताओंका भोग है, उसमे अमृत बसता है। मनुष्य क्यों प्रकृतिके दिये हुए इस संजीवन रस, इस अति मधुर महौषधिको ठुकराता और जहरसे कड़वे काढे अर्क पकाता-उतारता और अपने आपको उन्हें-घूटनेके लिए मजबूर करता है, जिसका फल उसे केवल अवर्णनीय दु ख-दर्दके रूपमे मिलता है।

गोलियां, अर्क और काढे रोगको दूर नही करते।

"तू व्यर्थ ही बहुत-सी दवाएं इस्तेमाल करेगा; क्योकि तू रोगमुक्त न होगा।"

इसान इस बातको नही जानता कि गोलियां, अर्क और मरहम उसकी तंदुरुस्तीको नाश कर रहे है और यह बडे दु खकी बात है। दुर्भाग्यवश जहरका असर अकसर हमे धोखा देने-वाला होता है।

प्रकृति फलको अपने आप उत्पन्न करती है, या यो कहिए कि उसे उपजानेमे इसानका ज्यादा एहसान नही लेती। और अप्राकृतिक आहारको पैदा करनेके लिए मनुष्यको खेतो और बागोमे लगातार कडी मेहनत करनी पडती है। अपना वर्तमान आहार गेहू, चावल, दाल, आलू आदि उपजानेके लिए हमे सख्त मेहनत और परेशानी उठानी पडती है, प्रकृतिको इन्हें पैदा करनेके लिए मजबूर करना पडता है।

ऐसी दशामे हमारे लिए यह समझना और बताना कठिन है कि मनुष्य अपने प्राकृतिक भोजन फलका अनादर क्यो करता

है, उसकी यह मूर्खता हमारे लिए वहुत वडी पहेली है जिसे वूझने-में हमारी वुद्धि असमर्थ है।

फलको भी हमे उसी दशामे खाना चाहिए जिसमे प्रकृति उसे पैदा करती है। उसे सुखाने, पकाने या विगड़नेसे वचानेके लिए नमक-मसाला लगानेसे स्वभावतः उसका गुण घट जाता है। फलोका रस निकालना भी प्रकृतिका अनुसरण नही है, क्योकि कृत्रिम विधिसे निकाला हुआ रस उतना स्वास्थ्यकर, उतना पोषक नही होता जितना वह फलकी स्वाभाविक दशामे उसके साथ सेवन करनेसे होता है।

अत· मनुष्यकी खूराकमे गिरीवाले फल सबसे ज्यादा जरूरी चीज माने जाने चाहिए। इस वर्गके फल ही मनुष्यको गरमी और शक्ति देते है।

जिसके दात इस लायक न हो कि बादाम, पिस्ते; अखरोट आदिको अच्छी तरह चवाकर खा सके उसे उन्हे घिस या पीसकर खाना चाहिए। उन्हे घिसनेकी कले आजकल विसातवालेकी हर अच्छी दुकानमे मिल सकती है।

मै आम तौरपर 'हेजेलनट'[1] को ज्यादा पसंद करता हू; क्योकि वह कुदरती तौरपर पैदा हो सकता है। पर अखरोट और दूसरे मग्ज भी वहुत अच्छे रहेगे। छुहारे, खजूर और अख-रोट, वादाम आदिको साथ खाना वहुत मजेदार होता है।

कच्चा, विना उवाला हुआ दूध भी हमारी भोज्य वस्तुओंकी

---

[1] एक तरहका अखरोट।

सूचीमे शामिल किया जा सकता है। मक्खन और नरम पनीर या दही भी लिया जा सकता है। हो सके तो दोनोको विना नमक मिलाये ही खाये। शुद्ध फलाहार एकवारगी चलाना सवके लिए कठिन है, विरले ही इस व्रतको निभा सकते है। इसलिए हमे साधारण आहार और फलाहारके वीचकी मंजिल दूध, मक्खन और रोटीके सहारे विता लेनेकी सलाह देनी होगी, इनके साथ थोडी हरी तरकारी लेना भी जरूरी हो सकता है। स्तन्यपायी पशु (गाय, घोड़ा इत्यादि) का वच्चा भी जव शिशुके आहारसे वयस्क प्राणीके आहारपर आने लगता है तो कुछ दिन उसके साथ-साथ माके दूध भी पीता रहता है। जान पडता है सभ्य स्त्री-पुरुषके विगडे हुए पेटको भी इसी तरह धीरे-धीरे फिर शुद्ध प्राकृतिक आहारपर ले जाना होगा। इस सक्रमणके लिए दूध मुझे सवसे अच्छी चीज मालूम होता है।

थोडी-सी रोटी भी, त्याज्य पर कुछ कालके लिए अनिवार्य मानकर खायी जा सकती है। रोटी चोकर समेत गेहूके आटेकी हो तो ज्यादा अच्छी होगी। हमारी मामूली डवल रोटी वहुत ही दुष्पाच्य होती है, इसलिए मै उसे खानेकी सलाह नही दे सकता। मक्खन, रोटी और अजीर वहुत ही अच्छा भोजन है।

उवले फल, मुरब्बे आदिके रूपमे सुरक्षित फल और रसभरी आदि ताजा फल भी दहीके साथ खाना वहुत अच्छा भोजन है। ऐसी चीजे फलाहार आरभ करनेवालोके लिए खास तौरसे अच्छी है। इससे उनका भोजन एकवारगी वहुत सादा न हो जायगा।

जो लोग पकाये हुए भोजनको एकबारगी न छोड़ सकें वे एक वक्त घी, मक्खन या नारियलके तेलमे पकायी हुई तरकारियां और दो-चार आलू भी ले सकते है।

इस भोजन-व्यवस्थामे सव तरहके गिरीदार और गूदेदार फल, दूध, मक्खन, रोटी और उबाली हुई सब्जियोके लेनेकी छूटके साथ फलाहार आसानीसे चलाया जा सकता है। इस व्यवस्थामे आपके घरवालोंको स्वाद और स्वास्थ्य दोनोका सुख मिलेगा। इस प्रकारके भोजन-सुधारकी आज सख्त जरूरत है। ऊची श्रेणीवालोको इस सुधारमे अगुआ होना चाहिए। इस तरहकी खूराकको उन्हे रोगीके पथ्यरूपमे नही वल्कि नित्यके सामान्य भोजनके रूपमे अपनाना चाहिए।

गरीव श्रेणीके लोग पैसेवालोको गोश्त, शराब, मिठाई, मलाई, सिगरेट, चाय आदि खाते-पीते देखते है तो इसे पैसेका सुख समझते है और उनके अंदर भी उसके भोगकी लालसा भडक उठती है। पर इस सुखकी स्पर्धा करके वे धनिक वर्गके विशेष रोगों और दुर्दशामे भी हिस्सा बंटानेकी कोशिश कर रहे है। अत ऊपरके दरजेवालोंको चाहिए कि वे इन अप्राकृतिक पदार्थोके भोजन और सारी घातक विलासिताओंके सुखका त्याग कर नीची श्रेणीवालोके सामने एक अच्छी मिसाल पेश करे।

पर सच्चे अर्थमे प्रकृतिकी ओर लौटना गरीव-अमीर, छोटे-वड़े सभीके लिए सही रास्ता है, अगर वे चाहते हो कि उन्हें फिर स्वास्थ्य और सुखकर जीवन मिले। प्रकृति वर्ग या

दरजेका भेद करना नही जानती। पर आजकी स्थितिमें प्रकृतिकी ओर सामान्य रूपसे लौटनेके क्रम, अतिशय अप्राकृतिक रहन-सहनके बाद प्रकृतिके पुन. अनुसरणकी तथोक्त प्रतिक्रियाका प्रारंभ ऊची श्रेणीमे ही होना चाहिए '

यगबार्नमे[1] मैने देखा कि समुचित सहायता और परिवर्तन-कालके लिए बताये हुए खाने मिलनेपर लोग ऊपर बताये हुए फलाहारको कितनी जल्दी और कितने उत्साहके साथ अपनानेको तैयार हो जाते है। यही नही, मै ऐसे कुटुबोको जानता हू जिन्होने अपने घरमे इस तरहके भोजनकी व्यवस्था की है और इस सुधारसे सुखी है। इन परिवारोके स्त्री-पुरुष अपने नये भोजन, उसके गुण और स्वादकी जब कभी इसकी चर्चा चलाइए, दिल खोलकर सराहना करते है।

अवश्य ही हम चाहे तो अपने दस्तरख्वानको और भी सादा बना सकते है। गिरीदार फल और अपने देशमे होनेवाले ऋतुफल बस यही हमारी सबसे अच्छी खूराक और हमारे पोषणके लिए यथेष्ट भी है। कुछ रोगोमे अधिक सादा आहार आवश्यक भी होता है।

बहुतेरे पैसेकी कमीके कारण भी अधिक सादी रहन-सहन रखनेको मजबूर होगे। पर मैने जान-बूझकर इस विषयमें जितनी छूट दी जा सकती थी दे दी है।

---

[1]मूल पुस्तकके लेखक एडोल्फ जस्टद्वारा जर्मनीके हार्ट्ज स्थानमें स्थापित आरोग्याश्रम।

इस निरामिष भोजनको जिसमे फल मुख्य वस्तु होता है, हम 'नव्य निरामिषवाद' कह सकते हैं।

प्रकृतिने जैसे मासको मनुष्यका भोजन नही बनाया वैसे ही गेहूं, जौ, चावल, दाल, साग, तरकारियां, आलू आदिको भी उसका आहार बननेके लिए नही पैदा किया है। कारण यह कि इन चीजोको हम कच्चा बिना नमक-मसाला मिलाये खाये तो ये हमे अच्छी नही लगती।

मनुष्य मास, मद्य, सिगरेट, तबाकू आदि त्याग दे तो उसके दिलपरसे एक भारी बोझ उतर जाता है, उसे जान पड़ता है, जैसे वह प्रकृतिके प्रति कोई भारी अपराध कर रहा था, जिससे अब छुटकारा पा गया हो। पर आप फल, रोटी, दाल, हरी और फलीदार तरकारियां खायं, और दूध-दही और गिरीवाले फल न खायं तो इस भोजनमे चिकनाईका अभाव होगा जो मानव-शरीरके धारण-पोषणके लिए बहुत ही जरूरी है। यह चीज आपको अखरोट, बादाम-जैसे फलोके मग्जोमे मिल सकती है।[1] ऐसे आहारपर रहनेवाले आम तौरसे पीले

---

[1]अक्सर यह कहा जाता है कि हमारी गोशालामे पालित गाये रोगी होती है, इसलिए हमे दूध न पीना चाहिए। इस तर्कके अनुसार तो हमारे बच्चोको माका दूध भी, बिना उबाले न पीना चाहिए, क्योकि स्त्रिया तो और भी अधिक रोगिणी होती है। पर हम देखते है कि जो बच्चे माके दूधसे वचित रहते है उनकी देह पनपती नही। अवश्य ही चरागाहमे चरनेवाली तदुरुस्त गायोका दूध रोगी गायके दूधसे बहुत अधिक पोषक और गुणकारी होता है।

और दुवले दिखाई देते हैं, मुर्दादिल और अकसर कमजोर दिल-दिमागके जरासे कष्ट, चिंतासे घवरा जानेवाले होते हैं, और शिकायतें भी उन्हें अकसर हुआ करती है। उनकी देहमे न गरमी होती है और न शक्ति।

पहलेके निरामिषभोजियोंके स्वास्थ्यके बारेमें हमारे अनुभव बहुत ही खेदजनक है। उनमे बहुतेरे पीले, रक्तहीन, सूखी खाल और दुवली देहवाले मिलते है। अत. पुराने संप्रदाय-के निरामिषभोजियोंको बुद्धि-विवेककी आवाज सुननी चाहिए।

यह बात देखी गई है कि कुछ आदमी निरामिषाहारकी पुरानी पद्धतिके अप्राकृतिक आहारके दोषको दूसरोंकी अपेक्षा अधिक सह सकते है, और उसके कुपरिणाम सबमें समान रूपसे नही प्रकट होते।

फिर भी गिरीदार फलोके आहारके विरुद्ध जो कुछ भी कहा जाता है वह एकबारगी गलत है।

कहा जाता है कि गिरियोंमें तेल होता है इसलिए मनुष्यको उसे पचाना कठिन होता है। ऐसा कहनेवाले यह सोचनेका कष्ट नहीं करते कि यह कथन प्रकृतिपर कितना बड़ा लांछन है, मानो उसने अपनी सर्वश्रेष्ठ कृतिके लिए अयुक्त और अपाच्य आहार उत्पन्न किया।

प्रकृतिने गिरीदार फल गिलहरी और मनुष्य दोनोंके लिए पैदा किया है। यह नन्हा-सा प्राणी जो इस डालसे उस डालपर कूदता-उछलता रहता है उसकी चुस्ती-फुरती देखकर क्या आप यह सोच सकते है कि वह न पचनेवाली खूराकपर जी रहा है।

जो निरामिषभोजी गिरियोके आहारपर उपर्युक्त आक्षेप करते है उन्हे मै यह सलाह देना चाहता हू कि वे कुछ दिन दाल, तरकारी, रोटी और आलूके बदले केवल मग्ज, पिस्ता-बादाम, अखरोट, चिलगोजा आदि खाकर रहनेकी कोशिश करे। कुछ ही दिनोमे वे देखेगे कि उनकी मद जठराग्नि तीक्ष्ण हो गई, उनका पाचन-सस्थान अधिक मुस्तैदीसे अपना काम करने लगा।

बैलको केवल घास और हाथीको धान या चावलके आहार-से जो प्रभूत बल प्राप्त होता है वह अकसर इस बातकी दलीलमें पेश किया जाता है कि मनुष्य भी केवल साग, भाजी, रोटी, दाल और फल खाकर स्वस्थ-सबल रह सकता है। यह दलील देनेवाले निरामिषभोजियोंका ध्यान मै इस बातकी ओर खीचना चाहता हू कि शेर और व्हेल मछली मासके आहारसे भी तो ऐसा ही प्रचड बल प्राप्त करते है। प्राणी मात्र केवल उस आहारसे स्वस्थ रहते और पुष्ट होते है जिसकी ओर प्रकृति उनकी सहज बुद्धि, स्वाद, रुचि और अतरात्माके द्वारा उन्हे प्रेरित करती है और उसके अगोकी बनावट जिसकी प्राप्ति, भक्षण और पाचनके अनुकूल है। लोमड़ी मास और बैल घास खाकर पुष्टिबल प्राप्त करता है। उन्हें गिरीदार फलोकी गिजा दी जाये तो दोनोका स्वास्थ्य-बल गिर जायगा। गुबरैलेका आहार गोबर है, पर दुनियामे और भी कोई प्राणी है जो इस आहारपर जी सके ?

इसलिए अगर बैल घास खाकर बलवान और सशक्त बना रहता है तो इससे यह साबित नही होता कि मनुष्य हरी और

फलीदार तरकारियो या फल और रोटी खाकर स्वस्थ और सुखी रह सकता है। दूसरी ओर जब गिरीदार फल उसकी खास खूराक होते हैं तब उसका तन-मन अधिक सवल-सशक्त होता है। कारण यह कि यह चीज कच्ची हालतमे उसकी जीभको अच्छी लगती और यह इस बातका सबूत है कि प्रकृतिने यही आहार उसको दिया है। वह वर्षके बडे भागमे यह भोजन उसके लिए प्रस्तुत भी रखती है।

यह बात बार-बार पुराने और हालके जमानेमे भी कही गई है कि प्रकृतिने मास नही बल्कि वनस्पतिको मनुष्यका आहार बनाया है, पर इस बातपर शायद ही किसीने जोर दिया हो कि प्रकृतिकी योजना यह नही है कि आदमी साग-सब्जी, सेम-आलू और दाल-रोटी खाकर रहे, बल्कि यह है कि वह कच्चे और अपने आप पके हुए फल खाय। इस बातकी तो अबतक खास तौरसे उपेक्षा की गई है कि प्रकृतिने फलोकी गिरियोको ही उसकी खास खूराक बनाया है।

एक अंग्रेज डाक्टर स्व० डेसमोरने सबसे पहले प्रकाश्य-रूपसे हमारे वर्तमान बिना चिकनाईके निरामिष भोजनमे हमारे स्वास्थ्यके लिए जो खतरा है उसकी ओर हमारा ध्यान खीचा और बताया कि गिरीदार फल अखरोट, बादाम, चिलगोजा आदि ही मनुष्यका मुख्य भोजन हैं। हमे इसके लिए उसका उपकार मानना चाहिए।

पर डेंसमोरपर भी विज्ञानका जादू बुरी तरह सवार था। इस कारण उसकी पद्धतिमे अनेक दोष रह गये। उसन

ओरंग-ऊटानसे कहीं कमजोर है। उसका आहार-विहार-भोजन और रहन-सहन सचमुच प्राकृतिक हो तो वह ओरंग-ऊटानसे भी अधिक बलवान हो सकता है। वह सृष्टिका सिरमौर है, संपूर्ण प्राणियोंपर राज करनेके लिए पैदा किया गया है। उसकी इंद्रियां, देह-मनकी शक्तियां सबसे अधिक विकसित हैं, अतः उसे शरीरबलमें भी सभी प्राणियोंसे बहुत आगे होना चाहिए।

दैत्यों, असुरोंकी पौराणिक कहानियां भी इस बातका संकेत करती हैं कि आदि युगमें मनुष्य अति बलशाली था।

जानवर पके हुए फलोंकी अपेक्षा कच्चे और अधपके फलों, पौधोंको खाना ज्यादा पसंद करते हैं। हर एक अनुभव उनकी इस प्रवृत्तिकी पुष्टि करता है। बच्चे भी जिनकी सहज बुद्धि आज भी बड़ी उम्रवालोंसे बड़ी है, आमतौरसे कच्चे और अध-पके फलोंको ही पसंद करते हैं।

प्रकृति-विज्ञानका हर एक पंडित इस तथ्यकी ओर ध्यान देता हुआ दिखाई देता है कि जानवर अपक्व फल-पौधोंको पकेसे ज्यादा पसंद करते हैं। मार्टिनके नव-प्रकाशित विशाल प्राकृतिक इतिहासमें हम इस बातका उल्लेख पाते हैं कि ओरंग-ऊटान अनपके फल खानेका खास तौरसे शौकीन है।

चिड़ियोंके बारेमें यह बात सुविदित है कि वे शाहदाने या विलायती मकोयको; पूरा पकनेके पहले जब वह लाल होने लगते हैं, खाना सबसे ज्यादा पसंद करती हैं।

घास चरनेवाले जानवर भी नरम-कच्ची घास और दानेको

बल और सुखका दान करेगी और रोगोंको भगानेमे इससे जो चमत्कारिक सफलता प्राप्त होगी आजकी स्थितिमे हम उसकी तनिक भी कल्पना नही कर सकते ।

प्रस्तुत पुस्तकके आरंभमे ही मैंने इसे दिखानेकी कोशिश की है कि हवा और रोशनीके बारेमें लोग प्रकृतिसे जो शंका रखते हैं वह कितनी खतरनाक और समझमे न आनेवाली बात है । वैसे ही प्रकृति उन्हे जो आहार देती है उसकी उपयुक्तताका विश्वास न करना भी वैसी ही हानिकर और हमारी अकलमें न आनेवाली बात है । क्या यह प्रकट सत्य नही है कि हर एक जानदार जब वह प्रकृतिकी दी हुई खूराकपर रहता है तब स्वस्थ, सुंदर, सबल और सुखी होता है । हिरन घास चरकर और शेर मांस खाकर स्वस्थ-सबल रहता है ।

यह भी मशहूर बात है कि ओरग-ऊटान[1] जिसकी आंतें और पाचनका काम करनेवाले अंग मनुष्यसे इतने मिलते हैं कि पहचाननेमे धोखा हो सकता है, केवल कच्चे फल खाकर रहता है, फिर भी इतना बलवान होता है कि 'गरम देशोके जंगलोंका दैत्य' कहा जाता है । बहुतोंका विश्वास है कि केवल फलके आहारसे मनुष्यको पूरा बल नही मिलेगा । पर आज तो मांस, तरकारी, फलियां, रोटी-दाल और शराब उसका आहार है, और यह बनावटी खूराक खाकर भी वह

---

[1]बोर्नियो, सुमात्राके जगलोमे पाया जानेवाला, लबे हाथोवाला, बलवान, बिना पूछका बदर ।

वैज्ञानिक प्रमाणों, खासकर आंतोंकी बनावटसे इस बातको साबित कर दिया कि मनुष्यकी सही खूराक गिरीवाले फल ही हैं। पर वैज्ञानिक प्रमाणोंका कोई मूल्य नहीं। हमारी चिकित्सा-प्रणालीकी सारी बेतुकी बातें वैज्ञानिक प्रमाणोंसे सही साबित कर दी गई हैं। विज्ञानकी विधिसे हम हर चीजको सही या गलत साबित कर सकते हैं। जिस विज्ञानका आधार प्रकृति नहीं है और फलतः जो आधाररहित है उसका उपयोग इस रीतिसे किया जा सकता है। अतः डेंसमोरके सिद्धांतोंका गलत होना वैज्ञानिक रीतिसे सिद्ध किया जा चुका है। ध्यान देनेकी बात यह है कि डेंसमोरके वैज्ञानिक प्रमाण साधारण जनोंको गूदे और गिरीदार फलोंके मनुष्यका प्राकृतिक आहार होनेका विश्वास न दिला सके और न उन्हें इस खूराककी ओर खींच सके। इसका कारण शायद यह हो कि डेंसमोर भी पहले विज्ञानके नहीं बल्कि दूसरे रास्तोंसे ही इस नतीजेपर पहुंचा।

प्रकृति और उसके नियम अटल, अपरिवर्तनीय हैं, वे सृष्टिके आदिसे प्रलयपर्यन्त ज्यों-के-त्यों रहेंगे। अतः मानव-जातिने अपने आप पके हुए फलों और खासकर गिरीवाले फलों-को फिर अपना मुख्य भोजन न बनाया तो वह कभी सच्चे अर्थमें स्वस्थ, सबल और सुखी नहीं होनेकी।

इसके उत्तरमें निश्चय ही यह बात कही जायगी कि विना फलाहारी बनाये लोगोंके रोग अच्छे किये गये हैं और वे स्वस्थ, सबल भी रहे हैं। पर बात यह है कि जो लोग प्रकृतिके सभी नियमोंका फिर पूरा-पूरा पालन करेंगे उन्हें वह जिस स्वास्थ्य,

ही ज्यादा पसंद करते है। सूखी घास और पुवाल आदि भी, अगर वह पकनेसे कुछ पहले ही काट लिया गया हो तो उन्हे अधिक रुचता है। अनपका चारा उनके लिए अधिक पोषक और स्वास्थ्यकर भी होता है।

जो सेब जाड़ेके दिनोमे इस्तेमाल करनेके लिए तोडकर रख लिए जाते है वे अब आम तौरसे अधपके ही तोडे जाते है। पूरी तरह पकनेके लिए उन्हे इससे कही अधिक दिन डालसे लगा रहना होगा।

बेपके फल खानेसे बच्चोंको दस्त आने लगना और खाज आदिकी शिकायत हो जाना भी इस बातका सबूत है कि अनपका फल पकेकी बनिस्बत देहको अधिक शक्ति और गति देता है, क्योकि अतिसार और खालके रोग शोधक उभार है। ये संचित विषको शरीरसे बाहर कर देनेकी प्रक्रिया है।

अत. अनपके और अधपके फलसे डरना अब हमे छोड़ देना चाहिए और उन्हे चावसे खाना चाहिए। हमारी बिगडी हुई जीभ भी उन्हे ज्यादा पसद करेगी। हरी तरकारिया, हरी सेम-मटर आदि भी पकी हुई फलियो और अन्नोसे, जिनसे हमारी रोटी बनाई जाती है, अधिक पोषक और स्वास्थ्यकर होती है।

जानवरोको जब फलियां, चना-मटर और पका अन्न अधिक मात्रामे दिये जाते है, और खासकर जब उन्हे कड़ी मेहनत नही करनी पड़ती, तब उनकी देहके जोड़ कड़े पड जाते है, और कभी-कभी वे मर भी जाते है। इसके विपरीत, घोडेको

जब कच्चा चारा दिया जाता है—भले ही वह सूखा हो, तब उसके जोड़ लचीले होते हैं। इससे साबित होता है कि फलियां और वह गेहूं-जौ जो पक जानेपर खेतसे काटा गया हो, प्रकृतिकी पसंदका आहार नहीं है, इसलिए इनको खानेकी सलाह मैं नहीं दे सकता। इस दृष्टिसे आजके अन्नाहारी हमें पके दाने और मोटे छिलकेवाले गेहूंके बिना छने आटेको अपना मुख्य आहार बनानेकी सलाह देकर भारी गलती कर रहे है। इस गलतीकी हमें अकसर कड़ी सजा मिली है।

बहुतोंका खयाल है कि खजूर और अंजीर हमारे दांतोंको नुकसान पहुंचाते है। जो खजूर और अंजीर हम खाते है वे सुखाये हुए होते है, अतः अपने प्राकृतिक रूपमे नही होते। हो सकता है कि गरम देशोंके सुखाए हुए फलोमे शक्करका अत्यधिक होना हमारे दांतोके लिए थोड़ा अहितकर हो, पर यह बात अधिक हानि करनेवाली है इसमे मुझे शक है। फिर गरम देशोंके फल हमारे लिए अनिवार्य नहीं है, उनकी सिफारिश तो मैंने महज इसलिए की है कि इससे हमारे दस्तरख्वानपर खासकर जाड़ेके दिनोमे इस तरहकी और चीजें रखी जा सकती है, और यह हमारी जीभको ही नही, मन और आंखोंको भी बहुत भाता है। गरम देशोंके ताजा फलो—संतरे, मौसंबी आदिके खिलाफ तो यह एतराज उठाया ही नही जा सकता।

निश्चय ही हमारे फल आज धरतीकी अयाचित देन नही है, हम उन्हें बनावटी विधियोसे पैदा करते है। फिर भी वे

प्रकृतिकी ऐसी देन है जो अपनी स्वाभाविक दशामें, बिना पकाये और नमक-मसाला मिलाये, रुचती है और इस कारण वनके फलोकी तरह मजेसे खाए जा सकते है।

गरम देशोके फल (खजूर, अजीर, संतरे, बादाम आदि) हमारी जल-वायुसे भिन्न जल-वायुमे उपजते है, और खासकर दक्षिणके देशोके लिए पैदा किये गये है, पर वे हमे कच्ची हालतमे रुचते है, इसलिए अप्राकृतिक आहार नही माने जा सकते। फलियां, आलू, दाल आदि खाकर हम प्रकृतिकी व्यवस्थासे जितनी दूर चले जानेका अपराध करते हैं गरम देशोंके फलोको खाना उसकी तुलनामे प्रकृतिके विधानका बहुत ही हलका उल्लघन है।

दूध सदा कच्चा ही पीना चाहिए। उबालनेसे वह दुष्पाच्य हो जाता है। दही और मट्ठा भी इस्तेमाल किये जा सकते है।

जगली और बगीचोमे उपजनेवाले फल जहांतक हो सके कच्चे, बिना पकाये ही, खाने चाहिए। जब ताजा फल अलभ्य हो, तब सुखाए या पकाये हुए फल भी खाये जा सकते है।

फलोको आगपर पकाने या उनका अचार-मुरब्बा बनानेमें शक्करका उपयोग बहुत ही कम करना चाहिए। कृत्रिम विधिसे बनाई हुई शक्कर (फलोके रसमे भरी प्राकृतिक शक्कर नही) पेटके लिए बहुत ही हानिकर है। कच्ची या लाल शक्कर अवश्य ही सफेद शक्कर और मिश्रीसे अच्छी होती है।

खजूरको हम दूध आदिको मीठा करनेके काममें ला सकते हैं। शहद रोटीके साथ खाया जा सकता है।

खाना धीरे-धीरे और खूब चबाकर खाना चाहिए। जिस भोजनमें लार अच्छी तरह मिली हो उसे आमाशय ज्यादा अच्छी तरह पचा सकता है।

आगपर पकाये हुए खाद्योंकी अपेक्षा फल स्वभावतः धीरे-धीरे खाये जाते हैं। हम सदा सब बातोंमें प्रकृतिका अनुसरण करते रहें तो हमारा हर काम अपने आप ठीक तौरपर होगा।

मांसाहारसे प्रचलित निरामिषाहार (हरी तरकारियां, फलियां, रोटी और कोई फल) पर जाना बहुत ही कठिन है, क्योंकि कुछ ही दिनमें अखरोट-बादाम आदिमें रहनेवाली चिकनाईकी इच्छा जोरोंसे होने लगेगी। कुछ दिनोंमें और तरहके कष्ट, बेचैनीकी अनुभूति भी होगी। यद्यपि मांस-मद्यके आहारसे उत्पन्न विकृतिसूचक लक्षण विदा हो जाएंगे। यही कारण है कि बहुतेरे निरामिषाहारको अधिक दिन चला नहीं सकते, और कुछ दिनोंमें फिर पुराने खान-पानपर आ जाते हैं। पर आगपर न पकाये हुए फल, खासकर गरजोंके साथ मिलाकर खाये जायें तो पाचनका काम करनेवाले अंगोंका काम तुरत बहुत हलका हो जाता है, और पाचनशक्ति बहुत बढ़ जाती है। इस आहारसे दिमाग भी साफ हो जाता है और सारा जीवन स्वच्छन्द हलका-फुलका और प्रसन्नतासे भरा हुआ मालूम होने लगता है। अंतरमें सुख-स्वास्थ्य और आनंदकी ऐसी

अनुभूति होने लगती है जो उसके पहले सर्वथा अज्ञात होती है। चूंकि अब शरीरको वे चीजे मिलती होती है जो उसके पोषण और बाढके लिए आवश्यक है इसलिए तन-मनमे शीघ्र ही एक सुखद स्फूर्तिकी अनुभूति होने लगती है, और बल ओजकी नई अनुभूतिके साथ-साथ जीवनमे एक नए, अननुभूत आनदकी लहरे उठने लगती है।

रही हमारी सिर चढाई हुई जीभकी बात। सो वह तो अभ्याससे कुछ दिनमे नितात स्वादरहित, बल्कि शराब और तबाकू-जैसी अति अरुचिकर चीजोमे स्वाद पाना सीख जाती है।

सच तो यह है कि प्रकृति फलको, जिसे ईश्वरीय तेजके प्रतीक स्वय सूर्यने उगाया-बढाया, जो स्वाद प्रदान करती है, ऊचे-से-ऊचे दरजेकी पाकविद्या भी रोटी-चावल, साग-भाजीमें वह स्वाद पैदा नही कर सकती।

कोई आदमी थोड़े दिन भी अप्राकृतिक आहारकी इच्छाको दबा ले तो वह प्राकृतिक भोजनमे जो राजसी पकवानोसे भी बढकर और सच्चा स्वाद है उसका मजा लेना सीख जायगा। वह चाहे तो सदा केवल कच्चे या स्वयं पक्के फल खाकर रह सकता है, उसकी जीभ उससे कोई दूसरी चीज न मांगेगी, और फलोके दिव्य स्वादकी दिन-दिन अधिकाधिक रसिया होती जायगी, यहातक कि पुरानी रहन-सहनको फिर अपनाना उस आदमीके लिए अति कठिन हो जायगा। यही कारण है कि जो लोग पुराने ढगके निरामिषाहारपर बडी कठिनाईसे टिकाये जा सकते है वे रसदार और गिरीदार फलोंका

आहार एक बार आरंभ करके फिर बड़े चावसे उसका व्रत लिए रहते हैं।

पर इस आहारकी सलाह देते हुए मुझे यह बात एक बार फिर कह देनी होगी कि हमारे आहारमें यह परिवर्तन प्रकृतिके आदेशके जितना ही अधिक अनुकूल होगा उतना ही उन शोधक उभारोंकी अधिक सभावना होगी जो रोगसे छुटकारे और स्वास्थ्यकी प्राप्तिके बीचकी मंजिल माने जाते हैं। वे अनेक रूपोंमें प्रकट हो सकते है—हाथ-पांव या जोड़ोंके दर्द; क्षणिक अवसादकी या और किसी शक्लमें। पर ये उपद्रव सदा शुभलक्षण होते हैं। वे इस बातका प्रमाण हैं कि शरीरके शोधनकी रोगके कारणरूप विषके बाहर करनेकी क्रिया पूरे वेगसे चल रही है। इन शोधक-उभारोके बाद रोगीको आरामकी पक्की अनुभूति होती है और रोगी प्रकृतिकी काय-विधिको थोड़ा भी समझता होगा तो इन उभारोसे घबरायेगा नही।

कभी-कभी यह भी होता है कि यह सोलहो आने प्राकृतिक आहारक्रम चलानेपर कुछ ही दिनोंमे बड़े जोरकी भूख लगने लगती है, और उसे बुझानेके लिए बार-बार भोज्यपदार्थोंकी बड़ी मात्रा पेटमे पहुंचानी पड़ती है। यह भी एक सुलक्षण है; क्योंकि इससे यह साबित है कि शरीर अपने आपको बनानेका काम मुस्तैदीसे शुरू कर रहा है।

प्राकृतिक आहार आरंभ करते ही भूखका भड़क उठना ऐसी वात नहीं है जिससे कोई डरे, कुछ दिनोमें वह फिर चली

जायगी। और अंतमे अप्राकृतिक आहार-कालमे जितना खाना पड़ता था उससे बहुत कममे तृप्ति होने लगेगी और यह अल्प मात्रा बडी रुचि और स्वादके साथ खाई जायगी।

माके दूधको छोड़कर और जो भोजन प्रकृति मनुष्यको देती है सब ठोस शकलमे होता है। जानवरोमे भी जो कच्चे रसदार घास-पौधे या फल खाकर रहते है, बहुत ही कम पानी पीते है, एक जातिके हिरन (रो) तो पीते ही नही। मुमकिन है, मनुष्य भी आरंभमे अपायी, जल न पीनेवाला प्राणी रहा हो, क्योकि किसी कृत्रिम साधन मात्रके बिना कुछ पीना उसके लिए अति कठिन है। पर आज वह शोरबे आदिके रूपमे कितना तरल खाद्य खाता और चाय, कहवा, शराब आदिके रूपमे कितना पेय पीता है, इसको हम सोचे तो आसानीसे समझ सकते है कि इस विषयमे भी वह प्रकृतिके प्रति कितना बड़ा अपराध कर रहा है।

प्राकृतिक चिकित्साके एक आचार्य स्क्राथकी चिकित्सा-पद्धतिमे केवल कुछ दिनोतक जल और अन्य पेय पदार्थोका त्याग करके ही रोग दूर किये जाते है।

केवल फल खाकर रहनेवालेको तो जल्दी ही यह अनुभव होने लगता है कि अब उसे प्यास नही लगती और पानी या और कुछ पीनेकी जरूरत नही है।

और दूसरोको प्रकृति तो मांके दूधके सिवा केवल पानी ही पीनेके लिए देती है। फलोके रस भी पिये जा सकते है।

हम आपको एक स्वादिष्ट शर्बत बनानेकी विधि बताते हैं—किसी पहाड़ी सोतेका एक बोतल जल लीजिए जिसमें लोहे या किसी दूसरे उपयोगी खनिज द्रव्यका मिश्रण हो। उसमें एक नीबू और रसभरीका उतना रस निचोड़िये जितना उसे स्वाद बनानेके लिए आवश्यक हो। यंगवार्नमें त्योहारोंपर यह पेय चिकित्सार्थियोंको दिया गया और उन्हें बहुत पसंद आया है। उसे इकट्ठे बैठकर पीना हमारे लिए सदा एक बढ़िया, आनंदजनक गोष्ठी होती है।

अतः अगर त्योहारों, उत्सवोंपर पानगोष्ठीका आयोजन आवश्यक ही हो तो यह जरूरी नहीं है कि उस मौकेपर हम शराब ही पियें। सेब, संतरे, अंगूरके रससे भी किसीके आयुरारोग्यकी कामना या सन्मानकी रस्म अदा की जा सकती है। उत्साह और प्रसन्नता कुछ नशेका इजारा नहीं है।

' फलोंका रस और शरबत सदा शुद्ध और सरल विधिसे बनाया हुआ होना चाहिए, जैसा कि स्त्रियां आम तौरसे घरोंमें बनाया करती हैं।

फलोंके जो शर्बत बाजारोंमें बिकते हैं और जिनका बड़े-बड़े नाम देकर विज्ञापन किया जाता है उनमें मिलावटका शक करनेकी गुंजाइश जरूर होती है, गो उनमेंसे कुछ अकसर नेकनीयतीसे तैयार किये जाते हैं।

मांस, नमक और मसालेके आहारसे हमें आज जो अप्राकृतिक प्यास लगती है उसे बुझानेके लिए हमें तीक्ष्ण, उत्तेजक पेयोंकी आवश्यकता होती है। हमारा ढीला-ढाला बेदम

नाड़ी-सस्थान भी कभी-कभी उत्तेजना मागता है, पर उत्तेजित किये जानेके कुछ देर वाद वह अपने आपको अधिक अशक्त पाता है। इसी तरह मनुष्य शराव-ताड़ी, चाय, कहवेका आदी वना। मै समझता हू, इस वातको सावित करनेकी जरूरत नही है कि शराव प्रकृतिके किस तरह विरुद्ध है और इस पिशाचीने मानव-जातिपर हर शक्लमे कैसी आफते ढाई है।

शराव ज्यादा पीनेसे जितनी हानि करती है थोड़ी मात्रामे लेनेसे अवश्य ही उसकी तुलनामे कम नुकसान करती है। जो डाक्टर यह मान लेते है कि जौ या अगूरकी शराव थोडी मात्रामे दी जाय तो कोई हानि नही करती, वल्कि शक्तिवर्धक होती है, और यह मानकर अपने रोगियोंके लिए उसकी तजवीज करते है, वह अति शोचनीय भूल करते है। शरावसे पैदा होने-वाली थोड़ी-सी वनावटी उत्तेजना भी जो कुछ देर वाद उससे कही अधिक सुस्ती—शिथिलता पैदा कर देती है, तदुरुस्त आदमी-के लिए भी अति हानिकर है, रोगीके लिए तो और भी अधिक हानिकर होनी चाहिए।

पुरुष आज शराव और वीड़ी-सिगरेटके अत्यधिक सेवनसे अपने स्वास्थ्यकी जो हानि कर रहे है स्त्रियां उसकी वही हानि कहवा पीकर करनेकी कोशिश कर रही है। कहवा आज हमारे नारी-समाजमे वहुत अधिक रोग-क्लेशका कारण हो रहा है। जवतक इस व्यसनके पजेसे अपने आपको छुडा न ले तवतक कोई भी स्त्री सच्चे स्वास्थ्यके रास्तेपर नही लग सकती। जौ-गेहूंके सत्तसे वनाया हुआ कहवा स्वभावतः

असली कहवेके जितना हानिकर नहीं होता। पर इस तरहके कहवेका इस्तेमाल भी धीरे-धीरे घटाकर अंतमें बिल्कुल बंद कर देना इष्ट है; क्योंकि तरल खाद्यकी अधिक मात्रा सदा हानिकर होती है।

ताजा, रसदार फल जितना ही अधिक खाया जायगा पानी और पतली चीजोंकी इच्छा उतनी ही घटती जायगी। शराबके व्यसनका तो एकमात्र इलाज प्राकृतिक आहार है।

प्राकृतिक जीवनके विरोधियोके पास तरह-तरहकी शंकाएं और आपत्तियां है। एक साहब पूछते है, अगर दुनियाके सारे लोग फिर प्राकृतिक ढंगसे जीवन बिताने लगें तो इतने सेब-संतरे, बादाम-अखरोट आयेंगे कहांसे? दूसरे महाशयको यह चिता सता रही है कि ये इतने बूचड़, मोची, नानबाई, पंसारी, आदि क्या करेंगे जो उस दशामें बेरोजगार हो जाएंगे।

हर आदमी जो आज प्राकृतिक आहारपर रहना चाहता हो उन चीजोंको आसानीसे पा सकता है जो उसके पोषणके लिए जरूरी है।

फिर भी फलोंकी मांग बढ़ जाय तो उनकी उपज आसानीसे बढ़ाई जा सकती है। जो जमीन आज चरागाह और उन चीजोंके उपजानेमे, जो मनुष्यके लिए बेकार ही नहीं हानिकर भी है (तंबाकू, शलजम, आलू, अनाज आदि), आज फँसी हुई है वह फल उपजानेके काममें लाई जायंगी।

आज तो राजमार्गोंके आसपासकी और बंजर, बेकार जमीन ही फलोंके पेड़, बाग लगानेके काममें लाई जाती है।

जंगली फलों, बेर-करौंदे, रसभरी आदिकी झाड़ियां घास-पात समझी जाती है और खोद-उखाड़कर फेंक दी जा रही हैं।

सच पूछिये तो मनुष्य अपने जीवन-क्रम, अपनी रहन-सहनमें प्रकृतिनिर्दिष्ट पथसे जितना ही दूर हटा है, और सभ्यता तथा विज्ञान जितना ही आगे बढ़े है, उसकी दशा उतनी ही बिगड़ गई है, और वह फिर प्रकृतिकी ओर जितना बढ़ेगा, उसी अंशमें उसकी दशा सुधरती जायगी। मानव-जीवनके आदि युगमें तरह-तरहके धंधे-पेशे नही थे और मनुष्य सुखी थे। आज यह स्थिति हो जाय कि वे हमारे लिए फिर बेकार हो जाएं तो सभी मनुष्य फिर दुनियाके सुख भोगने लगे गो यह बात बहुतोको अनहोनी-सी लगेगी।

मै हर एक फलाहारीसे प्रार्थना करूंगा कि वह अब भी, फलोंका उत्पादन बढ़ानेके लिए जो कुछ उसके किये हो सकता हो वह करे।

मनुष्यका पाचन-यंत्र अपनी बनावट और पुरजोंकी तरतीब-के विचारसे केवल फलाहारके उपयुक्त है, अत. केवल फल ही उसे आसानीसे और पूरी तरह पच सकता है।

जो आदमी केवल फल खाकर रहता है उसके शरीरमें विजातीय द्रव्य अथवा मलकी वृद्धि तुरत रुक जाती है, और पाचनका काम करनेवाले अवयव सचित विजातीय द्रव्य बाहर निकालनेका काम ज्यादा मुस्तैदीसे करने लगते हैं, फल इस शुद्धिकी क्रियाको उत्तेजन देता है।

कच्चा या अपने आप पका हुआ फल कितनी आसानीसे

पच जाता है—और उसमें आरोग्य तथा जीवनदानकी कैसी अद्भुत शक्ति है इसका विचार करनेसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि रोगोंको दूर करनेमें फलाहारसे कितनी मदद मिलेगी।

फलाहारसे मिली हुई सफलता निस्संदेह आश्चर्यजनक है। उसकी बदौलत अकसर ऐसे रोगियोंको भी स्वास्थ्यकी पुनः प्राप्ति हुई है जिनकी सारी जीवनशक्ति समाप्त दिखाई देती है और नैराश्यके सिवा और कुछ शेष नहीं जान पड़ता।

तब भी क्यों हम फलकी उपेक्षा कर सब तरहके अस्वाभाविक खाद्यों और दवाओंका सहारा लेते हैं?

हर एक जानवर बीमार होते ही खाना छोड़ देता है।

रोगकी अवस्थामें मनुष्यको चाहिए कि अपना भोजन जितना घटा सकता हो घटा दे। कम-से-कम उसे इतना तो करना ही चाहिए कि जब पेट मांगे, यानी जब जोरकी भूख लगे तभी खाय।

बीच-बीचमें एक-दो वक्त कुछ भी न खाना स्वास्थ्यके लिए अति हितकर है।

उपवासकी बड़ाई, हजरत ईसाने भी की है। उन्होंने कहा है—"फिर भी यह चीज प्रार्थना और उपवासके बिना नहीं जाती।"

बहुतोंका खयाल है कि जब वह बीमार हों और भूख न लगी हो तब भी उन्हें पेटमें कुछ खाना ठूंस ही लेना चाहिए, जिससे

शरीर ज्यादा कमजोर न हो जाय। पर यह धारणा एक घातक भ्रम है।

जब पेट खाना नही मांगता तब वह उसे पचानेके काबिल नही होता। ऐसी दशामें विना भूखके जो भोजन उसमें डाला जाता है वह उसके लिए भाररूप हो जाता है। यह बात बुरी हर वक्त है। पर बीमारकी हालतमें खास तौरसे हानिकर होती है। कभी-कभी तो खतरनाक भी हो जाती है। खानेका अधिक आग्रह तंदुरुस्त आदमीसे भी नही किया जाना चाहिए। बीमारसे तो हरगिज नही करना चाहिए। अपने बच्चोंको हृष्ट, पुष्ट देखनेके लिए बेचैन माताएं इस विषयमें उसका अहित करनेका अधिक पाप न करें तो बहुत अच्छा हो।

बनावटी भोजनको जरूरतसे ज्यादा खा लेनेका खतरा सदा रहता है। पर प्राकृतिक आहार (कच्चा और पेड़पर पका हुआ फल) मे प्रकृतिने ऐसा प्रबंध कर दिया है कि उसे जरूरतसे ज्यादा खा लेना आसान नही है। अतः बीमारीकी दशामें केवल फल खाया जाय तो उसके अधिक खा लेनेका उतना डर न होगा।

प्राकृतिक जीवन-क्रमका वर्णन करनेमें अबतक मेरा उद्देश्य यह बताना रहा है कि मनुष्यके भौतिक जीवन, उसके शरीरको इससे क्या-क्या लाभ हो सकते हैं। मैंने यह बतानेकी कोशिश की है कि जिन अवस्थाओंको हम रोग कहते हैं प्रकृतिकी ओर लौटनेकी साधना—उसके बताये हुए रास्तेपर फिरसे चलनेसे वे किस तरह बचाई और दूर की जा सकती हैं।

पर प्रकृतिमें हर चीजका एक दूसरेसे पूरा मेल, लगाव है, और मनुष्यमें भी देह, मन और आत्मा एक दूसरेसे अलग नहीं किये जा सकते। देह मन और आत्माका धारण-पोषण करती है, और वैसे ही मन और आत्मा भी देहपर सदा अपना असर डालते हैं।

परमात्माने मनुष्यको सर्वथा स्वस्थ और सुंदर ही नहीं, नितांत नेक और भला भी पैदा किया था। वह संपूर्ण सृष्टिका शिरोमुकुट है। स्वयं ज्ञानरूप और सद्रूप परमात्माकी सर्वश्रेष्ठ कृति शरीर, मन और आत्माकी खोटखामियोंसे भरी हुई नहीं हो सकती।

मनुष्यका मन आज सब प्रकारकी पापमय वासनाओंका आगार हो रहा है। वह अपनी सारी शक्ति और साधनोंसे उनसे लड़ता है, पर बार-बार उनसे हारकर पापके गढ़ेमें गिरता है। इन कुप्रवृत्तियोंपर विजय पानेके लिए वह अध्यवसाय और प्रयत्न भी अपनी सारी शक्ति लगाकर बारंबार करता है, पर हर बार हार खाता और उनके अधीन होता है। अतः अगर परमेश्वरने इनके साथ ही उसे सिरजा है—ये पापकी ओर ले जानेवाली प्रवृत्तियां और वासनाएं उसका स्वभाव हैं—तो वह खुद भला और नेक न होगा; वह खुदा न होकर शैतान होगा जिसे पुण्यसे नहीं बल्कि पापसे प्रसन्नता होती है। पर वस्तुतः बात ऐसी नहीं है। मनुष्यका पापमय होना उसके अपने प्रकृति-विरोधी जीवनक्रमका फल है। एक मना की हुई चीजको खा लेना—प्रकृति-

निर्दिष्ट पथसे च्युत होना—ही तो स्वर्गसे उसके पतनका कारण है ?

मिसालके तौरपर, मुक्त, अवाध प्रकृतिमें पशु-पक्षियोंका नियम केवल संतानोत्पादनके लिए ही मैथुन करना है। गर्भ-धारणके बाद वे खुद तो यह क्रिया बंद कर ही देते हैं, कोई उन्हें किसी भी उपायसे इसके लिए मजबूर भी नहीं कर सकता। ठीक यही हाल मनुष्यका है। प्रकृतिके आदेशानुसार जीवन बिताकर वह ज्यों-ज्यों तन-मनसे स्वस्थ होता जाता है त्यों-त्यों व्यभिचार और दूसरे पापोंसे बचना उसके लिए आसान होता जाता है। यही नहीं, कुछ दिनोंमें उससे उनका होना सर्वथा अशक्य हो जाता है। जब वह यह स्थिति प्राप्त कर लेता है तभी सच्चे अर्थमें सुधरा हुआ कहा जा सकता है।

आदि युगमें मनुष्यको मन और आत्माका पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त था। उस स्थितिसे वह जितना भी हटा, गिरा है, सब शरीरकी विकृतियोंके कारण हुआ है। विजातीय द्रव्य सारी इन्द्रियों, अंगोंको नुकसान पहुंचाते हैं—उन अंगोंको भी जो मन और आत्माको देहसे मिलाते हैं। पर आज किसीके दिमागमें यह बात नहीं घुसती कि प्रकृतिके नियमोंके अनुसार शरीरकी सम्हाल रखकर हम बौड़मपन, पागलपन, अन्यमनस्कता, उदासीनता, बदमिजाजी, विषाद रोग, चिंताविक्य, विषय-लोलुपता, जवानीकी कुचालों, बुरी आदतों, पाप-अपराधकी प्रवृत्ति, काम-क्रोध, ईर्ष्या-द्वेष, दूसरोंका बुरा चाहना आदि मानस दोषोंको दूर भगा सकते हैं।

जो हो अगर साथ-साथ शरीरकी भी, प्राकृतिक विधिसे वैसी ही सम्हाल न रखी जाय तो नीति, शिक्षा और मन आत्माके संस्कारके लिए किया हुआ सारा श्रम व्यर्थ जायगा, बल्कि हो सकता है उससे हमारी दशा और बुरी हो जाय।

यूनानके पुराण हमे 'डानेइदीज' की कथा सुनाते हैं। ये डैनेअस नामक राजाकी बेटियां थीं। बापके आदेशसे इन्होंने अपने पतियोंको सुहागरातमें ही कतल कर दिया। इस अपराधका दंड उन्हे यह दिया गया कि मृत्युके बाद प्रेतलोकमें छलनीमे सदा पानी भरती रहें।

जो लोग आज मनुष्यको प्रकृतिकी ओर वापस जानेके रास्तेपर लगाए बिना ही उन्हें अधिक भला और सुखी बनानेकी कोशिश कर रहे है वे भी डानेइदीजका ही काम कर रहे हैं। वे भी छलनीको हमेशा पानीमें डुबो रहे हैं जो कभी भरनेकी नही।

बेशक वे सारे विधानकार और लोकोपकारव्रती, जो प्राकृतिक जीवन-क्रमके महत्त्वके विषयमें बिलकुल कोरे है, अकसर केवल बुराईको बढ़ानेका ही पुण्य कमाते है। मिसालके तौरपर हम वेश्यावृत्तिके विरुद्ध, जो एक खुली बुराई है, लड़ते है और इससे गुप्त पापकी वृद्धिमात्र करनेका फल पाते है, जो प्रकट वेश्यावृत्तिसे ज्यादा खराब और खतरनाक है।

दुनियाकी सारी बुराईं, सारा पाप, जो आज मानव-जातिके लिए भयानक दैत्यरूप हो रहा है, नष्ट किया जा सकता है,

पर केवल एक ही चीज हमें इसका वल-सामर्थ्य दे सकती है--प्रकृतिकी ओर लौटना।

वाइविल कहती है--"इस प्रकार ईश्वरने मनुष्यको अपने स्वरूपमे उत्पन्न किया। उसने ईश्वरके स्वरूपमे उसे उत्पन्न किया।"

परमेश्वर प्रेमरूप है और मनुष्य इस विपयमे उसकी समता करता है--उसका प्रतिरूप है। भगवान और अपने भाइयोको प्यार करना ही आरंभमे मनुष्यका स्वभाव था।

मनुष्य जव प्रकृतिनिर्दिष्ट पथसे च्युत हुआ तो उसके फलरूपमे उसे जो शारीरिक दुःख-दर्द मिले उनके साथ-साथ उसकी आत्मापर भी मलके छीटे पड गये। विपय-सुखकी वासना वहुविध वीभत्स रूपोमे प्रकट हुई--कामुकता उनमे सवसे वडी वुराई थी। मनुष्यका प्रेम मलिन, दूपित हो गया। उसके मानसमे द्वेपका अंकुर उगा और द्वेपसे ईर्ष्या, दूसरोका वुरा चाहनेकी वृत्ति और परमेश्वर तथा अपने वंधु मानव-संतानोंके प्रति किए जानेवाले सारे पापोका वश वढा। परमेश्वरकी प्रतिभा उसमे अधिकाधिक लुप्त होती गई।

प्रकृतिके राज्यमे हम देखते है कि सभी मांसभक्षी प्राणी क्रूर हिंस्र स्वभावके होते है, और घास-पात खानेवाले पशु सीधे और शातिप्रिय होते है। विना पूंछके वंदर (एप) और कुत्तेको ज्यों ही मासकी खूराक मिलने लगती है वे कटहे और खतरनाक हो जाते है। पुच्छहीन वंदर तो कुछ दिन इस खूराकपर रहते ही हद दरजेका लंपट हो जाता है।

अतः प्रकृतिकी बताई विधिसे जीवन विताना केवल पेटका प्रश्न नही है। उसके जरिए हम केवल अपनी देहका दु.ख-दर्द ही दूर करना नहीं चाहते, बल्कि इससे उच्चतर लक्ष्योको—उस वस्तुको भी प्राप्त करना चाहते है जो सदाचार और धर्मका चरम लक्ष्य है। इस पथके अनुसरणसे मनुष्यको परमेश्वरकी प्रतिरूपता पुन. अधिकाधिक प्राप्त होती जायगी।

मांस और शराब

प्रकृतिने मनुष्यको मांस खानेवाला शिकारी जानवर नही बनाया है।

मनुष्यको कच्चा मांस अच्छा नहीं लगता, उसे उसके बनाने, पकाने, बघारने, छौंकने और उसमे मसाला मिलानेकी जरूरत होती ही है। उसे मांसके साथ और कुछ न सही नमक तो चाहिए ही।

जब हिंसक पशु अपना शिकार मार लेता है तब वह उल्लाससे भर जाता है और ताजा खून पीकर मतवाला-सा हो जाता है।

पर मनुष्य, जो पूर्णतया पशु नहीं हो गया है, हत्या करनेसे घबराता है। जब वह पशुको, जिसे मनुष्यका सजातीय ही कहना चाहिए, मारनेके लिए खूंखार अस्त्र उठाता है तो उसका विवेक उसे हमेशा ऐसा करनेसे रोकता है। मरते हुए पशुका

छटपटाना देखकर कठोर-से-कठोर हृदय पिघल जाता है। मांस खानेवालोंको यदि जानवरको स्वयं अपने हाथों मारकर खाना पड़े तो अधिकांश न खाना ही पसंद करेंगे। कच्चा, बिना पका मांस अथवा कसाईकी दूकानमे रखी पशुकी लाश देखकर सभीका मन घृणासे भर जाता है। अत. अनेक स्थानोमें मांसको खुला ले जानेके विरुद्ध कानून वन गये हैं।

मनुष्य इस संबंधमे भी प्रकृति, अपने विवेक, रसना, घ्राणशक्ति, आंख और नैसर्गिक बुद्धिकी वात क्यों नही सुनता? क्या ऐसा कर सकना बहुत सरल नही है?

मनुष्य इस प्रकारके वैज्ञानिक अनुसंधानमे कि वह पशुकी मांस-भक्षी जातिका है या सर्व-भक्षी सूअर, भालू आदि जातिका है, क्यों अपनी शक्ति व्यर्थ खर्च करता है? पशुकी ये दोनो ही जातियां तो मनुष्यको सदासे क्रूर और निर्दयी प्रतीत होती हैं और इस नाते वह इनसे सदा घृणा करता रहा है।

मांस मनुष्यके लिए उचित भोजन है या नही इस प्रश्नकी छान-बीन मनुष्य उन सरल साधनोसे नही करता जो प्रकृतिने उसे दिये है। वह दांत और आंतका अध्ययन करता है, मांसके अवयवोको जाननेकी कोशिश करता है—यह मनुष्यकी अस्वस्थ ज्ञान-पिपासाका दूसरा प्रमाण है।

अनेक विद्वानोने जिन्हें मांस खाना निश्चय ही बहुत प्रिय रहा है, कहा है कि मनुष्यके दांतोंको देखकर कहा जा सकता है कि मनुष्य अंशत. मांसाहारी है और आज भी ऐसे वहुतसे लोग हैं जो उनके इस रागको बिना समझे-बूझे अलाप रहे हैं।

जो कुछ भी हो अपने शिकारको पकड़ने और फाड़नेके जैसे नाखून और दांत शिकारी जानवरोंके होते हैं वैसे मनुष्यके नहीं है। इसी तरह मांस-भक्षी पशुकी पाचन-प्रणाली भी मनुष्यकी पाचन-प्रणालीसे सर्वथा भिन्न होती है।

शिकारी जानवर, मसलन कुत्ता, मांसके साथ-साथ हड्डी भी खा सकता है, पर मनुष्य तो ऐसा नही कर सकता। इससे यह साबित होता है कि मनुष्यका आमाशय इन पशुओंसे सर्वथा भिन्न प्रकारका है।

मनुष्यके दांत और आंखकी, फल और शाक खाकर रहनेवालोंकी और मांस-भक्षी तथा सर्व-भक्षी पशुओंके दांतों और आंखोंसे तुलना करनेपर प्रतीत होता है कि मनुष्य शिकारी पशुओंकी जातिका न होकर फल और शाक खानेवाली जातिका ही है। हाथी और चूहोंके दांतोंमे जो साम्य है उससे अधिक साम्य मनुष्य और मांस-भक्षी तथा सर्व-भक्षी पशुओंके दाढ़ और आंखोंमें नही है। मनुष्यकी आंतोंकी लंबाई भी बताती है कि मांस उनके अनुकूल नही है।

यदि प्रकृतिने मनुष्यके लिए मास नही बनाया है तो उसका उपयोग मनुष्यके लिए अवश्य ही क्षतिकारक है। मनुष्य मास खाकर स्वस्थ और मजबूत नही बनता वरन् बीमार पड़ता है और कमजोर होता है।

कहा जाता है कि मनुष्यको मांस खाना चाहिए, क्योंकि उसमें चर्बी होती है जो आदमीको सर्दीसे बचाती है। अगर यही बात है तो शरीरमें आवश्यक गर्मी स्नेहप्रधान मेवे खाकर क्यों

नही उपजाई जाती ? इन मेवोमे मनुष्यके लिए प्राकृतिक चिकनाई पाई जाती है और उनमें वे सब चीजें नही होती जो मनुष्यके लिए हानिकारक और जहरीली हैं।

ग्रीनलैंडमे न शाक होते है न मेवे, जिससे वहांके निवासी, जिन्हे एसकिमो कहते है, पोषण पा सके। अत. वे लोग उत्तरी ध्रुवकी वह कड़ाकेकी सर्दी मांस और पशुकी चर्बी खाकर बर्दाश्त करते है। यह हो सकता है कि चर्बीके आहारके कारण एसकिमो उत्तरकी सर्दीमे रह पाता है, पर उसके इस अप्राकृतिक भोजनके कारण उसका शरीर कुरूप और भद्दा हो गया है और उसका मस्तिष्क विलकुल जड़ ।

लोग अक्सर अपने अप्राकृतिक जीवन, मांस और शराबकी आदतको खराव मौसमके वहानेके पीछे छिपाते हैं। मौसमकी आड़ लेकर वे प्राकृतिक जीवनके विरुद्ध वड़े-वड़े पाप करते है, मौसम उनका विवेक दवा देता है। फलाहार अप्राकृतिक खाद्योंकी अपेक्षा मनुष्यको सर्दी और गरमी सहनेकी अधिक शक्ति देता है।

ऐसा माननेकी तो गुंजाइश नही है कि मनुष्यको, जो पृथ्वीका सर्वाधिक विकसित प्राणी है, पृथ्वीके एक अंशपर ही रहनेके लिए बनाया गया था। बाइबिल कहती है : "पृथ्वीको परिपूर्ण कर।"

पर सारी पृथ्वीको भरनेके लिए, पृथ्वीके प्रत्येक भागमें रहनेके लिए यह आवश्यक नही है कि वह अपने प्राकृतिक भोजनको छोड़े।

उष्ण कटिबंधके उष्णतम भाग और उत्तरके शीततम भाग मनुष्यके रहने योग्य नहीं हैं। पर यदि यह समझा जाय कि प्रकृतिने मनुष्यको गरम जगहमें रहनेके लिए बनाया है तो भी उसे अपना अप्राकृतिक जीवन छोड़कर प्राकृतिक जीवन ही व्यतीत करना आरंभ करना चाहिए। इससे उसकी नैसर्गिक बुद्धि अधिकाधिक जागृत होगी और वे गरम जगहमें रहना पसंद करेंगे। पर वास्तवमें शीतोष्ण कटिबंध ही मनुष्यके रहनेके अधिक उपयुक्त हैं। अपने इस कथनपर मैं अधिक प्रकाश आगे डालूंगा।

मनुष्य ईश्वरकी प्रतिमूर्ति है उसे इस पृथ्वीकी बादशाहत शहंशाहत और दयालुताके भरोसे करनी चाहिए। जब वह अपने भोजनके लिए पशुकी हत्या करता है या उसकी हत्याका कारण होता है तो वह अपने हृदयके अंतर्नादके विरुद्ध चलता है। आज तो मनुष्य अपने इन बांधवोंके खूनसे अपने हाथ लाल कर रहा है। भोजन प्राप्त करनेके लिए किये गये इस पापके फलस्वरूप उसे बहुत कड़ी सजा भुगतनी पड़ेगी।

इस दृष्टिसे मांस खाना अप्राकृतिक रिवाज है, प्रकृतिकी अवज्ञा है जिसका परिणाम बहुत बुरा और खतरनाक होना चाहिए। अप्राकृतिक मांस और अन्य अप्राकृतिक खाद्योंको खानेपर उनका ठीक पाचन नहीं हो पाता। इस तरह खाया हुआ मांस न पचनेपर पेटमें पड़ा सड़ता रहता है, सड़नसे उठा हुआ खमीर शरीर और उसके रक्तमें फैलता रहता है जिसकी

वजहसे अनेक प्रकारकी सूजन उत्पन्न करनेवाली और बुरी-बुरी बीमारियां पैदा होती है।

ग्रीसकी पौराणिक कथाओंमे ओरेस्टेसकी कथा आती है, जिसमे उसने कोई भयानक हत्या की थी और इसका बोझ उसकी आत्मापर बराबर पडा रहता था, उस हत्याका वदला लेनेके लिए इरिनिस नामक देवता उसपर बरावर सवार रहता था। आज मनुष्य-जातिका विवेक अपनी की गई हत्याओके वोझसे दबा पड़ा है और उसे पृथ्वीपर कही सुख और शांति नही मिल रही है।

मांसकी गरमी और उसे स्वादिष्ट वनानेके लिए उसमे डाला गया मसाला और नमक हमेशा नशीले पेय और शराव पीनेकी इच्छा पैदा करते है। इस प्रकार मांस खाना, छिपे हुए शैतान, शराबके घरका दरवाजा खोल देता है। शराव मांसका भाई है, जो निहायत ही पाजी और शरारती है और हमेशा अपने भाईके साथ रहता है। शराव तनिक-सी पी जाय या वहुत-सी, पर क्या किसीसे भी इसका हानिप्रद और खतरनाक रूप छिप सकता है?

शराव स्नायुओको उत्तेजित करता है और इसको पीने-वाला सुंदर सपनोकी मायामें पहुंच जाता है। पर जब नशा उतरता है तो उसकी प्रतिक्रियास्वरूप यह दुनिया उसे नीरस और शून्य लगती है, उसकी यथार्थता उसे कष्ट और पीड़ा पहुंचाती है। शराब पीनेवाले समझते है कि शराबसे उन्हे शक्ति मिलती है पर वास्तवमे वे धोखेमें रहते हैं। बनावटी तरीकेसे

पैदा की गई उत्तेजना स्वास्थ्यके लिए अत्यंत हानिकर है। यदि शराबके क्षणिक प्रभावके भुलावेमें न पड़ा जाय तो यह तुरत समझमें आ जाता है कि शराब शरीरको बहुत कमजोर कर रही है और स्नायु खास तौरसे छिन्न-भिन्न होते जा रहे हैं। शराबसे आत्मा पतित और मस्तिष्क कमजोर होता है। फलतः मनुष्य पाप और दोषकी ओर अग्रसर होता है।

जो मांस नहीं खाता उसकी मानसिक वृत्ति सदा ऐसी रहती है कि उसे शराबका सुंदर किंतु क्षणिक, साथ ही मायावी स्वप्न-सुख भोगनेकी इच्छा नही होती।

पर यदि मांस शरीर और आत्माके लिए इतना हानिकारक है तो सवाल यह उठता है कि क्या बाइबिल और ईसाने मांसका विरोध नहीं किया है? क्या ही अच्छा होता यदि हम फिर अपने जीवनके प्रत्येक कार्यके लिए ईसा और बाइबिलसे अधिक-से-अधिक पथप्रदर्शन ग्रहण करते!

तौरेतके पुराने अनुवादोंमें अनेक भूलें हैं और कुछ तो इतनी भद्दी भूलें हैं कि उनसे मांसके संबंधके उपदेश उलटे अधिक अस्पष्ट हो गये हैं।

खुदाका बनाया पहला कानून यह है:

"देख, धरतीपर जितने दानेवाले पौधे हैं वह सब मैंने तेरे लिए उपजाये हैं; ये तेरे लिए मांस (भोजन)का काम करेंगे।"

इस प्रकार इस उपदेशमें हम देखते हैं कि इस कानूनसे मनुष्यको मांस खानेका हुक्म नही है।

यह कानून हर आदमीकी आत्मापर अंकित कर दिया

गया था, और कोई दूसरा हुक्म अलावा इसके मनुष्यको नहीं दिया गया था। सर्वशक्तिमान् ईश्वरको मनुष्यपर शासन करनेके लिए एकसे अधिक कानूनकी क्या जरूरत हो सकती थी ?

अगर मनुष्यने ईश्वर[1]का बनाया यह पहला कानून माना होता तो दूसरे अन्य कानून और मनुष्यके बनाये आजतकके हजारों कानूनोंकी जरूरत ही न होती।

ईश्वरका बनाया यह पहला नियम बाइबिलमें आगे चलकर फिर दुहराया गया है, उसमें एक रोक लगानेवाला वाक्य जोड़ दिया गया है और दंड देनेकी धमकी भी दी गई है :

"बागके हर पेड़के फल तू खुशीसे खा सकता है, पर ज्ञान, भले और बुरेकी समझवाले पेड़से पैदा हुएको न खाना। अगर तूने उसे खाया तो तुझे मौतकी सजा मिलेगी।"

भला ज्ञानका पेड़ क्या हो सकता है ? कही पेड़में भी भलाई और बुराईको समझनेकी ताकत होती है ?

शुरूमे जिस भाषामें और जिस समय बाइबिल लिखी गई थी उसमें, शब्दोंका बड़ा दारिद्रय था, उसमें उन वृक्षोंके (पेड़)

---

[1]यदि मनुष्य प्रकृति-पथसे न हटा होता, वह गलत रास्ता न पकड़ता तो न उसे हत्या करनेकी इच्छा होती, न झूठ बोलनेकी जरूरत, न वह चोरी करता और न अन्य कोई भी अनैतिक कार्य। ऐसी दशामे उसे अपने अंतरकी उस आवाजको जगानेकी जरूरत नही होती जो उसे ईश्वर और अपने भाइयोके विरुद्ध इन पापोंको करनेसे रोकती है।

लिए जो पृथ्वीमें अच्छी तरह गड़े थे और उन वृक्षों (पशु) के लिए जो विकासोन्मुख होकर पृथ्वीसे अलग हो गए थे एक ही शब्द है 'वृक्ष'। पशु और वृक्षसे भेद करनेके लिए "ज्ञान," भलाई और बुराईकी पहचान आदि विशेषण लगाये गये हैं। वनस्पति-वर्ग और पशु-वर्गमें बहुत निकटका संबंध है। विज्ञान आजकी पौधों, और पशु (अणु-वीक्षण यंत्रद्वारा देखे जाने योग्य कृमि, मूंगा बनानेवाले कीड़े) के बीचकी सीमा निर्धारित नहीं कर पा रहा है। पर आज पशु और पौधोंमें खास फर्क यह समझा जाता है कि पशुमें अनुभव करने और समझनेकी शक्ति होती है।

इसलिए बाइबिलमें वृक्षोंसे पशुओंको अलग करनेके लिए "बुराई और भलाईको समझनेवाला" यह वाक्यांश जोड़ा है। बाइबिलमें पशुको एक जगह 'सजीव वृक्ष' कहा है, अर्थात् वृक्ष (प्राणी) जिसमें जीवन हो। अतः बाइबिलमें यदि "भलाई और बुराई समझनेवाला प्राणी" लिखा होता तो ज्यादा सही होता और इस मार्गसे जो यह समझ सकता है कि क्या बुरा है और क्या भला है, क्या हानिकर और क्या लाभदायक है, और जिसे मनुष्यकी तरह अनुभवकी शक्ति है कोई अन्य नहीं, पशु ही है। मनुष्यके पतनका आरंभ यहींसे हुआ, उसने पहला पाप यहींसे किया कि उसने पशु[1] का निषिद्ध मांस खाया।

---

[1] बाइबिलमें अनेक ऐसे स्थल हैं जिनसे यह प्रमाणित होता है कि मनुष्यका पहला पाप यही था कि उसने मांस खाया था। आरंभमें

इस विचारके विरुद्ध यहां प्रमाण इकट्ठे किये जायं तो वह एक लंबा लेख हो जायगा और यह करना मै उचित नही समझता। हिंदू-धर्मके ग्रथोंमें, जिनका अनुवाद जर्मन भाषामे भी सही-सही मिलता है, पशुका मांस खाना निषिद्ध ठहराया गया है।

प्रकृतिके प्रागणकी ओर दृष्टिपात करनेपर ज्ञात होता है कि केवल मांस खानेवाले प्राणी ही हत्या करते है। प्रकृति मांसाहारीमे हत्याकी इच्छा प्रतिष्ठित करती है। मनुष्यने अपने पतनके बाद पहला या यो कहिए कि एक ही बुरा काम किया था, वह थी हत्या—भ्रातृ-हत्या। इसका अर्थ यही है कि मनुष्यके पतनका कारण मांसाहार है अन्यथा हत्याका यहां कोई अर्थ नही है।

मनुष्यके पतनके बादके प्रसंगोमें चमड़ेका नाम आता है।

"आदम और उसकी पत्नीने चमड़ेके कोट बनाये और पहने।"

अगर मनुष्यने पशुओंको न मारा होता तो चमडा कहासे मिलता? बाइबिल यह दिखाती है कि सुसभ्य आदमी किस प्रकार बहका। शुरूमे मनुष्य स्वर्गीय वायु-मंडलमे रहता था,

---

लोग अपने इस पापको पहचानते थे और इससे बचनेकी कोशिश करते थे पर धीरे-धीरे वे फिसलते गये। अतमे वे अपने इस पापका समर्थन करने लगे और यहातक समझने लगे कि मनुष्य ईश्वरकी ओरसे मास खानेके लिए स्वतत्र है।

वह केवल वही फल खाता था जो प्रकृति स्वतः उपजाती थी। मनुष्यके प्रकृतिपथसे पतनका आरंभ तभी हुआ जब उसने आखेट शुरू किया और आखेटके कारण ही उसका पतन हुआ। आखेटके परिणामस्वरुप मनुष्यने मांस खाया और चमड़ा पहना।

अब आदमी बीमार पड़ा और उस घोड़ेकी तरह अशांत रहने लगा जिसे उसका प्राकृतिक खाद्य घास न देकर साफ की हुई और बनाई हुई जई खिलाई जाती है और जिस अशांतिको दूर करनेके लिए उससे कठिन श्रमसाध्य काम लेना पड़ता है। अब आदमीको काम करना पड़ा, उसने जंगल साफ किये और कृषियुगका आरंभ हुआ।

इस प्रकार आदमी जो खेती कर रहा है वह अपने कियेकी सजा भुगत रहा है।

"तू जमीनपर कहर लाया है, तू जिदगीभर रोयेगा और इसका पैदा हुआ खायगा।"

"यह तेरे लिए कांटे और झाड़ियां भी पैदा करेगी; तू पसीने-पसीने हो जायगा तब कही जाकर तुझे तेरी रोटी मिलेगी।"

यह ईश्वरीय प्रकोप सारी दुनियापर छा गया। मनुष्यकी ओरसे बिना किसी प्रयासके, पृथ्वी पहले फल उपजाती थी। उसे किसी प्रकारकी मशक्कत नही करनी पड़ती थी पर आजका खेतिहर अपनी सारी मिहनतके बावजूद, खराब फसल, घास-फूसका रोना रोता है, चिता और उत्सुकता उसके भाग्यमें लिख गई है।

फलोके बदले अब मनुष्यको खेतकी जडी-बूटी (लेट्स, पातगोभी, हरी मटर आदि) खानी पडती है। यही उसकी सजा है।

"तू खेतमे पैदा की गई जड़ी-बूटी खायगा।"

जितनी भी चीजे आदमी मिहनतसे, खेती-बारी करके उपजाता है उसके स्वास्थ्यके लिए हानिकर है. वे उसकी ऐहिक प्रसन्नताकी घातिका है।

अन्नकी काश्तके बाद लोग अगूरकी काश्त करने लगे और हानिकारक शराबका चलन चला।

"नोथ नामक व्यक्तिने खेती करनी शुरू की और उसने एक अगूरोका बाग लगाया।

"उसने शराब पी और शराब पीकर मतवाला हो गया और अपने खेमेमे नंगा पडा पाया गया।"

"उसके एक लड़केने उसे नगा पडा देखा और अपने दो भाइयोको बताया।" आदि

इसके बाद व्यापार और कलाका रिवाज चला।

"और जिल्हा भी नंगी मिली और ट्यूवलकेन, जो तावे और लोहेके कामका कारीगर था।"

गृहनिर्माणकला भी प्रचलित हुई। बैबीलोनियामें मीनार बनने लगी। और अनेक भाषाएं भी चल पड़ी जिसके फलस्वरूप भाषा-विज्ञान पैदा हुआ।

पर कष्ट धीरे-धीरे बढा, मनुष्य अधिकाधिक गलतियां करने लगा, वह ईश्वर और प्रकृति-पथसे दूर होता गया।

रोग, दुःख, अभाव, असंतोष और निराशा बढ़ती गई। इसीको लक्ष्य करके कविने गाया है :

"हम लोगोंकी उम्र साढे तीन बीसी है, यह बुद्धि और श्रम-बलसे चार बीसी भी बनाई जा सकती है पर उस मेहनत-का फल व्यर्थ आयास और दुःखसे अधिक क्या है ?"

पर कभी-कभी ऐसे फरिश्ते और साधु-संत भी आते रहे है जिन्होंने मनुष्यके प्रकृति-पथसे हटने और मांस खानेके विरुद्ध अपनी वाणीका प्रयोग किया और साथ ही उन्होंने ईसाके अवतार होनेकी ओर सकेतमय भविष्यवाणी की।

तब इस दुनियाकी काली अंधेरी रातका अंत आया और सुंदर प्रातःका आविर्भाव हुआ, दुनियाके बचावनहारका जन्म हुआ।

ईसा आदमके पतनके लिए प्रायश्चित्त करना चाहते थे, वह हमें प्रकृति और ईश्वरकी ओर पुनः लौटा ले जाना चाहते थे, वह मनुष्यके किये गए पहले पाप मास-भक्षणको भी धो डालना चाहते थे। जबतक मनुष्य उससे मुक्त नही हो जाता वह ईश्वरकी भेजी हुई खुशीका स्वागत करने योग्य कैसे हो सकता है ?

ऐसी स्थितिमे ईसा मास कैसे खा सकते थे ? ईसा सबसे अधिक मृदुता और दयाकी शिक्षा देते थे। तो क्या उन्होंने अपनी आत्मा और ईश्वरकी आवाजके विरुद्ध, मनुष्यको राक्षस बनानेवाला पशु-मांस खाया होगा, जिसे जबह करनेमे दयाको एकबारगी तिलाजलि दे देनी पड़ती है ? यह कार्य ईसाकी

दयाका विरोधी होता, वह हत्याके पापसे मुक्त नही हो सकते थे। भला ईसा शरीर और आत्माको रुग्ण बनानेवाला पाप और दोषमे फँसानेवाला मांसका भोजन स्वीकार कर सकते थे ?

तौरेतके अनुवादमे की गई गलतीके समान ही बाइबिलके अनुवादमे भी गलती मिलती है। प्राचीन समयमे लोग मांस खानेके पापके प्रायश्चित्तस्वरूप देवताओंको शात करनेके लिए पशुकी बलि दिया करते थे। इतिहासकारोंका कहना है कि एसेन जातिके लोग, जिनसे ईसा संबधित थे, पशु-बलि नही देते थे। इससे यह आसानीसे समझा जा सकता है कि वे मास भी नहीं खाते थे। धर्मशास्त्रियोंकी भी यही मान्यता है।

इसको इस तरह भी कह सकते है कि वे लोग पशुकी बलि नही चढ़ाते थे, मांस नही खाते थे। ईसा और उनके शिष्योने कभी कोई बलि नही दी। उन्होने तो पशु-वलिका निषेध भी किया है।

"मुझे दया चाहिए, वलि नही।"

जिस किसीने बाइबिलकी भावनाको समझा है और खास तौरसे तौरेतकी, जानता है कि ईसाने मांस खाना साफ-साफ मना किया है और इसमे शक और शुबहेकी जगह ही नही है कि ईसा मांस नही खाते थे।

तर्कके बच्चे सांपसे पैदा हुआ विज्ञान मनुष्यको आज भी उसी प्रकार पथ-भ्रष्ट कर रहा है कि जिस प्रकार इसके पिता सर्पने आदमको स्वर्गमे किया था। यह आज भी पढा रहा है

कि प्रकृति-पथका त्याग करनेसे मनुष्यकी आत्मा और शरीरको अनेक लाभ मिलेंगे।

अभी एक विद्वानने कहा है कि मनुष्यनें परिष्कृत एवं वैज्ञानिक जीवन अपनाकर बडी उन्नति की है, और अंतमे वह देवताओकी तरह अमर हो जायगा।

पर विज्ञान धोखा देने और भुलावेमे रखनेके सिवा अधिक क्या कर रहा है?

प्रत्येक स्थिरबुद्धि और निष्पक्ष व्यक्ति यह कहेगा कि मनुष्य अप्राकृतिक जीवनको अपनाकर देवता नही बन सकता, इसके विपरीत वह रोगी, दुःखी, पापी, पाजी, मूर्ख और सच्चे अर्थमे दानव ही तो बनेगा।

जब ईश्वरके बनाये कानूनकी अवहेलना करनेवाले विज्ञान-द्वारा कूट तर्कपूर्ण वैज्ञानिक आधारोपर मांस-भक्षणका प्रति-पादन किया जाय तो हमे बहुत सजग रहना चाहिए।

ऐसी खतरेकी घड़ीके वास्ते हमे प्रकृतिकी आवाज सुननी चाहिए जो इस संबंधमे निश्चित चेतावनी देती है।

पर शरावके संबधमे ईसाका क्या रुख था? इस प्रश्नका उत्तर भी हमे पाना है।

तौरेतमे लिखा है:

"शोकातुर कौन है? दुखी कौन है? चिंतित कौन है? घवराहटसे भरा जीवन किसका है? अकारण चोट किसे लगती है? आंखे लाल किसकी रहती है?

"वे जो देरतक शराब पीते रहते है; वे जो नशीली शराबकी खोजमे रहते है।"

"उसका अभिमान करना उचित है जो शराबके चक्करमे नही पडता।"

"तू शराबको रौद, पर उसे पी मत।"

"शराब पीकर मतवाला मत हो।"

'अंतिम भोज'के समय ईसाने कहा था :

"आज मै तुम लोगोसे कहता हूं कि अबके बाद मै शराब नही पीऊंगा, और अब मै अपने पिताके राज्यमे चलकर तुम लोगोके साथ नई शराब ही पीऊगा।"

नईका अर्थ है ताजी, जिसमे खमीर न उठा हो। नई शराबका अर्थ है अगूरका ताजा रस। इस अवतरणसे प्रतीत होता है कि इसलिए कि वे अति कठोर प्रतीत न हो और कही उससे जो कार्य[1] वे कर रहे थे उसमे व्याघात न पडे, उन्होने एक बारके लिए शराब पीनेका असाधारण कार्य कर दिया होगा। (ईसाका स्वभाव बड़ा मृदु था, वे लोगोका आग्रह टाल न पाते थे) पर वे हमेशा अगूरके रसकी प्रशसा करते थे और शराबकी बुराई।

कहा जाता है कि ईसाने सानाके विवाहमे बरातियोंके लिए शराब तैयार की थी। पर बहुत सभावना इसी बातकी है कि वह शराब मादक नही थी। यही कारण है कि शादीमे गये

---

[1]इस घटनासे ईसाकी बुद्धिमत्ता और प्रेम-भावनाकी गहराई समझी जा सकती है।

लोगोंने उसे बहुत पसंद किया था। आज भी फलोंके ऐसे अनेक रस बनाये जाते है जिनका स्वाद शराबसे हजार गुना अच्छा होता है।

अग्नि

मालूम नही किस कुसमयमें अग्निका आविष्कार करके मनुष्य प्राकृतिक जीवनसे इतनी दूर हट गया।

आगकी मददसे ही मनुष्य अनेक तरहके अप्राकृतिक भोजन शराब और दवाएं आदि बना सका। सुसभ्य जीवनके सारे साधनोंका जो आरंभसे रोगोंको लिए आ रहे है, और हमारे आजके जीवनके सभी कष्टोका कारण अग्नि ही है।

इसलिए अग्नि ही मनुष्यके सारे कष्टोंका असली कारण है। पर आदमी आज अपने शत्रुको पहचान नही रहा है। वह समझता है कि अग्नि उसकी परित्राणवती है, उसकी वजहसे उसे सुख-संपदाएं मिली है ! पर इस संबंधमें सत्य भावना भी जातिके प्राणोंमें सन्निहित और जाग्रत है। अनेक प्राचीन कथाओंमें अग्निका शत्रु एवं राक्षसोंकी भांति वर्णन है। शैतान-की तस्वीरमे शैतान आग उगलता दिखाया गया है। ग्रीसकी प्रोमोथिस-संबंधी पौराणिक कथामें बड़े चित्ताकर्षक एवं सुंदर रीतिसे बयान किया गया है कि मनुष्यका अग्निका आविष्कार देवताओंको कितना बुरा लगा और उन्होंने मनुष्यको इसके

लिए कितना कठोर दंड दिया और फिर किस प्रकार संसार-की सारी वदमाशियां एक-एक करके अग्निसे पैदा हुईं।

प्रोमोथिस (अर्थात् अग्रवुद्धि) ने स्वर्गसे अग्निको इसलिए चुराया कि उसकी सहायतासे मनुष्यको मास जायकेदार लगने लगे। प्रोमोथिसके इस कार्यसे जेस नामक देवताको वहुत क्रोध हुआ और उसने प्रोमोथिसको काकेसस नामक पर्वतपर ले जाकर जजीरोसे वाध दिया। गीधोने उसका कलेजा निकाल-कर खा लिया। पर उसको मिले वरदानके अनुसार कलेजा फिर निकल आया। गीध फिर झपटे और फिर कलेजा खा गए। इस प्रकार नया-नया कलेजा निकलता रहा और गीध उसे वरावर सताते रहते।

इस कथाके अनुसार आज भी अग्नि मनुष्यका कम अनिष्ट नही कर रही है। यदि मनुष्यके पास भूनने एवं रांधनेको अग्नि न होती तो उसके लिए मांस खाना अशक्य हो जाता। फिर पशुओको पकड़ने और मारनेके औजार-हथियार भी वेकार हो जाते।

मैं पहले ही वता चुका हूं कि शराव और दवाएं अग्निकी ही सहायतासे वनती है। मैंने निश्चित रूपसे यह भी सावित कर दिया है कि सभी वुरी वीमारियां मांस, शराव और दवाओसे ही पैदा होती है। मासकी ही भाति अन्य खाद्योको भी रांधनेसे रोग पैदा होते है।

गंदी हवा-सरीखे अन्य किसी कारणसे पशु वीमार न पड़ जाय तो हरा चारा और वनस्पतियां मिलते रहनेपर वह खूब

स्वस्थ रहता है और उसकी सुंदरता बनी रहती है। यदि उसका चारा और आलू, गाजर, शलजम आदि तरकारियां उसे उबालकर दी जाएं तो यह पका हुआ भोजन लारसे बिना अच्छी तरह मिले ही जल्दी-जल्दी उसके गलेके नीचे सरकता जाता है और वह आवश्यकतासे अधिक खा जाता है। ऐसा भोजन वह कस-कसकर खाता है, जिससे वह मोटा, कुरूप, सुस्त और ढीला अर्थात् बीमार हो जाता है। इस रीतिसे पशुका वजन छ महीनेतक तो बढ़ता जाता है, फिर उसके अधिक खाते रहनेपर भी वजन नहीं बढ़ता वरन् घटने लगता है। और उसे कई तरहके रोग घेरने लगते हैं। उसकी पाचन-शक्ति खराब हो जाती है और पहले जहां थोड़े भोजनसे उसकी शक्ति बनी रहती थी वहां अब ज्यादा-ज्यादा खानेपर भी उसका पूरा नहीं पड़ता।

मनुष्य जो कुछ आज खाता है वह प्रकृतिने उसके लिए नहीं बनाया है, इतना ही नहीं वरन् वह उसे पका-रांधकर अपने लिए अधिक प्रतिकूल---दुष्पाच्य और शक्तिहीन बना लेता है। सोचिए तो सही आगकी सहायतासे हम अपना भोजन कितना हानिकारक एवं अनर्थकारी बना लेते हैं।

इस भोजनसे हमारा पाचन-संस्थान अशक्त हो जाता है और विजातीय द्रव्य (अथवा भोजन) शरीरमें इकट्ठा होने लगता है। फिर यह फोड़े-फुंसी, दाद-खाज, ज्वर आदि अनेक रूपोंमें बाहर निकलता है। रोगके इन लक्षणोंको दबानेके लिए डाक्टर चीर-फाड़ एवं मरहम-पट्टी करते हैं और

रोगीको दवा पिलाते हैं। पर विजातीय द्रव्यके इकट्ठा होनेका काम तो वंद नही होता। और उसे निकालनेके लिए शरीरको फिर-फिर प्रयास करना पडता है। रोगोके कारणकी जानकारी न होनेके कारण आज मनुष्य प्रोमोथिसकी भाति वंधा पडा है और उसे अपने कष्टको सहना है।

यदि हम अपना भोजन वनानेके लिए आगका उपयोग न करे तो हमे पुन. प्राकृतिक भोजनको अपनाना होगा तव डाक्टरोको चीरने-फाड़नेका मौका ही नही मिलेगा।

जिस प्रकार गरम पानीका स्नान त्वचा और स्नायुओको शिथिल कर देता है ठीक उसी प्रकार गरम भोजन आमाशयको। इसलिए अच्छा हो कि जो भी भोजन किया जाय वह ठंडा हो। अधिक-से-अधिक वह सिरगरम हो सकता है। गरम तो वह किसी हालतमे होना ही नही चाहिए। गरम भोजन वहुत हानि करता है।

यदि मनुष्य केवल फल खाता है तो गरम भोजनद्वारा होनेवाली हानिसे वच जाता है। उसे भूखसे अधिक खा जानेका भी खतरा नही है। अप्राकृतिक भोजनमे मनुष्य भूखके अनुसार भोजन करते रहनेकी कोशिश करते रहनेपर भी अधिक खा ही जाता है।

इसलिए मनुष्य जव पका भोजन नही करता तो उसे इतने लाभ मिलते हैं—स्त्रियोको चूल्हेके सामने बैठकर जहरीले धुएंसे अपना स्वास्थ्य खराव करने और रोग लगानेकी जरूरत नही होती। उन्हे अच्छे कामोके लिए समय मिलता है।

वे अपने बच्चोंकी देख-भाल अच्छी तरह कर पाती है। वे ईश्वरके बनाये सुंदर प्राकृतिक स्थानोमे अपना अधिक समय बिताती है। उन्हे अब अपने और अपने कुटुंबियोंके लिए उन खाद्योंके पकानेकी जरूरत नही होती जो समस्त रोगों एवं संसारकी सारी विपत्तिके कारण है। जल्दी ही सारे कुटुबका स्वास्थ्य परिष्कृत हो जाता है जिससे उन्हे अपूर्व शक्ति और प्रसन्नताकी प्राप्ति होती है।

फलों—विशेषत. मेवोंका भोजन शरीरको सब प्रकारकी शक्तियोंसे परिपूर्ण करता है। उनकी मानसिक वृत्तियां उन्नत होती है और उसे देवताओंकी-सी क्षमता प्राप्त होती है।

वर्षो पहलेकी बात है, एक बार इंग्लैडके कोयलेकी खानोंके मजदूरोने हडताल कर दी थी। उन खानोंमें कामके लिए कुछ घोड़े भी रखे गये थे। ये घोड़े वही दस-पंद्रह वर्षोंसे थे। जब उन्हे बाहर प्रकाशमे लाया गया तो वे पागल-से हो गए और वापस सीली, अंधेरी खानोमे चले गए। भोजन पकाना बद कर देनेपर स्त्रियों एवं उनके परिवारवालोको क्या-क्या लाभ होगे, स्त्रियोको जब यह बताया जाता है तब उनकी भी हालत मुझे उन खानके घोड़ोकी-सी होती दिखाई देती है। वे भी चुपचाप अंधेरे रसोईघरमे चली जाती हैं जहां उनके पसीनेसे भरे मुखको धूआं काला करता है, उनकी सूरत ही बदल जाती है। स्त्रियां ईश्वरकी सर्वोत्तम रचना हैं। ईश्वरने उनका निर्माण भाड़ झोकनेके लिए नही किया है।

शराबी यह जानते हुए भी कि शराब पीनेका नतीजा

बहुत बुरा होगा, शराब पीना छोड नही पाता। विद्वान्का पढते-पढते शरीर टूट जाता है, चेहरा पीला पड जाता है और सिर चंदला हो जाता है, वह जानता है कि संसारके सभी सुख उससे दूर हटते जा रहे है पर वह अपनी पढाई छोड नही पाता। इसी प्रकार स्त्रिया यह जानते हुए भी कि भोजन पकाना बद करनेसे उन्हे एव उनके बच्चोको पृथ्वीका सच्चा आनद मिलेगा, वे चूल्हा झोकने-सरीखे अप्राकृतिक कार्यका मोह नही छोड़ पाती।

जब आरभमे प्रकृतिने मनुष्यको पैदा किया था तो वह सर्वांग-सुंदर था। ग्रीसनिवासियोने वीनसकी मूर्तिमे स्त्री-संबधी अपनी पूर्ण भावनाको अभिपिक्त किया है। आजकी स्त्रियां इस सौदर्यसे अनेक अशोमे वहुत दूर हो गई है। इस सौदर्यकी पुन. प्राप्तिका एक ही साधन है—प्राकृतिक जीवन।

प्राकृतिक जीवन स्वास्थ्यका प्रदाता है और स्वास्थ्य ही सौंदर्य है। क्या हमारी स्त्रियोका यह खयाल है कि जिस सौंदर्यकी अभिलापा स्त्रिया करती है वह उन्हे चूल्हा देगा?

प्रकृतिके प्रांगणमे रहनेवाले बूढे और जवान पशुओमे हमे वह अंतर दिखाई नही देता जो हमे मनुष्यमे देखनेको मिलता है। वडी उम्रके पशु ही पशुओमे सुंदर और मजबूत होते है और मादाके पास होनेपर प्रसन्न। प्यार पुष्पसे भी अधिक सुकुमार है, हमारे अप्राकृतिक जीवनके कारण वह बढ नही पाता। सभ्यताके झोकेसे यह मुर्झा जाता है, कभी-कभी यह बच्चोमे उस प्रकाशकी तरह दिखाई दे जाता है जिसका अंत शीघ्र ही

होनेवाला है। आत्माके सुंदरतम आवेगोंका हनन करनेवाली, धूएंभरे रसोईघरसे पुरअसर, दूसरी अन्य वस्तु नहीं है। एक स्वस्थ स्त्री जो अपने स्वास्थ्यके प्रतापसे हमेशा सुंदर एवं युवा वनी रहती है, एक सुकोमल रज्जुके सहारे पुरुषका ही नही सारे ससारका नेतृत्व कर सकती है। क्या ही अच्छा होता कि स्त्रिया अपनेको रसोईघरकी काली कोठरीसे मुक्त कर लेती और प्रेमके अनवरत आनंदकी अधिकारिणी वनती।

आरंभमे पुरुषको जव वह प्रकृतिसे दूर नही हुआ था, उसका पतन नही हुआ था, भोजन-प्राप्तिके लिए उसे पसीना नही वहाना पड़ता था और न उसे अपनी आत्मिक अशांति और खालीपनको दूर करनेके लिए जिस तिस कामको ही करना पड़ता था। निषिद्ध भोजनद्वारा ही मनुष्यपर यह गाज गिरी।

"एड़ी-चोटीका जोर लगानेपर ही तुझे तेरा भोजन मिलेगा।"

यदि स्त्रियां प्राकृतिक जल-स्नान करने लगें, वायु और प्रकाशका सहारा लें तो उनमें एक नवचेतना जागृत होगी और वे अंधेरे काले रसोईघरमे काम ढूंढनेके वजाय अन्य उपयोगी कार्योंमें लगेगी।

सारे अन्वेषण और आविष्कार जिनपर आजकी सभ्यताको नाज है और उसके हवाई जहाज, वारूद, रेल, वाइसिकिल, तार, फोन सभी साधनोंके खतरे और उनके द्वारा की गई हानिको समझनेके लिए हमे अपने दिमागसे सारे पूर्व संस्कारों और पक्षपातको निकाल वाहर करना होगा। आजके लोग

उन्हे देखकर चौधिया गये है। उन्होने ऐसे चश्मे लगा रखे है जिनसे अनिष्ट उन्हे वरदान प्रतीत होता है। इन सिद्धियोद्वारा प्रदत्त रोग, हडबड़ी, अशांति, निराशा और स्नायुदौर्बल्य हमे दिखाई नही देता। जो सुख ये सिद्धिया लाई है वह केवल मृग-मरीचिका है।

इसमे संदेह नही कि आज हम यकायक न अग्निका सर्वथा परित्याग कर सकते है और न तुरत सारे अप्राकृतिक कार्योका अंत ही कर सकते है। हम प्रकृतिकी ओर धीरे-धीरे ही लौट सकते है।

भोजनका उपयुक्त समय

प्रकृति हर एक बातके लिए अपना ठीक नुस्खा हमे दिया करती है—वह हमे यह भी बतलाती है कि हमे भोजन कब करना चाहिए।

प्रकृतिमे सर्वत्र यही देख पड़ता है कि जानवर शामको ही अपना मुख्य आहार ग्रहण करते है। जंगलमे रहनेवाले जानते है कि शिकारी जानवर दिनके समय शायद ही कुछ खाते है। सूर्यास्त हो जानेपर खूब खाने लगते है। जाड़ेके दिनोमे भी, जब जमीन बर्फसे बिलकुल ढकी रहती है, शिकारी जानवर खाद्य प्रस्तुत किए गए स्थानपर शामको ही आते है, हाला कि दिनमे भी वे आना चाहते तो उनके मार्गमे

कोई बाधा न पड़ती । जंतुशालामें भी उन्हें शामको ही खिलाया जाता है ।

प्राय लोग खुमारी उतारनेके लिए प्रातःकाल भी कुछ मद्यपान कर लेते है, पर इसका असर सायंकालीन मद्यपानसे बहुत बुरा होता है । मद्यपानकी गोष्ठियां भी शामको ही जमा करती है, प्रात.काल नहीं जम सकती । प्रात.काल भोजन करनेपर क्लांति जान पड़ती है, पर ब्यालूके बाद ऐसी कोई शिथिलता नही जान पड़ती । प्रातःकाल शरीर खाद्य पदार्थको उतना नही पचा सकता, शामको या रात्रिकालमें ही उदर विशेष रूपसे सक्रिय रहता है ।

ईसाई साधु प्रकृतिके इस अभिप्रायके अनुसार दिनके समय बहुत कम खाते थे । जो लोग इस नियमका कड़ाईके साथ पालन करते थे वे तो सूर्यास्तके पहले कुछ भी नही खाते थे । सब लोग शामको अपने मुख्य भोजनके लिए एकत्र हो जाते थे और उस समय व्यालू भी एक धर्मकृत्य ही माना जाता था । ईसाने अपने शिष्योंके लिए यही नियम रखा था और जिस तरह नियमित स्नान आज बपतिस्मा नामक संस्कारके रूपमे रह गया है उसी तरह यह सायंकालका सहभोज भी 'प्रसाद' पानेके रूपमे बच गया है । प्रकृतिका नियम तो सायं-कालीन भोजनका ही है, पर इसके विरुद्ध बुद्धिका प्रदर्शन करनेके लिए तरह-तरहकी दलीले पेश की जाती है जिनमे कोई दम नही होता ।

अगर प्रात.काल कुछ खाया भी जाय तो सिर्फ नामके

लिए। अगर दोपहरतक कुछ भी न खाया जाय तो बहुत अच्छा। दोपहरतक उपवास करना, जो प्रकृतिके अनुकूल है, जरा भी कठिन नही है। दोपहरके समय भोजन करते समय भी अधिक न खाकर यथासंभव कम खानेका खयाल रखा जाय। शामको बिना किसी हिचकके भरपेट खाया जा सकता है।

मेरा उपचार करनेवाले रोगियोंने यह स्वीकार किया है कि दोपहरतक कुछ भी न खानेपर उपचारसे अधिक लाभ होता देख पड़ा। इसी विचारसे मैं अपने रोगियोको दोपहरतक कुछ भी न खानेकी सलाह दिया करता हू। अगर दिनका भोजन सूक्ष्म रहा है तो सोनेके पहले भरपेट खानेपर किसी तरहकी तकलीफ नही होगी।

बच्चोंके पालन-पोषण एवं शिक्षणकी प्राकृतिक रीति

कितना मधुर और पवित्रतम आनद और कितने प्रकारके अनुभव प्रकृति हमे बच्चोद्वारा प्रदान करती है! बच्चे अनमोल रत्न है, इन्हे ईश्वरने हमे धरोहरस्वरूप दिया है। बच्चेवालोके कर्त्तव्य गुरु है और जिम्मेदारी बहुत बड़ी। हमे अपने बच्चोके लालन-पालन और शिक्षाका अधिक-से-अधिक ध्यान रखनेकी आवश्यकता है। इस सबधमे भी हमे प्रकृतिसे ही सीख लेनी चाहिए और उसीके बताये मार्गपर चलना चाहिए।

प्रकाशमे आनेके वहुत पहले ही शिशुमे प्राण पड़ जाते है।

जिस स्त्रीको वच्चा होनेवाला हो उसका यह समझ लेना कर्त्तव्य हो जाता है कि एक नवीन प्राणीके प्रति उसका एक पवित्र दायित्व पैदा हो गया है और ईश्वरने उसे एक गंभीर काम सौंपा है। इस कालमे उसे गप-वाजी, दुष्कामना, ईर्षा, घृणा, स्पर्धा और सभी प्रकारके उत्तेजक एवं अशांत करनेवाले कार्योंसे किनारा अख्तियार करना चाहिए, उत्तेजना तथा घवराहट पैदा करनेवाले आमोद-प्रमोदसे दूर रहना चाहिए। इसके वदले उसे विधाताकी शांत और गंभीर प्रकृतिका चितन करना चाहिए और आनंदपूर्वक प्रकृतिमे विचरण करना चाहिए। मैंने अपनी इस पुस्तकमे प्राकृतिक जीवनका यथेष्ट वर्णन किया है। गर्भिणी स्त्रीको यह जीवन विताना आवश्यक है। इस समय वेष-भूषाके संवंधमे भी और दिनोंकी भांति अविवेकी न वनना चाहिए। माताओंको इसका ज्ञान नही है कि वच्चा जननेके पहले ही वे उसके प्रति कितना वड़ा पाप कर सकती है।

स्त्रीके गर्भमे जव वच्चा वढ़ता रहता है उस समय उसके जीवनके परिवर्तनोंका कितना सीधा प्रभाव वच्चेपर पड़ता है यह हम नही जानते यह हमारा दुर्भाग्य ही है।

ऐसे अनेक जड़ और पागल जिन्हे दुनियामे न शांति ही है न किसी प्रकारका आराम, और जो पाप और दोपमे लिपटे ही रहते है और पृथ्वीपर भारस्वरूप हो रहे है, उनमेसे अधिकांशके कष्टका कारण उनके गर्भमे रहते समय उनकी मातापर पड़ा

हुआ कोई अशुभ प्रभाव ही है।

कितना अच्छा होता कि इन अभागोको देखकर माता-पिता इसका अंदाज कर सकते कि वे अपने बच्चोके प्रति कितना बड़ा पाप कर सकते है।[1]

---

[1]यहां मै डाक्टर राशकी लिखी छोटी पुस्तक "स्त्रियोके अधिकतर जीर्ण रोगो एव उनके स्थायी कष्टोका कारण"की ओर पाठकोंका ध्यान आकर्षित करना चाहता हू। यह पुस्तक विवाहितोको वताती है कि सयोग-सबधी कितनी भयकर भूले उनसे वन पड़ती है। लोगोकी ऐसी धारणा-सी हो रही है कि विवाहित अनियत्रित सभोग कर सकते है। ये घातक विचार है और इनका परिणाम माता-पिता और उनके बच्चोको भी सहना ही पड़ता है। यह पाप है। पर खेद है कि अविवाहितोद्वारा किए गए पापको ही आजका समाज दुराचार कहता है।

सयोग, जाति-रक्षाके महान उद्देश्यके लिए ही होना चाहिए। अन्य जीवोकी तरह आरभमे मनुष्य इस सवधमे भी प्रकृतिकी आवाज सुनता था। यह आवाज होती थी एक लवे अतरपर, पर सुनाई देती थी स्पष्ट। आज इस सबंधमें भी मनुष्य अपनी हीन एवं घृणास्पद इच्छाका शिकार हो रहा है। बच्चा पैदा करनेके लिए आज सयोग नही होता, लोग तो यह देखकर घवराते है कि सयोगसे बच्चे भी पैदा होते है। वे प्रकृतिके इस कार्यमें अकसर बाधा डालनेकी भी कोशिश करते है। वाह! प्रकृति और मनुष्यकी कैसी प्रतिद्वद्विता चल रही है? प्रत्येक पत्रमे गर्भ-निरोधकी दवाका विज्ञापन खुल्लमखुल्ला छपता है। प्रकृतिके विरुद्ध किए जाने-वाले ये पाप बताते है कि मनुष्यजाति ह्रासकी ओर अग्रसर हो रही है। आज अनाचार और अनैतिकताकी कोई सीमा नही रह गई है गो कि इसका फल मनुष्यको पग-पगपर भोगना पड़ रहा है। अब शीघ्र ही ज्ञात हो

जो स्त्री थोड़ा भी प्राकृतिक जीवन व्यतीत करती है उसे प्रसव-समयकी पीड़ासे डरनेकी जरूरत नही है। उसे बड़ी आसानीसे वच्चा हो जायगा। यदि पीडा हो तो पेडूपर मिट्टीकी पट्टी रखनेसे बहुत मदद मिलती है। सौरीमें वायु और प्रकाशकी बड़ी आवश्यकता होती है अतः सौरीकी सारी खिड़कियां खुली रखनी चाहिए।

नवजात शिशुको गरम पानीसे न नहलाकर उसे ठडे पानीसे शीघ्रतासे नहलाना और साफ करना चाहिए। इससे बालकको शक्ति प्राप्त होती है और वह सहनशील बनता है। सालकी कोई ऋतु भी क्यों न हो वच्चोको जब भी नहलाया जाय ठंडे पानीसे ही--इसकी आदत आरभसे ही डालनी चाहिए, इससे वच्चे जन्मसे ही बीमार एवं दुर्बल होनेसे बचेगें। कड़ाकेकी सर्दीमे इस पानीका ताप अधिक-से-अधिक कमरेकी गरमी-जितना कर लिया जा सकता है।

वच्चेको कोट और मोजोमे कसनेकी जरूरत नही है। उसके शरीरपर वायु और प्रकाश लगने और उसमे प्रवेश करनेका पूरा मौका देना चाहिए। अकसर बच्चेको नगा रखना चाहिए इससे उसकी जीवनशक्ति वढ़ती है।

जव नवजात शिशु अपनी संसार-यात्रा आरंभ करता है

जायगा कि इस सवधमे मनुष्यजातिने अपनी कितनी हानि की है। पर लोग यदि प्राकृतिक जीवनकी ओर अधिकाधिक अग्रसर होगे तो ये पाप अपने आप वद हो जायगे अन्यथा इनको निश्चित रूपसे कम किया जा सकेगा।

स्वतंत्रता, वायु और प्रकाशके प्रति उसके मनमें चाह उत्पन्न होती है। पर इसके विपरीत जद वह अपनेको कपड़ोसे लपेटा और बधा हुआ दूषित वायुसे परिपूर्ण कमरेमे पाता है, तो जीवन-के प्रति उसका सारा उत्साह ही समाप्त हो जाता है। यदि बच्चेको कभी हवा खिलाने ले भी जाते है तो मोटे-मोटे कपड़ोसे ढककर और जिस गाड़ीमे उसे टहलाने ले जाते है उसे भी पूरी तरह ढकी रखते है इस डरसे कि बच्चेतक कही वायु और धूप पहुच न जाय।

गावके लोग अपनी गाय-बकरियोंके बच्चोको खास तौरसे धूपमे ले जाते है और यह देखकर खुश होते है कि बच्चे धूप खा-कर प्रसन्न होते है और शीघ्रतासे बढते है। अपने बच्चोको हम शक्ति-प्रदायिनी वायु और जीवनदायी सूर्यसे दूर रखते है। यदि इस दशामे बच्चे कमजोर रहे या अकालमे कालकवलित हो जायं तो इसमे क्या आश्चर्य है ?

बच्चोके दिनभर रोने और रो-रोकर अपनेको थका डालने तथा माता-पिताको हैरान करनेका कारण बच्चेके माता-पिता ही है। बच्चेको जरा स्वतत्र कीजिए, उसके बदनपरसे भारी कपड़े हटा दीजिए, उसे वायु और प्रकाशमे रखिए, फिर देखिए वे कितने शांत रहते है और कितनी जल्दी-जल्दी बढते है। यदि इस सारी गड़बडीके कारण बच्चेकी पाचनशक्ति खराब हो जाय तो पेडूपर ठडी पट्टी रखनी चाहिए। ठंडे पानीमे भिगोकर कपड़ेकी पट्टी भी रखी जा सकती है, पर मिट्टीकी पट्टीसे शीघ्र लाभ होता है।

आज जैसी भयंकर भूले बच्चोकी चिकित्सामे की जाती है उन्हें देखकर तो ताज्जुब ही होता है कि क्यों इतने कम ही बच्चे मरते है ? इससे प्रमाणित होता है कि मनुष्यको आरंभसे ही पशुसे अधिक जीवनशक्ति मिली होती है। क्योकि मनुष्यका बच्चा जिन अप्राकृतिक उपचारोको सहकर जीवित रहता है वह उपचार यदि पशुके बच्चेका किया जाय तो वह कभी भी जीवित नही बच सकेगा ।

बच्चोंके जीवनके आरंभिक वर्षोमे की गई गलतियों-का बुरा असर उसके जीवनपर्यंत चलता रहता है। इस-लिए हमे सदा प्रकृतिका अधिक-से-अधिक सहारा लेना चाहिए।

शुरूमें बच्चेको माताका ही दूध मिलना चाहिए। गर्भ-वहन करते समय एवं बच्चेको पिलाते समय यदि माता प्राकृतिक जीवन व्यतीत करे तो निश्चय ही उसे अपने बच्चेके लिए पूरा दूध होगा। यह सोचना मूर्खतासे खाली नही है कि माताके मांस खाने और शराब पीनेसे बच्चेको यथेष्ट शक्ति और पोषण मिलेगा। ऐसा करनेसे तो माताको दूध कम होगा और बिल्कुल खराब होगा।

अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करनेके कारण यदि माताका दूध सूख जाय तो बच्चेको नीरोग धायका दूध मिलना चाहिए। इसके अभावमें उसे चरनेवाली, स्वस्थ, स्वच्छ गायका कच्चा बिना उबाला हुआ दूध देना चाहिए।

हम लोग कीटाणुओके डरसे कच्चा दूध बर्तते डरते है और

समझते है कि दूधको गरम करनेसे कीटाणु मर जाते है और दूध निरापद हो जाता है। कीटाणु अन्य कृमियोंकी भांति ही सड़नसे पैदा होते हैं। जिस प्रकार मैली त्वचापर चीटियां-फतिगे आ जाते है उसी प्रकार जब शरीरमें स्थित विजातीय द्रव्य सड़ने लगता है तब कीटाणु पैदा हो जाते है। यदि शरीरमे कीटाणु बाहरसे घुस भी जायं तो यदि उन्हे वहां उपयुक्त खाद (विजातीय द्रव्य) न मिले तो वे कभी जीवित न रह सकेंगे। यदि हम प्राकृतिक जीवन व्यतीत करे, अपने शरीरमे विजातीय द्रव्य न पैदा होने दे तो हमे कीटाणुओंसे डरनेकी आवश्यकता नही है। पर यदि हमारा शरीर गंदा हो तो खाद्योके उबालने अथवा कृमि-विहीन करनेकी कोई क्रिया हमे उनसे बचा नही सकती। यदि शरीरमे या दूधमे विजातीय द्रव्य पैदा हो गया है तो वहां कृमियोका होना आवश्यक है। वे वहां पहुंचकर एक आवश्यक कार्य करते है।

यदि रोगी गायका दूध उबालनेसे उसके कीटाणु मर भी जाय तो वह विजातीय द्रव्य तो नष्ट नही हो जाता जो सचमुच भयानक चीज है और जिसके कारण उस दूधकी ओर कीटाणु आकर्षित होते हैं।

यदि बच्चेके शरीरमे विजातीय द्रव्य यथेष्ट मात्रामें हो तो उसे कीटाणुओसे किसी प्रकार भी नही बचाया जा सकता और यदि न हो तो कीटाणु उसे कोई हानि नही पहुचा सकते। जिस कच्चे दूधमे कीटाणु पैदा हो गए होते है उसमे उबाले दूधकी बनिस्बत सड़न शीघ्र पैदा होती है और वह पचता भी शीघ्रतासे

है। कीटाणु कभी-कभी पाचनमें भी सहायक होते हैं। दूधको उबालकर हम उसे दुष्पाच्य अतएव हानिकर बनाते हैं, ऐसे दूधके पीनेसे बच्चेके शरीरकी बाढ़ रुकती है।

भाप या अन्य किसी प्रकारसे गरम किया हुआ दूध भी उबाले दूधके समान ही हानिकारक है।

इसलिए बच्चेको, जबतक वह मेवे खाने लायक न हो जाय, माता या गायका दूध ही पिलाना चाहिए।

जईके दलिए आदिका भी, जो बच्चोंके भोजनके नामसे डिब्बा-बंद बाजारमें बिकते हैं, पूरा बहिष्कार होना चाहिए। इनके मुकाबलेमें बच्चोंको कुछ उबली तरकारियां और थोड़ी रोटी देना अच्छा है। बच्चोंको छुटपनसे ही दूध और मेवे अच्छे लगते हैं और यह उनके अनुकूल भी होते हैं। फलाहारसे बच्चेकी जो ऐसी शारीरिक और मानसिक उन्नति होती है उसे देखकर माता-पिताको हार्दिक आनंद प्राप्त होता है।

हमारे आजके बनावटी जीवनके दुःखद वातावरणमें आज भी स्वर्गका एक द्वार खुला हुआ है। वह है बच्चे। बच्चोंको फल खाने दें अन्यथा आप इस द्वारको भी बंद कर देंगे—और उनके बहुतसे आनंद और प्रसन्नतासे उन्हें वंचित कर देंगे। उन्हें कच्चे और अधपके फल भी बिना किसी डरके दिये जा सकते हैं। ये उनके लिए विशेष लाभदायक हैं।

ईसाने कहा है :

"बच्चोंको कष्ट न दो, उन्हें मेरे पास आनेसे मत रोको।"

ईसाके अधिकतर अनुयायी गांवोंमें रहते थे और कारीगरी

तथा किसानीका काम करते थे---उनमें जो कट्टर होते थे वे हमेशा खुलेमे पहाड़ अथवा रेगिस्तानमे रहते थे और उनमेंसे बहुतसे केवल वही खाते थे जो पृथ्वी अपने आप बिना किसानी या बागवानीके उपजाती है। इन पूर्णत प्राकृतिक जीवन बितानेवालोंको कभी-कभी शिक्षणके लिए बच्चे सौपे जाते थे।

इस प्रकार जब 'जान' निरे बच्चे थे, उनके माता-पिताने उन्हे शिक्षा प्राप्त करनेके लिए एक रेगिस्तानमे भेज दिया था। उनके बारेमे कहा गया है :

"बच्चा बढा और मजबूत हो गया और इजराइलियोका साथ होनेतक रेगिस्तानमे ही रहा।"

हां, यदि बच्चे प्राकृतिक जीवन व्यतीत करना आरंभ कर दे तो यह निश्चित है कि उन्हे वह स्वास्थ्य और आनद मिलेगा जिसे प्राप्त कर सकना बड़ोंके लिए साधारणत· सभव नही है। इसलिए मै माता-पिताओसे बहुत जोर देकर कहना चाहता हू कि वे अपने बच्चोको प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने दे, उन्हे प्रकृति-पथपर लौटा ले चले। इस कार्यके फलस्वरूप इस संसारमें वे अनिर्वचनीय आनदके अधिकारी होगे और जब वे स्वर्गमे पहुचेगे तो ईश्वर उन्हे उनके इस उत्तम कार्यके लिए पुरस्कृत करेगा।

जिन बच्चोकी नैसर्गिक बुद्धि तीव्र रहती है वे अकसर पका भोजन ग्रहण नही करना चाहते, उन्हे फल ज्यादा पसद आते है। पर उन्हे जबरदस्ती अप्राकृतिक भोजन कराया जाता है और कभी-कभी तो मार-मारकर। इसके फलस्वरूप वे स्वभावत. बीमार पड़ते है। उन्हे दवा दी जाती है, वे फिर इसे भी लेनेमे

पूरी आनाकानी तथा विरोध करते है, इस समय भी माता जिसके हृदयके कोने-कोनेमे रोगी बच्चेके प्रति प्यार भरा रहता है, कठोरतासे काम लेती है, गोकि उसका हृदय अंदरसे रोता रहता है, बच्चेको जबरदस्ती दवा पिलाई जाती है और कभी-कभी तो कार्यकी सफलताके लिए छड़ीसे भी काम लेना पडता है। पर जब अप्राकृतिक चिकित्साका प्याला लबरेज हो जाता है, बच्चा उसके बोझके नीचे टूट जाता है और धरती माताकी शीतल गोदमें शरण पाता है। माता दु:खभरा टूटा दिल लिए बच्चेकी छोटी कब्रके पास खडी रहती है, बेचारीको इसका पता नही होता कि बच्चेकी मृत्युका कारण वह स्वयं है।

साधारणत. माता-पिता यही चाहते है कि उनके बच्चे सदा मोटे-ताजे बने रहें। जबतक कि उनके बच्चे मोटे किए गए सूअरोकी भांति या चित्रोमे अंकित देवताओंके दरबारमें तुरही बजानेवाले फूले हुए बच्चोकी तरह नही हो जाते, उन्हे संतोष नही होता।

बडे भी मोटे, मांसल होने और अपना वजन बढ़ानेके फिक्र-मे रहते है। पहले वे यह नही चाहते कि उनका पेट लटक आए, तब भी ये आदमीका मूल्य खिला-पिलाकर खानेके लिए मोटे किए गए पशुके समान ही समझते हैं।

यह भी प्रकृतिके विरुद्ध है, अतः सर्वथा गलत है।

प्रकृतिके प्रांगणमे विचरण करनेवाले पशुको देखिए, वह बच्चा हो या बडा या बूढा, उसका शरीर बड़ी सुंदर रीतिसे सुगठित एवं संतुलित होता है। न उसका शरीर ही मोटा होता और न कोई अंगविशेष ही फूला रहता है।

मनुष्यको तभी स्वस्थ समझना चाहिए जब कि उसका शरीर सुडौल है, एव उसके अग अनुपातयुक्त है तथा वह मोटा-भद्दा नही हो जाता और उसके शरीरपर जगह-जगह चर्बी नही चढ़ जाती। अधिकतर फल खाकर रहनेवालेका ही शरीर सुंदर एव सुगठित रह सकता है और यही भोजन मनुष्यको स्वस्थ रखता है। इसलिए बच्चोको अधिकतर फल खिलाकर ही रखना चाहिए, ताकि वे भद्दे-मोटे न होकर सुंदर एवं सुरूप हों। स्वस्थ और सुंदर शरीरका गठन कैसा होना चाहिए यदि यह जानना हो तो अपोलो और बेल्वेडियरकी मूर्तियां देखी जा सकती है।

सबसे अधिक भयानक एवं घातक गलती जो मनुष्यने अब-तक अपने अनजानमे प्रकृतिके प्रति की है वह है टीकेका चलन।

यह विज्ञान एवं आकडोके आधारपर सावित कर दिया गया है कि टीका लगाना अनिवार्य होनेके पहले बच्चोंको चेचक अधिक होती थी। जो प्रकृतिको समझता है वह आसानीसे अनुमान कर सकता है कि टीका लगाना कितना नुकसानदेह है। छोटे बच्चोंमे काफी जीवन-शक्ति होती है जो उनके शरीरमे इकट्ठे पैतृक विजातीय द्रव्यको, बच्चोके रोग कहे जानेवाले उभारोंद्वारा, जिनमें चेचक भी एक है, निकालनेकी कोशिश करती है। इस शक्तिको टीकेका जहर बेकाम कर देता है। इस प्रकार बच्चेकी बाढ़मे अडचन पड़ती है और उसे प्रकृतिका सहारा पाकर शरीरका शोधन करनेवाले तीव्र रोगके बजाय बुरा जीर्ण एवं सांघातिक रोग हो जाता है।

टीका एक वार देनेके वाद जव वह कुछ वर्षों वाद दुहराया जाता है उस समय यह स्पष्ट दिखाई देने लगता है कि टीकेके फलस्वरूप शरीरमे कई प्रकारके रोग उत्पन्न होनेकी चेष्टा कर रहे है।

पता नही मनुष्य-जातिको इस भयंकर भूलसे कब मुक्ति मिलेगी जिसके द्वारा वह अपने वच्चोपर कानूनन वड़े-से-वडा कष्ट और कठोर-से-कठोर यातना लादती है।

मै यहां फिर जोर देकर यह कहना चाहता हू कि गंडमाला, लकवा, मिरगी एव अन्य अनेक प्रकारके स्नायु-संवधी रोग जो लोगोको अकसर होते रहते है, अधिकतर टीका लगवानेका फल है।

यदि टीका लग ही जाय तो उसपर मिट्टीकी ठंडी पुल्टिस वाधनी चाहिए और उसे दिनमे कई वार और कई दिनोंतक वाधते रहना चाहिए। पुल्टिस जहा टीका लगा हो उसके चारों ओर दूरतक फैला दी जाय। इस वक्त वच्चा सर्वथा प्राकृतिक जीवन व्यतीत करे। यदि इतना कर लिया जाय तो टीकेसे कोई हानि होनेकी संभावना नही है।

यदि टीका लगानेपर उस जगह दाने न उभरे तो कानूनन फिर टीका लगवाना होता है, ऐसी हालतमे यदि दुवारा टीका लगे तो उसकी चिकित्सा पहले वताई रीतिसे करनी चाहिए। तीन वार टीका लगानेके वाद चौथी वार टीका लगानेकी इजा-जत कानून नही देता।

रोगनाशक टीकोंके विरोधमे यहा कुछ विशेष तौरसे

कहनेकी आवश्यकता नही है। ये भी कम जहरीले नही होते। इनके लगानेसे डिप्थीरिया दब सकता है पर टीकेके फलस्वरूप डिप्थीरियासे भी भयानक रोग कैसर, पागलपन आदि उभर सकते है।

अन्य तीव्र रोगोकी तरह डिप्थीरियाका इलाज भी बच्चेका सर्वनाश किए बगैर प्राकृतिक रीतिसे आसानीसे एव निश्चयात्मक रूपसे हो सकता है। मृत्युके इस दूतसे माता-पिताको जरा भी डरनेकी जरूरत नही है। इस रोगसे घबराकर जल्दीमे उन्हे अपने बच्चेको इसके "प्रतिरोधक" इजेक्शन नही लगवाने चाहिए।

बच्चोके सारे रोग स्वास्थ्यकारक उभारमात्र है, उनके सबधमे किसी प्रकारकी चिताकी जरूरत नही है। कोई भी रोग (डिप्थीरिया, मोतीझरा, लाल बुखार, मीयादी बुखार आदि) होनेपर पहली बात यह करनी चाहिए कि कमरेकी खिड़कियां खोलकर बच्चेको नंगा ही लिटा देना चाहिए और यदि वह चाहे तो वही चलने-फिरने देना चाहिए। यह जितनी ही देरतक किया जा सके उतना ही अच्छा है। यदि संभव हो सके तो इस समय बच्चेका खुली जगहमे टहलना ज्यादा अच्छा है। इस समय प्राकृतिक स्नान भी कराना चाहिए और पेड़पर मिट्टीकी पट्टी रखनी चाहिए। यदि बच्चेको डिप्थीरिया हो गया हो तो मिट्टीकी पट्टी गर्दनपर रखनी चाहिए। यह भी आवश्यक है कि बच्चेको कुछ भी खानेको न दिया जाय, और यदि दिया भी जाय तो बहुत थोड़ा, सो भी फल और मेवे। ज्यो ही

सभव हो बच्चेको बाहर खुली जगहमें जाने देना चाहिए (यदि सभव हो तो नगे बदन ही)। इस विधिसे रोग जिस तेजीसे जायंगे उसे देखकर आपको आश्चर्य होगा और आप देखेंगे कि रोग जानेके बाद बच्चे अधिक प्रसन्न रहने लगे है और उनके चेहरेपर आभा आ गई है। तीव्र रोगके द्वारा बच्चेका शरीर बहुतसे विजातीय द्रव्य और कूड़े-करकटसे अपनेको मुक्त कर लेता है।

हमारे अनेक अप्राकृतिक ढंगो (गलत भोजन, वायु एवं प्रकाश-विहीन कमरेका वास, मोटे रंगीन चुस्त कपड़ोंका पहिनाव)के कारण बच्चे सुकुमार हो जाते है। अकसर वे मद्यरूपी राक्षसीके चंगुलसे भी दूर नही रखे जाते। स्कूलमे पहुंचते-पहुंचते लडके अपने बड़ोके दोषोकी नकल करने लगते है। वे बड़े घमडके साथ शराब और सिगरेट-बीड़ी पीने लगते है। सभी बडे, और खास तौरसे अध्यापक, यदि उच्च जीवनका उदाहरण बालकोंके सामने रख सके तो इस दिशामे बहुत काम हो सकता है।

विलासिता एव अन्य प्रकारकी अप्राकृतिक आदतोके तथा आजकी सर्वादृत एवं सर्वगुणकारी (!) स्कूलकी पढ़ाईकी अविवेकपूर्ण आवश्यकताओ एव श्रमके कारण बच्चोंके स्नायुओंपर आवश्यकतासे अधिक भार पड़ता है और वे कमजोर हो जाते है। इस प्रकार बच्चोमे असमयमे ही कामुकताकी प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है, जिसे वे वशमे नही कर पाते। फलतः जवानीके सबसे अधिक घातक शत्रु हस्तमैथुनका पदार्पण होता है। बच्चेके आचरणमे आए शर्मीलेपनको देखकर सजग

माता-पिताको तुरंत अंदाज हो जाता है कि उनका लड़का यौवनके सबसे बड़े शत्रुके चंगुलमे फँस गया है जिससे छुटकारा पानेके लिए बेचारा तड़फड़ाया करता है, मन-ही-मन बुरी तरह अपनी भर्त्सना करता है और आत्मग्लानिसे मरता रहता है। माता-पिताको चाहिए कि इस रोगके शिकार बच्चेको कोई दंड न दें। ऐसे बच्चेका मानसिक एव आत्मिक विकास मार-पीट और जोर-जबरदस्तीके बजाय बिल्कुल भिन्न ही रीतिसे करना चाहिए। दंड खास तौरसे शारीरिक दंड तो कभी देना ही नही चाहिए। कड़े दंडके भयसे बच्चेको इस रोग-से मुक्त करनेकी कोशिश करना बिल्कुल गलत है। इस वक्त तो बच्चेको प्यारकी खास तौरसे जरूरत होती है। माता-पिताको बड़े प्यार और कोमलतासे ऐसे बच्चेकी चिकित्सा जल, प्रकाश, वायु, प्राकृतिक भोजन, कसरत आदि प्राकृतिक साधनोद्वारा करनी चाहिए। इस विधिसे उनका बच्चा उस राक्षसके हाथसे शीघ्रतासे मुक्त हो जायगा और फिर स्वाभाविक रूपसे प्रसन्न बदन रहने लगेगा और उसका चेहरा चमकने लगेगा।

जब बच्चोको इस तरह नही संभाला जाता तो वे जवान हो जाते है पर उनमे न जवानीका उत्साह होता है न आनंद, जीवन उन्हे भारस्वरूप लगता है। वे कमजोर, चिड़चिड़े और थके-से रहते है और उनमे किसी प्रकारकी आशा नही रह जाती। उनकी आखोको देखनेसे प्रतीत होता है कि वे आत्मग्लानि और दु:खमे डूबे रहते है।

अकसर बच्चोंको सोये-सोये बिछावनमे पेशाब कर देनेकी आदत पड़ जाती है। यह आदत भी प्राकृतिक चिकित्साद्वारा छूट जाती है। इस रोगसे पीड़ित बच्चोंको भी किसी प्रकारका दंड देना पाप है।

एक बार फिर मै नंगे पैर चलने और खास तौरसे बच्चोके लिए नंगे पैर चलनेकी आवश्यकतापर जोर देना चाहता हूं। बच्चोंके कपड़ोंको भी सादा और प्राकृतिक रखनेपर मै एक बार फिर जोर देना चाहता हू। छातीको व्यर्थके कसे कपड़ेसे ढके रहनेकी जरूरत नही है। यह नियम बच्चो और बड़ोंको समान रूपसे पालन करना चाहिए। कपड़े ढीले रहे, ताकि हवा छातीतक पहुंच सके। बच्चोंके कपड़े बनाते वक्त इसका खास खयाल रखना चाहिए।

कई बार प्राकृतिक जीवनके अनुकरणसे बच्चोकी बढ़ी मानसिक शक्ति देखकर मुझे आश्चर्य हुआ है। दर्जेमे हमेशा पिछड़े रहनेवाले लड़कोको शीघ्र ही पाठ याद होने लगे और वे जल्दी बिना किसी प्रयासके अपने साथियोंसे आगे बढ़ गए।

मैने देखा कि इनमेंसे कई युवक, जो फौजमे भर्ती हो गए, वहांके कठिन जीवन और परिश्रमको खुशी-खुशी बिना किसी प्रयासके बर्दाश्त कर रहे थे। आगे चलकर तो उन्होने फौजमे बड़ा नाम कमाया।

मैने बार-बार कहा है कि प्राकृतिक जीवनका मनुष्यपर एक बड़ा प्रभाव यह भी पड़ता है कि मनुष्यकी आत्मा परिष्कृत होती है और वह भद्र बनता है। यह चीज बच्चोमे बराबर

देखनेको मिल सकती है। निश्चय ही प्राकृतिक जीवन वह नीव है जिसपर आत्माके लिए ईमानदारी और सचाईका भव्य प्रासाद बन सकता है। इसलिए प्राकृतिक जीवन व्यतीत करते समय हमें आत्माको निर्दोष बनानेका पूरा प्रयास करना चाहिए और बच्चोंकी शिक्षा-दीक्षामें इसका विशेष यत्न करना चाहिए।

बच्चोंकी प्राकृतिक शिक्षा क्या है ?

मनुष्य ईश्वरकी प्रतिकृति है, वह प्यारका सार है। इसलिए उसकी शिक्षा प्रकृतिके अनुरूप ही होनी चाहिए। जहांतक बन सके मनुष्यमें ईश्वरीय भावको लौटाना चाहिए।

ईसाने कहा है :

"तू अपने सच्चे मालिक ईश्वरको पूरे दिलसे अपनी रूह और अपने दिमागकी सारी ताकतके साथ प्यार कर।"

"अपने पड़ोसीको तू उसी तरह प्यार कर ज़िस तरह तू अपनेको प्यार करता है।"

इन शब्दोंमें मनुष्यके लिए सही प्राकृतिक शिक्षा भर दी गई है।

शिक्षणपर आजतक जो बड़े-से-बड़े ग्रंथ लिखे गए हैं, इस गंभीर विषयपर जितने अधिक-से-अधिक विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान हुए हैं उन सबमें मिलाकर उतना भी सार नही है जितना

ईसाके केवल इस एक वाक्यमें है। आज लोग युवकोंको वैज्ञानिक ढंगसे शिक्षा देते है, पर होता यह है :

"ज्ञान बढ़ जाता है; पर हृदय चला जाता है।"

एक लड़का, जो जिस तिस तरह लैटिनकी पहली किताबके शब्द याद कर लेता है, अपने साथ खेलनेवाले लड़केको जो साधारण स्कूलमें पढने जाता है हेठी निगाहसे देखने लगता है, और जल्द ही उसका साथ छोड़ देता है। इस प्रकार ज्यों-ज्यो लड़का पढ़ाईमे बढता जाता है उसका झूठा घमंड और बनावटी ढंग बढता जाता है, जो बहुत खतरनाक है। लेकिन हमे आजकी शिक्षाद्वारा पैदा हुई कृत्रिमता और खोखलेपन तथा सचाईके अंतरको समझना चाहिए। हमारे आजके युवककी चाल सुधारनेके लिए उससे ड्रिल कराई जाती है, उसमें बाहरी चाल-ढालके सब नियम बताए जाते है, पर उसके हृदय और स्वभावको सुंदर बनानेके लिए कुछ भी नही किया जाता। उसकी आत्मामें दृढता आनेके बदले उसका अधःपतन हो जाता है। अप्राकृतिक जीवन बितानेवाले फूहड़ अशिक्षित लड़कोंका उदाहरण भी अनुकरणीय नही है पर उनका अपरिष्कृत व्यवहार ऐसी नम्रता और मैत्री भावनासे अच्छा है जिनका हृदयसे कोई संबंध नही है। बनावटी नम्रता और सहृदयता धोखा और दगाबाजी नही तो और क्या है ? अतः बच्चोंको प्राकृतिक जीवन बिताना सिखाना चाहिए, यह उन्हें ईश्वर और मनुष्यको प्यार करना सिखावेगा और प्रेम ही हमारे जीवनको उन्नत बना सकता है। हमे उन्हें अपने

साथीको सच्चे हृदयसे प्यार करना सिखाना चाहिए। क्योकि ईसाके शब्दोको दूसरी तरह यों भी तो कहा जा सकता है कि जो अपने पड़ोसीको प्यार करता है वह ईश्वरको भी प्यार करता है। युवकोको ईश्वरको प्यार करना अवश्य सीखना चाहिए और अपने साथियोके प्रति अपने हृदयमे प्रेम और मैत्रीकी भावना रखनी चाहिए जिसे उन्हे गरीब-अमीरका खयाल किये बगैर प्रदर्शित करना चाहिए। जिन माता-पिताके हृदयोमे-से प्रेमकी दैवी विभूति नष्ट नही हो गई है अथवा जिन्होने फिर उसे जाग्रत कर लिया है उन्हे अपने वच्चोमे प्यार पैदा करनेकी रीति स्वय ज्ञात हो जायगी। केवल इसी विधिसे मुक्ति एवं शातिप्रदायिनी शिक्षा एव सद्‌गुणोकी प्राप्ति हो सकती है। केवल प्राकृतिक जीवन और अपने साथियोके प्रति सच्चा प्यार ही मनुष्यको इस ससारमे आनद—प्रसन्नता प्रदान कर सकते है और इस प्रकार प्राप्त आनद और प्रसन्नता किसी अवस्थामें भी मनुष्योका साथ नही छोडते।

ऐसे वच्चेके जीवनमे दुख और अभावका कभी प्रवेश नही होता।

कितने ही अभिभावकोका खयाल है कि कालेजकी शिक्षा प्राप्त कर लेनेपर ही उनके बच्चेका जीवन सुखी हो सकेगा। यह शिक्षा दिलानेके लिए वे बहुत चितित रहते है और बिना बच्चेके स्वास्थ्यका खयाल किए उसे कालेजमें भेजते है और इस प्रकार वे उसे घोर विपत्तिमे फँसा देते है। वे यह भी चाहते है कि लडका पढ-लिखकर ऊचा ओहदा पाए, लंबी

तनख्वाह मिले और लोग उसका खूब आदर और सम्मान करे।

वाहरी सम्मानकी चकाचौधमे मत आइए। अक्सर लोग इसके अदर-ही-अदर पीडाओसे भरा भारमय जीवन व्यतीत करते है। सुखी वही है जो पूर्णतया स्वस्थ है, जिसकी आवश्यकताए कम है—और जो सादगीसे और प्रकृतिके निकट रहता है, ऐसा आदमी स्वतत्र है। उसके हृदयमे मनुष्यके प्रति प्यार होता है, और ईश्वरकी सहायताके प्रति विश्वास।

जिस लडकेपर हमेशा मानसिक कार्य और चिताका बोझ पडा रहता है उसके स्नायु दुर्बल हो जाते है, फलतः उसकी सारी मेहनतोके वावजूद रोग और कष्ट ही उसके पल्ले पडते है। कोशिश करके भी निराशा ही उसके हाथ आती है। ओहदा, सम्मान, नाम, धन, उसे नजदीक आए दिखाई देते है पर वे उसकी पकडमे नही आते। लड़कियोपर मानसिक कार्य लादना तो और भी समझमे नही आता। उनके लिए तो वह लड़कोसे भी अधिक हानिकारक है। स्त्रिया और लडकियां मानसिक कार्यकी कठिनाई सहनेके लिए बनी ही नही है। जिन माता-पिताओको इसकी अनुभूति हो गई है कि सुख वडे कहलानेवाले समाजमे सीमित न होकर वह व्यक्ति-के हृदयमे है और फिर निर्धन सतोपी लोगोमे ही परिव्याप्त है, वहुत सोच-समझकर ही अपने वच्चोके लिए धंधा चुनेगे।

सभ्यता, विज्ञान और धनके छलभरे सुख और आनंदके वदले प्रकृतिके साहचर्यमे प्राप्त सच्ची प्रसन्नताको पसद कर सकना आज अनेकोके लिए कठिन है। जिन माता-पिताओने

विचारपूर्वक अपना दृष्टिकोण बदल लिया है, जो अभिमानवश कोई कार्य नही करते, न अपनेपर आम विचारोका असर ही पड़ने देते हैं और जो अपने हिताहितको पूरी तरह समझ सकते है वे अपने बच्चोको स्कूलकी उतनी ही शिक्षा दिलवाएगे जितनी कि आजके जमानेमे नितात आवश्यक है। स्कूलोकी अंदरूनी हालतपर जरा गौर कीजिए, तब आप स्वयं कहेगे कि लड़केकी स्कूली पढाई जितनी कम हो उतना ही अच्छा है। स्कूल कम जानेके कारण लड़केको अच्छा धंधा मिलनेमे कोई कठिनाई नही होगी।

भविष्यमे तो फलोकी बागवानी आदि अनेक छोटे-छोटे व्यापारोके चल निकलनेकी आशा है जिनका करनेवाला स्वतंत्र, सुंदर एव स्वस्थ जीवन व्यतीत कर सकेगा। तब विज्ञान पढानेवाले स्कूलमें मुक्ति खोजनेकी आवश्यकता नही है, यह मुक्ति तो प्राकृतिक जीवनके स्वाभाविक परिणाम, अखंड शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य और ईश्वर तथा उसके बदोको प्यार करनेसे मिलेगी।

वही जीवनका सच्चा दर्शन है। अपने तथा अपने बच्चोपर इसका उपयोग करनेसे ही इस सदीका हमारा प्रचलित रोग स्नायुदौर्बल्य शीघ्रतासे जायगा और मनुष्य-जातिपर नूतन आनंदकी वर्षा होगी।

अनेक पैतृक दुर्बलताओके कारण जन्मसे बच्चोका शरीर, मन तथा आत्मा स्वाभाविकसे कुछ भिन्न होती है। यदि ऐसे बच्चोको माता-पिता अपने इच्छित आदर्शकी ओर जबरदस्ती

ले जानेकी कोशिश करेंगे तो फल अप्रीतिकर एवं घातक होगा।

जैसा बच्चा ईश्वर हमें दे उसके लिए हमे उसका कृतज्ञ होना चाहिए और उसका पालन एवं शिक्षण प्राकृतिक ढंगसे, जिसका कि मैंने यहां बयान किया है, करना चाहिए।

इसलिए शिक्षणमे भी हमे प्रकृतिसे ही पथ-प्रदर्शन प्राप्त करना चाहिए। यह शिक्षणका सबसे आवश्यक सिद्धांत है।

रोगियोंका उपचार

आरोग्यलाभसंबंधी विवरणों, धन्यवादके पत्रों आदिका वस्तुतः कोई महत्त्व नही है। अप्राकृतिक साधनोंसे दिखावटी लाभ आसानीसे प्राप्त किया जा सकता है। प्रत्यक्ष रूपमे तो रोग अच्छा हो जाता है, पर बादमें उससे भी खराब दूसरा रोग पैदा हो जाता है। यह कोई जरूरी नही है कि यह दूसरा रोग तत्काल प्रकट हो जाय; संभव है, यह पहले-जैसा बुरा भी न जान पड़े, पर दरअसल यह ज्यादा खतरनाक होता है। बहुतसे नि.शक्त लोगों, विशेपकर नाड़ीदौर्बल्यवालोको सुधार जान पड़ने लगता है और वे अपनेको नीरोग समझकर आरोग्य-लाभका विवरण भी लिखकर भेजते हैं, पर पीछे भ्रम दूर हो जानेपर उन्हें घोर नैराश्य होता है।

इसके अलावा प्रशंसात्मक पत्र प्राप्त करनेके लिए चाल-बाजियां भी खूब की जाती है। अगर उनपर विचार करें तो

हम आसानीसे समझ जायेंगे कि गुप्त और पेटेंट दवाएं बेचनेवाले धूर्त लोग किस तरह आरोग्यलाभकी बहुत-सी रिपोर्टें पेश करते है। इसलिए विचार करनेका विषय यह है कि कौन-सी पद्धति कहातक प्राकृतिक नियमोके अनुकूल है। जो पद्धति प्राकृतिक नियमोका अनुसरण करनेवाली होगी वही स्वास्थ्यकी दिशामे अग्रसर कर सकेगी।

मुझे आशा है कि मेरी पद्धति लोगोका विश्वास प्राप्त कर सकेगी, क्योकि यह हर पहलूसे प्रकृतिके अनुकूल पडती है। इसी विचारसे मै यहा पत्रोका उद्धरण और उपचारोंका अधिक विवरण न देकर स्पष्टीकरणके लिए सिर्फ थोड़ेसे उदाहरण दे रहा हू।

शोथयुक्त आमवात

श्री · ग्रथिशोथसे पीड़ित थे। ६ महीने पहले भी यह रोग उन्हे हुआ था और (उस समय) निकोटिन विष बुरी तरह इस्तेमाल किया गया था। उन्हे भयकर दर्द होता था और अंग, विशेषकर हाथ ऐंठकर टेढ़े हो गये थे। उनके चिकित्सकने तो हवासे बचनेके लिए कहा था, पर मैंने उन्हें एक झंझरीदार झोंपड़ीमे रखा। वे निर्वस्त्रकर जमीनपर लिटा दिये जाते थे और वायु-प्रकाशका स्नान भी कई बार कराया जाता था। इस उपचारके बाद उन्हे गरम बिस्तरेपर लिटाकर पसीना लानेके लिए कंबल ओढ़ा दिया जाता था। खानेको गिरी, बादाम, फल, कच्चा दूध, मक्खन और थोड़ी-सी रोटी दी जाती थी।

पहले ही दिन उनका दर्द कम पड़ गया। दूसरे दिन अंग सीधे हो गये, पांचवें दिन टहलने लगे और नवें दिन तो अपना काम शुरू कर दिया।

कठिन नाड़ी-रोग

श्री····नौ वर्षोंसे नाड़ी-रोगसे परेशान थे। अंतमें वे धनुष्टंकारके भी शिकार हो गये। रोगने उन्हें जीवनसे निराश कर दिया था, पर एक ही सप्ताहके उपचारसे सुधारके लक्षण देख पड़ने लगे। उपचारमें वायु-प्रकाश-स्नान, पृथ्वीसे शक्ति-ग्रहण और प्राकृतिक स्नानका क्रम चलाया जा रहा था और खानेको गिरी, फल, दूध, मक्खन और थोड़ी-सी रोटी दी जाती थी। दोपहरतक कुछ नहीं खाते थे और बिना बिस्तरके ही जमीनपर सोया करते थे। १० सप्ताहमें वे पूर्णत. स्वस्थ हो गये। उनका खयाल था कि शयनकालमें धरतीसे प्राप्त होनेवाली शक्ति बहुत लाभदायक सिद्ध हुई।

सिरका विकार और बहरापन

श्री··· का सिर एक मंचसे गिरनेके कारण जख्मी हो गया। उनके शरीरमें एकत्र विजातीय द्रव्यको इस क्षत-स्थानसे निकलनेका मार्ग मिल गया और वहां कठिन रुग्णावस्था प्रस्तुत हो गई। वे बचपनसे ही एक कानके बहरे थे। उसमें नश्तर लगा था और उनके मनमें यह धारणा बैठ गई थी कि कर्णपटल काटकर निकाल दिया गया है। इसके अलावा उनकी एक आंख भी खराब थी—हर एक चीज धुंधली-सी

दिखाई देती थी। औषधोपचारकोने जवाव दे दिया था। मेर उपचारसे एक ही पक्षमे सुधार देख पड़ने लगा। उन्हें केवल सिरके रोगसे छुटकारेकी आशा थी, पर दूसरे सप्ताहमे उन्हें खराब कानसे भी कुछ-कुछ सुनाई देने लगा। जिसका उन्होने स्वप्नमे भी खयाल नही किया था। घर जाकर उन्होंने उपचार जारी रखा और कुछ दिनोमे उनकी आंखकी खराबी भी बहुत कुछ दूर हो गई।

उपचारमे प्राकृतिक स्नान, वायु और प्रकाशका प्रायः सारे दिन स्नान, नंगे पांव चलना आदि रखे गये थे। उन्हें खुली झोपड़ीमे सोनेमे बडा आनद मिलता था। खानेको गिरी, गरम मुल्कके फल, दूध, थोड़ी रोटी और मक्खन दिये जाते थे।

उदरविकार और सुषुम्नाका क्षय

एक ४२ वर्षके सज्जन उदरविकार और सुषुम्नाके क्षयसे वर्षोंसे पीड़ित थे। औषधोपचारकोके कथनानुसार उनके उदरमे घातक अर्बुद था। सुषुम्नाका क्षय उनके चलते समय पैरोके झटकेसे स्पष्ट हो जाता था। मेरे यहा आनेके समय वे कोई चीज खानेमे असमर्थ थे और रातमे उन्हे लगभग चालीस बार कै हुआ करती थी।

वे झंझरीदार झोपडीमे रखे गये और पेड़ूपर गीली मिट्टी-की पट्टी लगाई गई। पट्टी रहते समय तो कै बद रहती, पर हटा लेनेपर फिर शुरू हो जाती। इससे रोगमें मिट्टीकी प्रभावकारिता स्पष्ट हो गई। कभी-कभी साधारण स्नान

कर लेते थे, कुछ समर्थ हो जानेपर वायु-प्रकाश-स्नान भी चलाने लगे ।

दस दिनोंके बाद मिट्टीकी पट्टी बंद कर देनेपर भी उन्हें कै नही आई । उस समयसे उनकी हालतमें सुधार होने लगा । भूख भी अच्छी मालूम होने लगी और बिना किसी हिचकके भरपेट फल खाने लगे । उदरविकार दूर होनेपर सुषुम्नाका क्षय भी अच्छा होने लगा ।

मूत्रावरोध—जलोदरका पूर्वरूप

श्री· · ·दो सालसे सख्त बीमार थे और इसके कारण उन्हे अपना काम छोड़ देना पड़ा था । कृत्रिम सहायता लिये बिना कभी पेशाब नहीं उतरता था और पैरका शोथ भी शुरू हो गया था । इस समयतक वे कम-से-कम ७० चिकित्सकोंको अपना रोग दिखला चुके थे जिनमेसे लगभग २० तो प्रसिद्ध प्राध्यापक थे । उन्होंने कई पेटेंट दवाओंका भी इस्तेमाल किया था और कुछ हदतक भ्रममे डालनेवाले आरोग्यलाभका अनुभव भी किया था, पर इन अप्राकृतिक उपचारोंसे रोग घटनेके बजाय बढ़ता ही गया । मेरे यहां आनेके समय उनकी बीमारी भयंकर रूप धारण कर चुकी थी और वे मौतके डरसे जड़-से हो गये थे । मूत्र अन्य मार्गोंसे निकलनेका प्रयत्न कर रहा था, यह ऊपरसे ही देखनेसे स्पष्ट हो जाता था । घुटनेके नीचे कई जगह खुले फोड़े हो गये थे जिनसे बदबूदार पंछा निकल रहा

था। हालत कैसी खतरनाक थी यह समझनेमे देर न लगी। वे झझरीदार झोपड़ीमे पहुचा दिये गये जिसमे उन्हे शुद्ध हवा मिल सके। पेड़ूपर और वृक्कवाले भागपर मिट्टीकी पट्टी लगाई गई जो थोडी देरके बाद वदल दी जाती थी। वायु-प्रकाश-स्नानके लिए उन्हे कभी-कभी झोपडीसे बाहर भी आना पडता था। धरतीसे शक्ति प्राप्त करनेके अवसरोका भी उन्होने लाभ उठाया। पहले केवल फल खानेको दिये जाते थे, पीछे दूध, मक्खन और रोटी भी दी जाने लगी। इस उपचारसे उन्हे दूसरे ही दिन काफी पेशाब उतरा और साथ ही मामूली पाखाना भी हुआ। तीसरे दिन चलने लगे और चौथे दिन तो उनमे दौड़नेकी शक्ति आ गई। दूसरे सप्ताहमे पैरके जख्म सूख गये और वे पहाडपर तीन-तीन, चार-चार घटे चक्कर लगाने लगे।

नाड़ी-क्षोभ

श्री · के नाड़ीसस्थानमे इतना क्षोभ था कि वे ६ माससे काम छोड़कर घर बैठे हुए थे। रातको उन्हे जरा भी नीद नही आती थी और बेचैनीके मारे बड़बड़ाते रहते थे। वायु-प्रकाश-स्नान विशेष रूपसे कराया गया। पांचवें दिन वर्षाके कारण ठढ अधिक थी। इससे उन्हें बड़ा लाभ हुआ। वे बहुत जल्द नीरोग होकर अपना काम करने लग गये। नाड़ी-रोगोमें ठंढी हवा और प्रकाशका स्नान बहुत प्रभावकारी होता है।

श्वसनक सन्निपात (न्यूमोनिया)

श्री····६ सप्ताहसे न्यूमोनियासे पीडित थे। उन्हे बड़ी परेशानी थी। औषधोपचार चल रहा था और मेरे यहां आनेके पहलेतक वे एक कमरेमे कैदीकी-सी हालतमें रखे गये थे। घातक ठंड लगनेका भय उनके दिमागसे निकाल देनेपर वे घंटों नंगे बाहर घूमने लगे। पहले ही दिन शामको उनकी तबीयत हलकी जान पड़ने लगी। उनके मतसे ६ सप्ताहके औषधोपचारसे जितना लाभ हुआ था उससे अधिक सिर्फ एक दिनमें सादे तरीकोंसे हुआ। कुछ ही दिनोंके उपचारसे वे बिलकुल नीरोग हो गये।

शोथ—जलोदर

श्री····शोथरोगसे ग्रस्त थे। उनके चिकित्सकोंके मतसे रोग असाध्य था। मेरे यहां वे बड़ी मुस्तैदीसे वायु-प्रकाश-स्नान चलाने लगे। शोथके स्थानों, विशेषकर उदर और पैरपर मिट्टीकी पट्टीका प्रयोग किया गया। झोपड़ीके परदे रातको यथासंभव खुले रखे जाते थे। आहार भी प्राकृतिक रखा गया। पहले ही सप्ताहमे अच्छा फल दिखने लगा और वे शीघ्र ही नीरोग हो गये।

श्री····का जलोदर सिर्फ बारह दिन उपचार करनेपर चला गया। इतनी शीघ्रतासे नीरोग हुआ देख उनका औषधोपचारक अवाक् रह गया।

गलेका रोग

श्री····गलेके रोगसे वर्षोंसे पीड़ित थे। औषधोपचारसे

उन्हे अबतक कोई लाभ नही हुआ था। उपचारके और साधनोके साथ गलेपर गीली मिट्टीका प्रयोग करनेपर उन्हे जल्द ही आरोग्यलाभ हो गया।

सिरकी रूसी

'कुमारी····के सिरमे रूसी पैदा हो गई थी। फलाहार, वायु-प्रकाश-स्नान आदिके द्वारा शरीरको विजातीय द्रव्यसे मुक्त करनेका प्रयत्न किया गया। सिरपर गीली मिट्टीकी पट्टी भी लगाई जाती रही जो उसे बहुत अनुकूल जान पड़ी। चार ही सप्ताहमे वह बिलकुल अच्छी हो गई।

सुषुम्नाका क्षय

श्री··· सुषुम्नाके क्षयसे ग्रस्त थे। एक प्रसिद्ध चिकित्सा-लयमे चौदह सप्ताह रहे, पर कोई लाभ नही हुआ। वायु-प्रकाश-स्नानसे उनकी शक्ति बहुत बढ़ गई। पैरोपर गीली मिट्टीका प्रयोग किया गया। शीघ्र ही सुधार देख पड़ने लगा। दो सप्ताह बाद वे लगातार घटो टहलने लगे। चलते समय पैरोका झटका कम पड़ता जाकर बिलकुल दूर हो गया।

दंतपीड़ा

श्री····भयकर दतपीड़ासे हफ्तोसे बेचैन थे। दंतोपचा-रकोने दातोके गड्ढोको भरकर पीड़ा-नाशक दवाओंका भी इस्तेमाल किया, पर किसीस कोई लाभ नही हुआ। दर्दवाले

दांतके सामने गालपर मिट्टीकी पट्टी देनेपर कुछ दिनोंमें दर्द बिलकुल दूर हो गया। मिट्टी कभी धोखा नही देती, दर्दके कारणको ही दूर कर देती है।

अस्थिक्षय

श्री···के पैरकी अस्थि क्षयग्रस्त थी। वे ६ महीने अस्पतालमे रहे, दो बार नश्तर लगा और नीचेकी एक हड्डी भी निकाल दी गई, फिर भी पैर अच्छा नही हुआ। अगर उन्होने मेरे उपचारका सहारा न लिया होता तो शायद पैर काटकर अलग भी कर दिया गया होता। वायु-प्रकाशस्नान, फलाहार आदिके साथ गीली मिट्टीके प्रयोगसे बिलकुल नीरोग हो गये। निकाली हुई हड्डीकी जगह नई हड्डी तो नही बैठाई जा सकती थी पर पैर बिलकुल नीरोग हो गया और वे लंगड़ाते हुए उसका उपयोग भी करने लगे।

आंत्रिक सन्निपातज्वर

एक दस बरसका बच्चा आत्रिक सन्निपातज्वरसे ग्रस्त हुआ। उसकी माताने पत्रद्वारा मेरी राय पूछी। मैंने खिड़किया खुली रखकर नग्न सुलाने, भोजन बंद कर देने या नाममात्रका देने और रोज मामूली स्नान करानेको कहा। इस उपचारसे बच्चा दो-तीन दिनोंमें ही अच्छा हो गया। माताने औषधोपचारकसे कहे बिना चुपके-चुपके यह उपचार किया। खतरनाक बुखारसे अत्यल्प समयमे ही बच्चेको मुक्त देखकर चिकित्सकको बड़ा अचभा हुआ। उसने अपने आश्चर्यपर

यह कहकर परदा डालनेकी कोशिश की कि निदानमे गलती हुई होगी, यह आंत्रिक सन्निपातज्वर नही था, हालां कि वह पहले कह चुका था कि वदनपर नजर आनेवाले दाग आत्रिक सन्निपातज्वरके ही सूचक है। अगर रोगका चिन्ह प्रकट होनेके साथ ही ठीक उपचार हुआ होता तो कुछ ही घंटोमें वह अच्छा हो गया होता।

साधारण निर्बलता

कुमारी ·· नाडी-सस्थानकी अस्तव्यस्तताके कारण वहुत कमजोर हो गई थी और उसका सिर बरावर भारी रहा करता था, वह बहुत कम चल पाती थी। जगवार्नमे उपचार करानेपर दो ही सप्ताहमे वह विना थकावट महसूस किये ११ घटे रोज चलने लगी। इससे यह सिद्ध हो गया कि फलाहार, वायु-प्रकाश-स्नान आदिस शक्ति प्राप्त होती है। साधारणतः यही विश्वास किया जाता ह कि मासाहारसे ताकत वढती है, पर तथाकथित शक्तिवर्द्धक मांसाहार ही उक्त कुमारीकी निर्बलता और अस्वस्थताका कारण हुआ। फलाहारके सहारे वह जल्द ही स्वस्थ और सशक्त हो गई।

मूर्च्छा

श्रीमती · · को मूर्च्छा हो गई थी। गर्दनपर गीली मिट्टी-की पट्टी रखनेपर उन्हे फौरन होश हो गया। इससे स्पष्ट है कि मिट्टीकी पट्टी रोजमर्राके जीवनमे भी लाभदायक होती है।

भगंदर

श्री····को भगंदर हो गया था और मेरे यहां आनेके पहले नश्तर भी लगाया जा चुका था। मुझे उनकी अवस्था चिंताजनक जान पड़ी। वे बैठनेके लिए हमेशा अपने साथ रबरका तकिया लिए चलते थे। मुझे भी उनके नीरोग होनेकी आशा नहीं थी; क्योंकि मिट्टीकी पट्टी रुग्णभागतक नहीं पहुंच सकती थी और बाहरसे भी उसपर कोई प्रभाव नही डाला जा सकता था। फिर भी मिट्टीकी पट्टीका ही प्रयोग किया गया और इसीसे वे अच्छे भी हो गये।

अंधता

श्री····की एक आंख कुछ दिनोंसे बिलकुल अंधी हो गई थी। औषधोपचारकोंकी सारी कोशिश बेकार साबित हुई। मेरा उपचार चलानेपर कुछ ही दिन बाद उन्हें कुछ-कुछ दिखाई देने लगा। कुछ हफ्ते बाद आंख बिलकुल अच्छी हो गई। मिट्टीकी पट्टीने इसमे भी आश्चर्यजनक कार्य कर दिखलाया। उनके घर पहुचनेपर उनका चिकित्सक मेरे उपचारकी यह सफलता देखकर अवाक् रह गया।

बालविसूचिका

एक ढाई सालके बच्चेको (बाल) विसूचिका हुई। उसको ज्वर हो आया। माता प्राकृतिक उपचारकी पुरानी पद्धतिसे परिचित थी। उसने दो बार शीतल स्नान कराया जिससे बुखार कम हो गया, पर फिर बढ़ गया। दूसरे दिन उसका

पिता, जो मेरे सरल ढंगसे परिचित था, घर आया और बच्चे-को खुली खिड़कीके सामने डेढ घटे नग्न अवस्थामें अपनी गोदमें रखा जिससे बुखार बहुत कम हो गया। दूसरे दिन ज्वर फिर कुछ बढा, पर वायु-प्रकाश-स्नान करानेपर रोग पूर्ण रूपसे चला गया।

बालविसूचिका होनेपर माताए बहुत घबड़ा जाती है और औषधोपचारद्वारा नन्हे-से शरीरको हानि पहुचाई जाती है। मेरी पद्धतिमे शत्रुका धीरतापूर्वक सामना किया जाता है और भयका नाम भी नही रहता; क्योकि स्वयं प्रकृति हमारा मार्ग-प्रदर्शन करती है जो हमारा साथ कभी नही छोड़ती। चद दफा हवा और प्रकाशका स्नान, जिसके लिए किसी यन्त्र, कवल आदिकी कोई जरूरत नही होती और कुछ खर्च भी नही पडता, बच्चेको बिलकुल नीरोग कर देता है और बच्चा जोशमे भरकर उछल-कूद मचाने लगता है।

जननेंद्रियके रोग

श्री····को वर्षोसे नाड़ी-दौर्बल्य था। सिर बराबर भारी रहा करता था जिससे वे काम करनेमे असमर्थ हो गये थे और जीवनसे ऊबकर आत्महत्याकी ही बात सोचा करते थे। औषधोपचारकोके निदान परस्परविरोधी थे और सबने रोगका दूसरा-ही-दूसरा कारण बतलाया। मेरा उपचार आरभ करनेपर शीघ्र ही परिवर्तन देख पडा। एक पक्षके बाद सूजाक उभर आया। उन्होने बतलाया कि कुछ वर्ष पहले एक लड़कीसे संबंध होनेपर यह रोग हुआ था

और एक लेपका प्रयोग किया गया था। मेरे उपचारसे सूजाक जल्द ही अच्छा हो गया और उसके साथ ही नाड़ीदौर्बल्य भी जाता रहा। शक्ति प्राप्त हो जानेपर फिर जीवनमें दिलचस्पी पैदा हो गई।

यौन-अनैतिकता मनुष्यको सबसे अधिक हानि पहुंचाती है। यह भ्रष्टाचार आज बहुतसे रोगोंका कारण हो रहा है। यौनरोग जननेंद्रियोंमे ही उत्पन्न होते है और उनका पहला रूप सूजाक है। यह एक प्रकारसे तीव्र यौनरोग कहा जा सकता है। मूत्रनलिकामे प्रतिश्याय हो जाता है और मवादके रूपमें उससे विष निकलने लगता है।

जीवन संयत न रहनेपर सूजाकसे छुटकारा नही मिलता, और औषधोपचारसे तो विष शरीरमे स्थायी रूपसे अड्डा जमा लेता है। इससे अंधता, क्षय, घातक अर्बुद आदि भयंकर रोग हो जाते है इसलिए मनुष्यको इस प्रकारके दुष्कर्मसे बचनेका प्रयत्न करना चाहिए और यदि भूलसे रोग हो ही जाय तो आरंभ होनेके साथ ही सही प्राकृतिक उपचार कराना चाहिए।

उपदंश और तज्जन्य व्रण सूजाकसे भी खतरनाक होते है। इनकी पहचान जननेंद्रियपर हुए फोड़ेसे हो सकती है। अगर इनपर जल्द ध्यान न दिया जाय तो शरीरमे विष तेजीसे बढने लगता है और विभिन्न रूपोमे प्रकट होता है। सारे शरीरमें, यहांतक कि मुंहके अंदर भी फोड़े हो जाते है जिससे मनुष्यको समाजका त्याग कर देना पड़ता है। यह विष अपस्मार,

उन्माद, सौषुम्निक क्षय आदि रोगोके रूपमे भी प्रकट हो सकता है।

ये सब बुराइया विशेषकर पारेके प्रयोगसे ही उत्पन्न होती हैं। यह शरीरके विषको निकाल बाहर करनेमे तो असमर्थ बना ही देता है, ऊपरसे और भयंकर विषके रूपमें शरीरमें पहुंच जाता है। इसके उपचारमे पारेका प्रयोग प्रकृतिके नियमोके विरुद्ध और मानवताके प्रति भयकर अपराध है।

उपदश भी प्राकृतिक उपचारसे अच्छा हो जाता है। रोग हालका होगा तो जल्द ही अच्छा हो जायगा, पुराना हो तो धैर्य और अध्यवसाय आवश्यक होगा।

मधुमेह

यह रोग भी बहुत भयंकर होता है। औषध-विज्ञान इसमे खास तौरसे मांसाहारकी राय देता है, पर इस तरीकेसे मधुमेह कभी अच्छा होते नही देखा गया। और रोगोकी तरह यह भी अप्राकृतिक जीवनका ही परिणाम होता है। मांसाहार-संबंधी उक्त गलत धारणाके कारण रोगियोको फलाहारपर लाना कठिन होता है। इस धारणाका शीघ्र अंतकर लोगोंको यह हृदयंगम कर लेना चाहिए कि रोगोमें कोई अतर नही होता और सबका उपचार प्रकृतिके नुस्खेके मुताबिक होना चाहिए। जब मनुष्यको उपचारके सही तरीकेका पता चल जायगा तो मधुमेहसे डरनेका कोई कारण नही रहेगा।

फोड़े

श्री....को दो सालसे सारे शरीरमें फोड़े हो गये थे।

अवतक वे पेटेंट लेपोंका प्रयोगकर उनसे पिड छुड़ा रहे थे। पिड क्या छुड़ा रहे थे एलोपैथिक लेपोके सहारे विकृत द्रव्यको बाहर न निकालकर शरीरमे लौटाते जा रहे थे। इस अप्राकृतिक उपचारका परिणाम यह हुआ कि उनका बायां पैर इतना सूज गया कि वे चलने-फिरनेसे लाचार हो गये। जावके ऊपरी हिस्सेपर विजातीय द्रव्यका इतना अधिक असर हुआ था कि वह बिलकुल काला पड़ गया था। स्थिति चिंताजनक थी। वहुतसे औषधोपचारकोने तो पैर कटवा देना ही अच्छा समझा होता। विश्व-व्यापक उपचार गीली मिट्टीकी पट्टीने इसपर भी अपना कर्तव्य पूरे तौरसे निभाया। जाघके ऊपरी हिस्से--सूजनवाली जगह--पर पट्टी लगानेपर चौथे दिन सारा विजातीय द्रव्य एकत्र हो गया और वहासे मवाद तथा दूषित रक्त निकलने लगा। वहा एक छेद हो गया और उसी राहसे विजातीय द्रव्य रोज सतहपर आने लगा। लगातार पट्टी लगाते रहनेपर कुछ दिनोमे जख्म भर गया। पट्टीके साथ-साथ शुद्ध हवा, धूप, वर्षा, फलाहार आदिने भी विजातीय द्रव्य बाहर निकालनेमे मदद की। मवाद निकलते समय रोगीका पेशाब भी रक्त-जैसा होता था जिससे यह स्पष्ट था कि उस मार्गसे भी विकार निकल रहा है।

मेरी पद्धतिसे उपचार करनेपर आरंभमें प्राय. फोड़े निकल आते है। कारण विलकुल साफ है और यह शुभ लक्षण भी है; क्योकि यह इस वातका सूचक है कि मेरे उपचारसे मल निकालनेवाले अंगोको उत्तेजन मिला है। जबतक यह चलता रहे

तबतक फोड़ेके संबंधमें कुछ न किया जाय, प्रकृतिको स्वयं अपनी फिक्र करनेके लिए छोड़ दिया जाय। अगर दर्द बढ़ जाय तो गीली मिट्टीकी पट्टीसे काम किया जा सकता है। फोड़ोंका उपचार सिर्फ गीली मिट्टीसे होना चाहिए, उन्हें चीरने या खोलनेकी जरूरत नहीं है। पकनेपर वे स्वयं फूट जायंगे और तब उन्हें बहानेमें यह मिट्टी और मदद करेगी।

फोड़ा निकलना शरीरके लिए बहुत लाभदायक है। इसमें कभी-कभी ज्वर भी हो जाता है जो इस बातका प्रमाण है कि शरीर स्वास्थ्य-लाभकी क्रियामें संलग्न है।

मैंने प्रायः देखा है कि लोग गरम पट्टी या गरम पुलटिस छोड़नेके लिए जल्द राजी नहीं होते। यह प्रकृतिविरुद्ध है; क्योंकि गरम सेकसे फोड़ा प्रायः समयके पहले ही पक जाता है। अप्राकृतिक उपचारसे शरीरको कुछ-न-कुछ हानि होती ही है। गीली मिट्टीकी पट्टीसे ही शरीरको आराम मिलता है और घाव जल्द भर जाता है। अगर पतले सूती कपड़ेपर गीली मिट्टी फैला दी जाय तो वह पलस्तरकी तरह चिपक जायगी, ऊपरसे बांधनेकी जरूरत नहीं रहेगी।

शिरःशूल

श्री····वर्षोंसे शिरःशूलसे परेशान थे। रातको गरदनपर गीली मिट्टीकी पट्टी लगानेसे इस दीर्घकालीन शिरःशूलसे उन्हें हमेशाके लिए छुटकारा मिल गया।

दद्रु आदि चर्मरोग

श्री····वर्षोंसे क्षयकारक चर्मरोगसे पीड़ित थे। सारे

उपचार निरर्थक सिद्ध हो चुके थे। गीली मिट्टीकी पट्टीने उन्हें रोगसे पूर्णतः मुक्त कर दिया।

सर्पदंश

हालमें ही एक ग्राममें एक लड़कीको घास छीलते समय एक बहुत विषैले सांपने डंस लिया। पैर सूजने लगा और उसे बहुत पीड़ा होने लगी। नगर ले जाते समयतक हाथ भी सूज गया और वह बेहोश हो गई। चिकित्सकोंके जवाब दे देनेपर उसका पिता मुरदेकी-सी हालतमें उसे वापस लाया। उसने कभी दंतकथाके रूपमें सुना था कि सदियों पहले सर्पदंशसे इसी अवस्थामें पहुंचा हुआ एक आदमी जमीनमें गाड़नेसे अच्छा हो गया था। उसने भी यही करनेकी ठानी और बागमें गड्ढा खोदकर लड़कीको गलेतक नग्न गाड़ दिया। अधिकारियोंने लड़कीको निकलवानेकी कोशिश की, पर गांववालोंने पिताका पक्ष लिया और सामूहिक रूपसे अधिकारियोंका विरोध करने लगे। बलवा होनेकी संभावना देखकर अधिकारी चुप हो गये। चौबीस घंटेके बाद निकालनेपर लड़की बिलकुल अच्छी पाई गई।

इस घटनासे यह स्पष्ट है कि अंतिम अवस्था प्रस्तुत हो जानेपर भी मिट्टी विषसे मुक्त कर देती है। अगर मिट्टीका प्रयोग तत्काल किया जाय और एक-एक घंटेपर पट्टी बदली जाती रहे तो सर्पके विषका सारा असर जाता रहेगा।

पागल कुत्तेके काटनेपर भी सर्पदंशकी ही तरह गीली

मिट्टीकी पट्टी फौरन लगाई जानी चाहिए। प्रोफेसर पास्टरकी युक्ति अविश्वसनीय और अनिश्चित है, पर प्रकृतिकी युक्ति कभी व्यर्थ नही जाती। अगर पास्टरके तरीकेसे कुत्तेसे प्राप्त उन्मादसे पिड छूट भी जाय तो उससे मनुष्यका स्वास्थ्य इतना खराब हो जाता है कि वह कुत्तेके उन्मादसे भी भयंकर रोगका शिकार हो जाता है।

इन बातोसे स्पष्ट है कि मिट्टी कैसी प्रभावकारी वस्तु है। वस्तुत' यह बिना मूल्यकी या सस्ती होते हुए भी अनमोल और सर्वसुलभ उपचारका साधन है।

सुषुम्नाका रोग और मोटापा

श्री····की नाड़ियां रुग्ण हो गई थी और सुषुम्ना तो बिलकुल निष्क्रिय हो गई थी। उनका वजन २१५ पौड था। मेरे यहा आनेके समय उनके बचनेकी कोई आशा नही थी, पर चार ही सप्ताहमे वे नीरोग होकर चले गए और अपना कारबार भी शुरू कर दिया। यहा उनका वजन ५५ पौड घट गया। वे प्राय: कमरतक और कभी-कभी सीनेतक जमीनमे गाड़ दिए जाते थे। यह उपचार बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ। और सब उपचार भी यथाविधि चलाए जाते रहे।

शोथयुक्त जीर्ण आमवात

श्री····जीर्ण शोथयुक्त आमवातसे वर्षो से ग्रस्त थे जिससे उनके अंग गतिहीन हो गये थे। प्राकृतिक उपचारकी

पुरानी पद्धतिसे भी उन्हे कोई लाभ नही हुआ और हालत दिनोदिन खराव ही होती गई। उनका एक पैर काटा जाने-वाला था ही कि सयोगसे मेरी पुस्तक उनके हाथ पड़ गई। स्नान, फलाहार, वायु-प्रकाश-स्नान आदिसे उनको इतने कम समयमे आरोग्यलाभ हुआ कि उनके मित्र देखकर चकित रह गये। पैरकी तो रक्षा हो ही गई।

गठिया, कंप, कटिशूल तथा इस श्रेणीके अन्य रोग रक्तके दूषित होनेपर ही होते है। प्राकृतिक चिकित्साके सही तरीकेसे ये वहुत जल्द अच्छे हो जाते है।

कुत्तेके काटनेका घाव

श्री····को एक वड़े कुत्तेने काटा था जिससे दो घाव हो गये थे। एक घाव तो इतना वड़ा था कि देखनेवालेको यह विश्वास ही नही होता था कि वह कुत्तेका काटा हुआ है। वह लगभग पौने दो इंच वड़ा और पौन इंच गहरा था। कुत्तेने वहाका मास नोच लिया था।

कुत्तेका काटना घावसे ज्यादा खतरनाक होता है इस कारण उनके मित्र वहुत चिंतित थे। मैने घावको ठढे पानीसे खूव तरकर गीली मिट्टीकी पट्टी लगा दी और ऊपरसे गीले सूती कपड़ेसे उसे वांध दिया। पट्टी रोज सुवह वदल दी जाती थी। वे मेरे वताए हुए नियमोंके अनुसार प्राकृतिक ढंगसे रहते थे और वरावर चलते-फिरते, दौड़ते और पहाड़-पर भी चढ़ते रहे, पर कभी किसी तरहकी तकलीफ नहीं

हुई। छोटा घाव तो दूसरे ही दिन भर गया, बड़े घावके कारण भी उनको कोई कष्ट नही हुआ और न उसमे सूजन ही हुई। तीन सप्ताहमे बड़ा घाव भी भर गया। पट्टी खोलनेपर उसमेसे बदबूदार पंछा निकला करता था। मिट्टी घावके जरिए सारे शरीरके विकृत पदार्थको खीच लेती है, इसी कारण वह सर्पदंश आदिमे लाभदायक होती है। इस प्रकारके जख्मोमे तंबाकू, शराब आदि मादक वस्तुए बहुत हानिकारक होती है।

सारे मासाहारी जीव हिंस्र होते है, पर हिसाकी यह प्रवृत्ति क्षुधाकी तृप्तिके लिए ही जाग्रत् होती है। मासाहारी पुरुषोमे यह प्रवृत्ति बडे घृणित रूपमे व्यक्त होती है। मनुष्यके लिए मांसाहार प्राकृतिक नही है इसलिए इससे विचारो और भावनाओका विकृत होना स्वाभाविक ही है। इसके अलावा एक और राक्षस मद्यके रूपमे लोगोमे घुसा हुआ है जो वहकाकर सर्वनाश किया करता है। मनुष्य केवल आहारके लिए हत्या नही करता, वह अपने भाइयोपर भी हाथ साफ किया करता है।

मनुष्यकी हिंस्र प्रवृत्तिका नियमन करने और इसकी भयंकरता कम करनेके लिए ही युद्धकला विकसित की गई है। युद्धमे मनुष्यको अपनी रक्तपिपासा शान्त करनेका अवसर मिलता है। रक्तकी नदियां बह चलती है और विजयके हर्षनाद-मे मरते हुए लोगोके कराहनेकी आवाज और भग्न हृदय पुत्रो, पिताओं, माताओ और स्त्रियोंके आर्तनाद मिले रहते है।

अगर मनुष्यकी हिंस्रवृत्तिको खुलकर खेलनेका अवसर मिले, शातिप्रिय सरकारे उसे रोकनेमे समर्थ न हो सके तो उस हालतमें मै लोगोका ध्यान मिट्टीकी ओर आकृष्ट करूगा। घायल सैनिकके लिए मिट्टी सुलभ है। वह अपनी लारसे इसे भिगो सकता है। अगर गोली नही निकलती तो उसे पड़ी रहने दीजिए, उसे निकालनेके लिए चीर-फाड़ करना हानिकारक ही नही, खतरनाक भी होता है। जख्मपर गीली मिट्टीकी पट्टी लगा देनेपर तकलीफ दूर हो जायगी और वह अच्छा होने लगेगा। अगर गीली मिट्टीका प्रयोग किया जाने लगे तो युद्धक्षेत्रके अस्पतालमें अंग-भंग करनेकी उतनी जरूरत नहीं रहेगी और जख्मोके कारण होनेवाली मृत्युसख्या भी कम हो जायगी।

श्री ··भीषण नाड़ीविकारसे ग्रस्त थे। किसी उपचारसे कोई लाभ न होनेपर उन्होने तीन मास मेरा उपचार चलाया। वचपनमे उन्हे कोई वालरोग नही हुआ था और वादमें भी कोई तीव्र रोग या जुकाम नही हुआ था। उन्होंने इसे अच्छे स्वास्थ्यका लक्षण माना था, पर असल बात यह थी कि उनका शरीर तीव्र रोगो या जुकामके जरिए विजातीय द्रव्य वाहर निकालनेमे समर्थ नही था। नाड़ीरोगकी यही कारण था। अगर उन्होंने प्राकृतिक उपचारका सहारा न लिया होता तो किसी पागलखानेमें होते या कब्रमें। उपचार आरंभ होनेपर उन्हे वड़े-वड़े फोड़े निकलने लगे। इसके वाद छोटे-छोटे तीव्र रोग शुरू हुए और विसूचिकाके लक्षणोंसे

युक्त अतिसार भी हुआ। इन सबसे उनको कुछ आराम ही मलता गया। अतमे भयंकर इन्फ्लुएंजा प्रकट हुआ। चेहरा विवर्ण हो गया और कमजोरी भी बढ गई। वर्षा और अधिक ठंढ होनेपर भी वे खुली झोपडीमे रखे गये। कभी-कभी आधे घंटेतक वायु-प्रकाश-स्नान भी चलाते रहे। वे शायद ही कुछ खाते थे। साधारण स्नान भी चलता था। उस झोपडीमे कुछ ही घटोतक रहनेपर उन्हे बडा आराम मालूम हुआ। विजातीय द्रव्य ढीला पडकर मुह और नाकसे निकलने लगा और पसीना आना भी शुरू हो गया। इसके अनतर ज्वर उतर गया और उन्हे ऐसा जान पड़ा जैसे स्वास्थ्यकी दिशामे काफी आगे बढ गये हो।

क्या यह सीधा-सादा और सस्ता उपचार नही है? बहुतसे लोग इन्फ्लुएजाका अप्राकृतिक उपचार कराकर कालके शिकार हो जाते है और जो बच जाते है उनकी हालत मरे हुए लोगोंसे भी खराब होती है, क्योकि हलका तीव्र रोग जीर्ण रोगमे परिणत हो जाता है और वे जीवनमें तरह-तरहके कष्टो और रोगोके शिकार होते रहते है।

यह खयाल करना कि केवल सबल व्यक्ति खुली हवासे लाभ उठा सकता है, भ्रम है। हवा कभी किसीको किसी भी हालतमे नुकसान नही पहुचाती। कम तापमे वायु-प्रकाश-स्नानसे निर्बलोंको शक्तिवृद्धिकी अनुभूति होती है, यह बात यदि ब्रह्मा भी आकर कहे तो किसीको विश्वास नही होगा। जो व्यक्ति इस प्रकारकी झोपडीमे रहनेका प्रबन्ध नही कर सकता

उसे रातमे कमरेकी खिड़कियां खोलकर सोना चाहिए और नग्न शरीरमें वायु-प्रकाश लगने देना चाहिए । अगर सबल व्यक्तिके लिए हवा और प्रकाश आवश्यक है तो निर्बल और अस्वस्थके लिए तो इनकी आवश्यकता और भी बढ जाती है। रोगमें वायु हानिकर होती है, यह धारणा बड़ी हानिकारक है। बच्चोंको मसूरिका, रक्तपित्त आदि रोग होनेपर खिड़कियां बंद कर हवा और प्रकाशका प्रवेश बंद कर दिया जाता है या उन्हे जल्द खुली हवामें नही जाने दिया जाता; पर इससे बच्चों-का जीवन दु खमय हो जाता है, वे अन्धता, बधिरता, मानसिक दौर्बल्य आदिके शिकार होते रहते है या कब्रिस्तानमें कब्रोंकी सख्या बढाते है ।

एक लड़केको मसूरिका निकलनेपर कमरेकी खिड़कियां बराबर खुली रखी गयी, वायु-प्रकाशका स्नान कराया गया और तीसरे ही दिन मैदानमें निकाला गया। घर तथा पड़ोसके सभी लोग मा-बापके इस कार्यपर बुरा-भला कहने लगे और औषधोप-चारकने तो यहांतक कहा कि अगर ६ महीनेतक भी कोई खराबी नही देख पड़ी तो भी इसका नतीजा बुरा ही होगा। मसूरिका निकले कई साल हो गये, पर बच्चा प्राकृतिक ढंगसे रहता हुआ सतोपजनक रीतिसे प्रगति कर रहा है और अपने मां-बापके आनंदका कारण हो रहा है।

रोग होनेपर लोग मनुष्योंद्वारा आविष्कृत दवाओंके लिए चिकित्सकोंके यहां दौड़ते हैं जो खुद दर्द और रोगसे कराहते रहते है । जो लोग ऐसा करते है वे चतुर माने जाते है और

प्रकृतिके उपायोंकी खिल्ली उड़ायी जाती है और जो लोग इन उपायोका सहारा लेते है उनपर फबतियां कसी जाती हैं।

उपर्युक्त सभी रोगोमें एक ही तरहका उपचार किया गया, केवल स्थानिक उपचारके लिए गीली मिट्टीके प्रयोगमे कुछ अंतर पड़ा। सबने पेड़ूपर गीली मिट्टीकी पट्टी लगाई और नंगे पैर चलनेको सबको प्रोत्साहन दिया गया। योग्य व्यक्तियों-से मालिश भी कराई गई। मालिश प्रायः साधारण स्नानके बाद हुई और यह बहुत लाभदायक सिद्ध हुई।

आरोग्यलाभका तरीका सादा होना चाहिए और उसमें वही एकसूत्रता होनी चाहिए जो स्वयं प्रकृतिमें है। यह सत्य है कि सभी लोगोंमे प्रगति एक-सी नही होती, पर इसका कारण पद्धति नही, शरीरमे वर्त्तमान जीवन-शक्तिका अंतर है।

तरह-तरहके रोगोके नामों और लक्षणोके फेरमे पड़कर समय नष्ट करना ठीक नही; जहां कोई रोगसंबंधी लक्षण देख पड़े प्रकृतिके नियमोके अनुसार चलकर आरोग्यलाभका प्रयत्न शुरू कर देना चाहिए। आजकल रोगकी परीक्षा करनेकी विचित्र-सी चाल चल पड़ी है और अप्राकृतिक उपचार चलानेकी तैयारीमे ही कई दिन लग जाते हैं। इस परीक्षा और तैयारीमें जितना समय लगता है उतनेमे तो रोगसे मुक्ति ही मिल जा सकती है।

मैने अबतक जो कुछ कहा है उससे हर एक आदमीको यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि रुग्णावस्थामे क्या करना चाहिए। रोगोसे बचा रहकर कैसे जीवन व्यतीत किया जा सकता है,

इसपर काफी लिख चुका हू, फिर भी अगर रोग हो ही जाय तो शात रहिए। मैने प्राकृतिक उपचारके जो साधन बतलाये है उनकी सहायतासे रोहिणी, आंत्रिक सन्निपातज्वर, विसूचिका आदि भयंकर रोगोकी सारी भयकरता जाती रहेगी।

हर हालतमे शुद्ध, ताजी हवाकी प्राप्तिपर ध्यान दीजिए, गीली मिट्टीकी पट्टीका प्रयोग कीजिए, वायु-प्रकाशका स्नान और शीतक स्नान चलाइए, मालिश कराइए, उपवास कीजिए और रोगमुक्त होनेपर भरसक अपक्वाहार ग्रहण कीजिए, खुली जगहमे रहिए, नगे पांव चलिए और यथासंभव धरतीकी शक्तिका उपयोग कीजिए। जिन लोगोने मेरी बातोका समझ-दारीके साथ अनुसरण किया होगा वे यह समझ गये होंगे कि सभी रोगोमे एक ही तरीका क्यो वरता जाता है और भिन्न-भिन्न रोगोके लिए भिन्न-भिन्न तरीके क्यो नही है।

उदाहरणार्थ, अगर कोई व्यक्ति आत्रिक सन्निपातज्वरसे आक्रांत होता है तो पहले तो उसके कमरेकी सारी खिड़कियां—सर्दीके दिनोमे भी—खोल दीजिए। इसके बाद प्राकृतिक स्नान कराकर वायु-प्रकाशका स्नान कराइए और रोगी चलने लायक हो तो तेजीसे टहलाकर, नही तो कंबल ओढाकर शरीरमे गरमी लानेकी कोशिश कीजिए। वायु-प्रकाश-स्नान हर मौसममें कई बार चलाया जा सकता है। यह भरसक मैदानमे ही होना चाहिए, अगर यह सभव न हो तो कमरेमें ही चलाइए। इसका लाभ तुरत देख पड़ता है। समय १५ मिनटसे लेकर कई घंटो-तक हो सकता है। समय जितना अधिक होगा उतना ही अधिक

लाभ भी होगा। पेड़परकी गीली पट्टी विशेष लाभदायक होती है। यह नाभिसे गरमी खीचकर वहाके विजातीय द्रव्यको छिन्न-भिन्न कर देती है। आहारसबधी नियमोका पालन तो किया ही जाना चाहिए। यथासभव खुली हवामे रहना अच्छा होता है।

विसूचिकाका उपचार भी इसी प्रकार होता है। विसूचिका तथा अन्य सभी तीव्र और जीर्ण रोगोमे यह लाभदायक होती है; क्योकि यही स्थान ज्वर तथा अन्य रोगोका केन्द्र होता है। मसूरिका, वातकफज्वर, श्वसनक सन्निपात आदिमे भी यही उपचार चलाया जाय। अगर रोग जीर्ण (नाड़ीरोग, क्षय, शोथ या इस प्रकारका कोई दूसरा रोग) है तो प्रकृतिके इन्हीं उपायोका अवलबन किया जाय और अरसेतक इन्हे चलाया जाय। क्षय तथा अन्य फुफ्फुसीय रोगोमे मिट्टीकी पट्टी सीनेपर, शोथ (जलोदर)मे सूजे हुए स्थानपर, पेटकी खराबीमें पेड़पर और यौन रोगोमे पेड़ू और जननेंद्रियपर लगायी जाती है।

फोड़ा आदि चर्मरोगोमें तो मिट्टीकी पट्टी ही मुख्य उपचार है, पर इनमे भी सारे शरीरके उपचारपर ध्यान देना चाहिए। अस्वस्थताकी तथा अच्छी हालतमे भी दोपहरतक कुछ न खाना लाभदायक होता है। अगर लाचारी हो तो प्रात काल अत्यल्प मात्रामे ही कुछ खाया जा सकता है।

रुग्ण होनेपर सब लोग चारो ओरसे तरह-तरहके अप्राकृतिक उपाय और दवाएं बतलाने लगते है, पर ये सभी निरर्थक ही

नहीं होते, अपने साथ कुछ बुराई भी लाते है; इसलिए चाहे जैसी भी स्थिति हो केवल प्राकृतिक उपचारका सहारा लीजिए।

अगर सयोगवश आशाके अनुरूप बहुत जल्द सुधार न देख पड़े तो भी शांति और धैर्य बनाये रखें, घबड़ाकर अप्राकृतिक उपचारोंका प्रयोग न करने लगे। अप्राकृतिक उपचारोसे सच्ची सफलता कभी प्राप्त नही हो सकती, न जाननेके कारण हम इनसे अपना बहुत बड़ा नुकसान कर लेते है।

औषधविज्ञान संक्रामक रोगोंका हौवा है और उसने सर्वत्र इसका आतंक फैला रखा है, पर जब हम इन भयंकर रोगोसे भी छुटकारा पा जाते है तो इनसे डरनेका कोई कारण नही रह जाता। जो हमारी प्राकृतिक उपचारपद्धतिका अनुयायी है उसके दिमागसे तो सारे असाध्य और संक्रामक रोगोका भय दूर हो ही जाना चाहिए। इस भयसे बहुत बड़ा नुकसान हुआ करता है।

इसी सरल, एकरूप प्राकृतिक विधिसे लोग अपने स्वास्थ्यकी चिता और औषधोपचारक वर्गसे मुक्ति लाभ कर सकते है। इस प्रकार लोगोको अपने स्वास्थ्यपर, जो सर्वाधिक मूल्यवान् भौतिक संपत्ति है, पूर्ण अधिकार प्राप्त हो सकता है और अयोग्य, उत्पीड़क औषधोपचारकोंकी दासतासे मुक्ति मिल सकती है।

मानवजाति स्वतंत्रतारूपी बहुमूल्य वरदानके लिए बराबर संघर्ष और युद्ध करती रही है। क्या वह अपने शरीर, अपने स्वास्थ्यके संबधमे स्वतत्रता प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न नही करेगी?

प्राकृतिक-चिकित्सा क्या है ?

रोज-ब-रोज डाक्टरोंकी तादाद बढ रही है और साथ-साथ अनगिनत ओषधियोंकी। इनके ईजाद करने वाले दूकानदार हर दवाके रामवाण होनेका दावा करनेमें कोई कोर-कसर नहीं करते। फिर भी जन-साधारणका स्वास्थ्य उन्नत हुआ नहीं जान पड़ता। आख उठाकर देखे तो हर आदमी आपको किसी-न-किसी रोगके चगुलमे फसा मिलेगा। इससे साबित होता है कि दवाए आदमीको न तन्दुरुस्त रख सकती है न कर सकती है। उसके लिए तो सीधा और एक ही जरिया है कि हम जिदगीमे कुदरती तरीका अपनाए।

प्राकृतिक-चिकित्सकोने तजरुबेसे जाना है कि रसायन और दवाए रोगको अच्छा करना तो दूर रहा उलटे रोगको—उसके कुछ लक्षणोंको—कुछ वक्तके लिए दूर करके, बाहर निकलते हुए रोगको शरीरके भीतर दवा देती है। जिसे हम रोग समझते है वह दर असल अन्दर छिपे हुए रोगके बाहरी लक्षण मात्र है। जैसे गावमे कूडा-कचरा इकट्ठा होकर बीमारी फैलाता है वैसे ही शरीरकी गदगी निकल न पाने पर अन्दर सड़ने लगती है। वही गदगी सब रोगोकी जड है।

गलत भोजनकी वजहसे पैदा हुई सडन, अपच, दवाओके जहर, इजेक्शन, टीका वगैरह इस गदगीमे चार-चाद लगा देते है।

शरीरसे गदगी निकालनेकी कुदरतकी कोशिश ही रोग है, और रोगके लक्षण इस कोशिशका कुदरती नतीजा है। दवा या किसी और तरीकेसे इन्हे दवाना शरीरके खुद-ब-खुद ही सफाईके कामको बीचमे ही रोक कर जीर्ण रोगोकी नीव डालना है।

कुदरती इलाज गदगीको शरीरसे निकाल फेकनेमे पूरी मदद पहुचाता है और मनुष्यको स्वस्थ, सशक्त एव सतेज बनाता है।

कुदरती इलाजके मददगार हैं

उपवास, फलाहार, सतुलित भोजन, पानी, मिट्टी, धूप, प्राणायाम, आसन, कसरत और मालिश वगैरह। जिनसे रोग दबते नही बल्कि जड़से नेस्त-नाबूद होते हैं।

आरोग्य-मंदिर

मे उपर्युक्त तरीकोसे रोगियोका इलाज होता है। पत्र द्वारा सलाह लेकर घरपर अपना इलाज खुद कर सकते है या यहा आकर करा सकते है। रोगियोके रहने, खाने-पीने का इतजाम आरोग्य-मदिरकी ओरसे है। आनेके पहले आनेकी इजाज़त पा जाने पर आना चाहिए। सपन्न रोगियोको आरोग्य-मदिरके चिकित्सककी फीस भी देनी पड़ती है, गरीबोको वह फीस माफ रहती है, बाकी अन्य खर्च सबको देना पड़ता है।

प्रबधक,
आरोग्य-मदिर,
गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)

आरोग्य मंदिरके संबंधमें रोगियोंकी गवाही

मेरे दोनो हाथ पद्रह वर्षसे छाजन (एक्ज़ीमा) से भरे हुए थे। मुझे शरमके मारे उन्हे ढककर रखना पड़ता था। आरोग्य-मदिरके मिट्टी-पानीके उपचारसे छाजन ढाई महीनेमे चला गया और हाथकी त्वचाका रग स्वाभाविक हो गया।

काशमीरी देवी, हापुड़

मेरे पेशाबके साथ सात प्रतिशत चीनी आती थी। इसे कम करनेके लिए मुझे डाक्टर दोपहर व शामको भोजनके पहले इसुलिनका इजेक्शन देते थे। आरोग्य-मदिरमे आते ही इजेक्शन बद कर दिया गया और यहाकी चिकित्सासे तीन सप्ताहमे पेशाबके साथ चीनी आना बिल्कुल बंद हो गया। चिकित्सा कराए मुझे डेढ वर्ष हो गया तबसे मै स्वस्थ हू।

गादूराम चौधरी, बिशनपुर (पूर्णिया)

मोटापेके साथ-साथ मै सिर दर्द, चक्कर, बेहोशी, कमजोरी और स्वप्नदोषसे पीडित था। आरोग्य-मदिरमे रहकर ढाई महीनेमे मैने अपना अडतालीस पौड वजन घटानेके साथ-साथ अपने शरीरको सुडौल बनाया और सभी रोगोसे छुट्टी पा ली।

आरोग्य-मदिरके स्नेहपूर्ण वातावरणको छोडते हुए बडी तकलीफ हुई।

श्यामबिहारीलाल गर्ग,
कृष्णा प्रेस, मेरठ

मुझे बहुत पुराना दमा था और हृदयकी कमजोरी। प्राकृतिक चिकित्साकी कृपासे डेढ महीनेमे पचास वर्षकी उम्रमे इन रोगोसे छुटकारा पाकर मै फिर जवानीकी शक्ति और उमगका अनुभव कर रहा हू।

कारुलाल साह, सूजागंज, भागलपुर

मै मासिककी गडबडी और प्रदरकी शिकायतसे वर्षोंसे पीडित थी। जगह-जगह चिकित्सा कराकर निराश हो चुकी थी। आरोग्य-मदिरकी चिकित्सासे ये सब रोग तो गए ही, भूख खुलकर लगने लगी और पुराना कब्ज चला गया। मैने यहा यह भी सीखा कि मनुष्यको स्वस्थ रहनेके लिए क्या खाना-पीना चाहिए और कैसे रहना चाहिए। मैने नवजीवन पाया।

बनारसीदेवी, बरदुआरी, मालदा

'आरोग्य-मदिर' मे आनेके पहले मुझे ये शिकायते थी--पेट भारी होना, स्वप्नदोष, पेटमे वायु, शारीरिक कमजोरी, निरुत्साह, निस्तेज मुख-मुद्रा, स्मरण-शक्तिकी कमी, बदहज़मी।....एक महीनेकी चिकित्साद्वारा मेरे इन लक्षणोमे सुधार हुआ। तीन महीनेमे मै बिलकुल अच्छा हो गया और १४ पौड वजन बढ गया।

--नारायण भट्ट, ग्राम सेवा समिति, अंकोला कारबार, (बम्बई प्रांत)

मेरे विचारसे प्राकृतिक चिकित्साका जितना अच्छा प्रबध 'आरोग्य-मदिर'मे है उत्तरी भारतके किसी भी प्राकृतिक चिकित्सालयमे नही है।

--प्रोफेसर हरिश्चंद्र गुप्त, बिरला कालेज, पिलानी (जयपुर)

England's foremost advocate of Natural Therapeutics : Dr. Stanley Lief advised me to come to AROGYA-MANDIR, Gorakhpur for it's training. Here I have had the wonderful opportunity to see Nature Cure at work. I have been able to watch so many patients, who recovered wonderfully. It must be witnessed to be believed. In this Institution I have learnt to understand many simple principles, otherwise impossible.

Albert Issac Mosseri,
CAIRO (EGYPT).

आरोग्य-मदिरमे चिकित्सा करानेके नियमादि जाननेके लिए 'आरोग्यमदिर'का परिचयपत्र मगानेकी कृपा करे।

संचालक, आरोग्य-मंदिर, गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)

'आरोग्य' पर सम्मतियां

खाने-पीने, आदतों और इलाजमें हम आजकल इतने गलत जा रहे हैं और अपनेको अपने हाथों मिटा रहे हैं कि मेरे विचार से 'आरोग्य' से ज्यादा कामका और जरूरी कोई पत्र हो ही नही सक्ता। हर लड़के लड़कियोके हाथमें 'आरोग्य' पहुंचना चाहिए।

—पं० सुन्दरलाल (लेखक, भारतमें अग्रेजी राज्य)

'आरोग्य' के लेख सुदर सुरुचिपूर्ण, लाभप्रद और निर्णायक विचारोंसे भरे होते हैं।

—पं० गोपीनाथ धावन, पी-एच० डी०

निस्संदेह 'आरोग्य' उच्चकोटिका स्वास्थ्य-संबंधी मासिक पत्र है।....मै आरोग्यको पढनेका समय निकाल लेता हूं।.... आरोग्यके जितने अंक अभीतक निकले है, वे एकसे एक बढिया है। क्या छपाई, क्या मैटर और क्या सम्पादन सभी दृष्टियोंसे 'आरोग्य' एक बढ़िया पत्र है।

—पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, टीकमगढ़
प्रधान, अखिल भारतीय हिंदी पत्रकार सघ

मै समझता हूं मेरी तरह ही 'आरोग्य' सभी पाठकों के लिए उपयोगी होगा। उन्हे स्वास्थ्यकी ओरसे लापर्वाह न रहने देगा और स्वास्थ्य-साधनमें उनका पथ प्रदर्शन करगा।...... पत्रकी शैली सरल, सुबोध और प्रभावोत्पादक है।

—भदंत आनंद कौशल्यायन,
मत्री, राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति, वर्धा

आरोग्य-ग्रंथमाला

प्राकृतिक चिकित्साके प्रसारकी दृष्टिसे आरोग्य-ग्रथमालाका प्रकाशन शुरू किया जा रहा है। इसमे हिंदुस्तान के अनुभवी प्राकृतिक चिकित्सको-की पुस्तकोके साथ-साथ विदेशके प्राकृतिक चिकित्सकोकी पुस्तके भी होगी। विदेशमे इस विषयपर विस्तृत साहित्य मौजूद है और रोज लिखा जा रहा है। उन सबके विचार हम मूल या साराश रूपमे हिंदी-भाषी जनताको अच्छे रूपमे और सुलभ मूल्यमे देना चाहते है।

छठवी पुस्तक आपके हाथमे है। शेष प्रकाशित पुस्तकोका परिचय लीजिए —

आदर्श आहार

यह पुस्तक नही, भोजनद्वारा स्वास्थ्य एव रोगनाशका एक अपूर्व मत्र है। इस ग्रथके लेखक है डा० सतीशचद्र दास एम० डी०। जिन्होने अपनी जोरोसे चलती एलोपैथिक प्रैक्टिस छोडकर प्राकृतिक चिकित्साको अपनाया था। इस पुस्तकमे उन्होने अपने जीवनमे हुए भोजन सबधी सारे अनुभवोका सार भर दिया है। मूल्य है केवल एक रुपया।

उपवाससे लाभ

(दूसरा परिवर्धित संस्करण)

रोगोको दूर करनेका उपवास एक बडा साधन है। पर इसका उपयोग समझकर ही करना चाहिए। गगाकी तरह जहा यह लोगोको तारता है, तैरना न जानेवालोको यह डुबोता भी है। 'उपवाससे लाभ' उप-वासके लाभोको बताकर, उपवास करनेकी कलामे अबतक जो उन्नति हुई है उससे भी आपको परिचित कराएगा। यह परिचय इस पुस्तकमे

आपको उपवासके विविध आचार्य ही देगे, जिन्हे आप मंत्रमुग्धकी नाई पढते रहेंगे। पुस्तकके अतमे एक भारतीय उपवासीके चालीस दिनके उपवासकी डायरी भी दी गई है। मूल्य केवल डेढ रुपया।